समीक्षात्मक अध्ययन

रश्मिरथी

रीगल बुक डिपो-एम, दिल्ली-6

युगकवि दिनकर और उनकी

रश्मिरथी

('रश्मिरथी' काव्य का सर्वांगपूर्ण विवेचन)

[संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण]

डॉ. कृष्णदेव शर्मा
एम.ए., पी-एच.डी.

रीगल बुक डिपो-एम
2607/A, नई सड़क, दिल्ली-6

प्रकाशक :
अखिलेश प्रकाशन
2607-A, नई सड़क, दिल्ली-6
फोन : 3283743

संस्करण : नवीन 1997

मूल्य MAX. RETAIL PRICE INCL. OF ALL TAXES Rs 45.00

मुद्रक : अग्रवाल प्रिंटर्स, दिल्ली-6.

अनुकथन

'रश्मिरथी' कवि दिनकर का एक सफल खण्ड-काव्य है। कवि ने इस खण्ड-काव्य में कर्ण के उपेक्षित किन्तु महान् तेजस्वी चरित्र का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है। कर्ण के उदात्त चरित्र के माध्यम से कवि ने मानवीय उदात्त मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। कर्ण जीवन-पर्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों और दुर्भाग्य के क्रूर थपेड़ों से जूझता रहा है। कवि ने कर्ण के व्यक्तित्व-निरूपण के माध्यम से बहुत-सी समस्याओं के सम्बन्ध में गहन चिन्तन भी अभिव्यक्त किया है। 'रश्मिरथी' केवल अतीत के स्वर्णिम चित्रों का संग्रह ही नहीं है, अपितु उसमें वर्तमान का संस्पर्श और भविष्य की सुखद कल्पनाएं भी संजोई हुई हैं। इस प्रकार कवि ने 'रश्मिरथी' के माध्यम से एक सुन्दर भावलोक का निर्माण किया है जो कि कलापक्ष की ही तरह समृद्ध और प्राणवान बन पड़ा है। 'रश्मिरथी' में केवल भावपक्ष का ही चरमोत्कर्ष नहीं दीखता वरन् उसके साथ ही कलापक्ष का सौन्दर्य भी सुस्पष्ट है।

प्रस्तुत पुस्तक दो भागों में विभक्त है—आलोचना भाग और व्याख्या-भाग। आलोचना-भाग में हमारा उद्देश्य 'रश्मिरथी' की कथावस्तु, पात्र, उद्देश्य आदि के सम्बन्ध में समूची सामग्री प्रस्तुत करने का रहा है। व्याख्या-भाग में प्रत्येक पद की विस्तृत व्याख्या की गयी है। कोई भी पद सरल अथवा सामान्य मानकर छोड़ा नहीं गया है।

पुस्तक रचना में जिन कृतिकारों की कृतियों से सहायता ली गयी है, लेखक उन सबका आभारी है।

सहृदय पाठक और छात्र-वर्ग ने इस कृति को जिस उत्साह के साथ सम्मानित किया है उसी के फलस्वरूप प्रकाशक प्रस्तुत कृति का संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण अल्पावधि में प्रकाशित करने को प्रेरित हुआ है।

विनीत

—(डॉ.) कृष्णदेव शर्मा

100-ए. गौतम नगर.
नई दिल्ली-49

अनुक्रमणिका

आलोचना भाग

व्याख्या भाग

१. कथावस्तु

'रश्मिरथी' नामक खण्डकाव्य का नायक कर्ण है जिसे रश्मि अर्थात् पुण्य का रथी कहा गया है। कर्ण महाभारत का एक अत्यन्त यशस्वी और पराक्रमी पात्र है। कर्ण की माता का नाम कुन्ती था किन्तु इसे कर्ण का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि जब कुन्ती ने कर्ण को जन्म दिया था उस समय वह कुमारी कन्या थी। लोकलाज और सामाजिक लांछनों के भय से कुन्ती ने कर्ण को एक मंजूषा में बन्द करके नदी में प्रवाहित कर दिया। यह मंजूषा एक सूत के हाथ लगी जोकि इस नवजात शिशु को अपने घर ले आया। सूत और उसकी पत्नी राधा ने ही कर्ण का पालन-पोषण किया। यही कारण है कि कर्ण को राधेय भी कहते हैं। इस प्रकार 'रश्मिरथी' नामक खण्डकाव्य के नायक कर्ण के सम्बन्ध में एक अत्यधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कर्ण को जन्म से ही उपेक्षा और तिरस्कार का पाषाण-भार वहन करना पड़ा है।

काव्य के आरम्भ में कवि ने अग्नि की वन्दना की है। मूलकथा का आरम्भ गुरु द्रोणाचार्य तथा कौरव-पाण्डव राजपुत्रों के शस्त्रज्ञान के प्रशिक्षण-स्थल से होता है। रंगभूमि में गुरु द्रोणाचार्य तथा उनके शिष्य बैठे हैं। गुरु द्रोण का सर्वाधिक प्रिय शिष्य अर्जुन है और रंगभूमि में सर्वत्र अर्जुन के शस्त्रास्त्र ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा हो रही थी। तभी कर्ण वहाँ आ गया और उसने आते ही अर्जुन के शस्त्रज्ञान को चुनौती दी। इससे पूर्व कि अर्जुन उस चुनौती को स्वीकार अथवा अस्वीकार करता, गुरुजी ने कर्ण से उसकी जाति और गोत्र आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किए। कर्ण के समूचे जीवन का यही सर्वाधिक कोमल पक्ष था, क्योंकि उसके पास जाति अथवा वंश के नाम पर कुछ भी नहीं था। तथापि कर्ण चुप नहीं रहा और उसने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में गुरुजी से कहा कि वीरता और पौरुष केवल उच्चकुलोत्पन्न राजपुत्रों की ही सम्पत्ति नहीं है। मनुष्य के कर्म ही उसे उच्च अथवा निम्न बनाते हैं। वंश और गोत्र तो कायरों के आभूषण होते हैं। वीरों का गोत्र तो उनके वीरकर्म होते हैं। कवि ने कर्ण के इन भावोद्गारों को अत्यन्त प्रभावपूर्ण शब्दों में बाँधा है :

> 'तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के।
> पाते हैं. जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
> हीन मूल की ओर देख जग गलत कहे या ठीक,
> वीर खींच कर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।'

कर्ण ने भी अपनी शस्त्रविद्या का परिचय देकर रंगभूमि में उपस्थित सभी दर्शकों को चकित कर दिया। तत्पश्चात् कर्ण ने द्वन्द्वयुद्ध के लिए भी अर्जुन को ललकारा। इस बार पुनः गुरु द्रोणाचार्य ने स्थिति को संभाला और

अर्जुन के साथ द्वन्द्वयुद्ध करने के लिए यह शर्त रखी कि अर्जुन के साथ द्वन्द्वयुद्ध वही कर सकता है जो अर्जुन की ही भाँति एक राजपुत्र हो। कर्ण तो राजपुत्र था नहीं, अतः वह विवश होकर निरुत्तर ही रहा। इसी घड़ी दुर्योधन ने कर्ण का पक्ष लिया और सभी लोगों की भर्त्सना की। दुर्योधन के मतानुसार कर्ण जैसे पराक्रमी वीर को इस प्रकार अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। तथापि दुर्योधन ने तत्काल कर्ण को अंगदेश का राजा बना दिया। इस प्रकार दुर्योधन की इस कृपा के कारण कर्ण को जीवन में पहली बार आदर और सम्मान प्राप्त हो सका। कर्ण आजीवन दुर्योधन की इस कृपा का ऋणी रहा। इसके पश्चात् यह शस्त्र-प्रदर्शन का कार्यक्रम समाप्त हो गया और सभी लोग अपने-अपने घर जाने लगे। मार्ग में गुरु द्रोणाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को कहा कि वे किसी भी स्थिति में अर्जुन का प्रतिद्वन्द्वी सहन नहीं कर सकेंगे।

कर्ण के हृदय पर इस सारी घटना का गहरा प्रभाव पड़ा और वह अर्जुन का विजेता बनने की धुन में शस्त्र-विद्या का सम्यक् अध्ययन करने के उद्देश्य से परशुराम की सेवा में चला गया। उन दिनों परशुराम महेन्द्रगिरि पर्वत पर वास कर रहे थे। परशुराम ने भी यह दृढ़ निश्चय कर रखा था कि वे ब्राह्मणोत्तर जातियों के युवकों को शस्त्र-विद्या दान नहीं देंगे। तथापि कर्ण के तेजमय मुखमण्डल को देखकर परशुराम उसे भ्रमवश ब्राह्मण-पुत्र ही समझ बैठे। कर्ण ने भी गुरु की इस भ्रांति का खण्डन नहीं किया। गुरु परशुराम ने अत्यन्त लगन से कर्ण को शस्त्रज्ञान सिखाया किन्तु दुर्भाग्य से एक दिन कर्ण की जाति का रहस्य प्रकट हो गया। एक दिन गुरुजी कर्ण की जाँघ पर सिर रखकर निद्रामग्न थे। तभी एक विषकीट कर्ण की जंघा में घुस गया और घाव करने लगा। गुरुजी की नींद खुल जाने के भय से कर्ण उस असह्य पीड़ा को सहन करता रहा। जब घाव बहुत गहरा हो गया और उसमे रिसने वाला ऊष्ण रक्त गुरु की पीठ से स्पर्श हुआ तो गुरुजी की नींद उचट गई। सारा दृश्य देख कर परशुराम हतप्रभ हो गये। कर्ण की इस असाधारण सहनशीलता को देख कर गुरुजी को ऐसा सन्देह हुआ कि कर्ण ब्राह्मण युवक नहीं हो सकता क्योंकि ब्राह्मणों में इतनी सहनशीलता हो ही नहीं सकती। गुरुजी के सामने कर्ण ने अपना वास्तविक परिचय दे दिया। जब गुरुजी को यह पता लगा कि कर्ण तो सूत-पुत्र है तो उन्होंने उसे यह शाप दे दिया कि—"तूने जो भी शस्त्रविद्या मुझसे सीखी है, अन्तिम घड़ी में तू उसे भूल जायेगा।" कर्ण का तो सर्वस्व लुट ही गया था किन्तु परशुराम भी इस प्रकार का शाप देते समय अत्यन्त द्रवित हो उठे थे। उन्होंने यह शाप अपने प्रण की पूर्तिस्वरूप दिया था, मन से नहीं।

इधर पाण्डवों के अज्ञातवास की अवधि पूरी हो गई थी। भगवान श्रीकृष्ण उनके दूत के रूप में कौरवों के सामने गए और पाण्डवों के लिए आधे राज्य की माँग की। दुर्योधन के सिर पर स्वार्थमय द्वेष चढ़ा हुआ था, अतः उसने श्रीकृष्ण की यह उचित माँग स्वीकार नहीं की। अविवेक और मदान्धता के कारण दुर्योधन स्वयं श्रीकृष्ण को बाँधने का यत्न करने लगा। तभी श्रीकृष्ण ने अपना विराट् रूप धारण कर लिया। इस विराट् रूप का वर्णन करते हुए कवि श्रीकृष्ण के मुख से कहलवाता है :

'अम्बर में कुन्तल-जाल देख, पद के नीचे पाताल देख,
मुट्ठी में तीनों काल देख, मेरा स्वरूप विकराल देख।
सब जन्म मुझी से पाते हैं,
फिर लौट मुझी में आते हैं।'

अन्ततः श्रीकृष्ण निम्न घोषणा करते हैं और कौरवों की सभा से प्रस्थान करते हैं :

'हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।'

युद्ध-घोषणा करने के पश्चात् जब श्रीकृष्ण लौट रहे थे तो मार्ग में उन्हें कर्ण मिला। श्रीकृष्ण यह जानते थे कि दुर्योधन स्वयं अपने बल पर नहीं, बल्कि कर्ण के बल पर युद्ध कर सकता है। दुर्योधन का एकमात्र सम्बल कर्ण था। श्रीकृष्ण ने इस पृष्ठभूमि को अपनी दृष्टि में रखकर कर्ण से वार्तालाप आरम्भ किया। श्रीकृष्ण और कर्ण की यह वार्ता इस दृष्टि से अत्यन्त महत्व-पूर्ण है कि इसमें श्रीकृष्ण ने 'साम, दाम, दण्ड, भेद' आदि सभी प्रकार के उपायों से कर्ण को इस युद्ध में दुर्योधन का साथ न देने के लिए कहा, किन्तु कर्ण अपने निश्चय पर अडिग रहा। श्रीकृष्ण ने कर्ण को विविध प्रकार के प्रलोभन दिखाए, माता कुन्ती की दुहाई दी किन्तु सब व्यर्थ रहा। उन्होंने कर्ण को रण की विभीषिका से अवगत कराया और यहाँ तक कि सम्पूर्ण कुरु-राज्य समर्पित करने तक का वचन दिया किन्तु कर्ण के समक्ष ये सभी वचन एवं प्रलोभन, दुर्योधन की मैत्री से निकृष्ट ही रहे। माता कुन्ती के नाम पर कर्ण का संतप्त हृदय सहज ही कराह उठा—

'पत्थर-समान जिसका हिय था, सुत से समाज बढ़कर [illegible],
गोदी में आग लगा करके, मेरा कुल-वंश छिपा करके,
दुश्मन का उसने काम किया
माताओं को बदनाम किया।'

तथा—

'हे कृष्ण ! आप चुप ही रहिए, इस पर न अधिक कुछ भी कहिए,
सुनना न चाहते तनिक श्रवण, जिस माँ ने मेरा किया जनन,
वह नहीं नारि कुलपाली थी,
सर्पिणी परम विकराली थी।'

अन्ततः श्रीकृष्ण को कर्ण के दृढ़ निश्चय और अपराजेय आत्मविश्वास के सामने पराजय स्वीकार करनी पड़ी। कर्ण ने कहा कि यदि यही माँ कुन्ती समय पर कर्ण को अपना पुत्र स्वीकार लेती तो यह युद्ध ही नहीं होता किन्तु अब तो वह घड़ी बीत चुकी है। कर्ण पुनः दुर्योधन के प्रति अपनी सद्भावना-पूर्ण मैत्री को दोहराते हुए कहता है---

'सिर लिए स्कन्ध पर चलता हूं, उस दिन के लिए मचलता हूँ।
यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूं बढ़कर अपने ऊपर॥
कटवा दूँ उसके लिए गला,
चाहिए मुझे क्या और भला।'

कर्ण के इस दृढ़ निश्चय को सुनकर श्रीकृष्ण भी मन ही मन गद्गद् हो गए। निःसन्देह श्रीकृष्ण ने सच्चे मन से एक पराक्रमी वीर का अभिवादन किया है.

'रथ से राधेय उतर आया, हरि के मन में विस्मय छाया।
बोले कि "वीर! शत बार धन्य, तुझ-सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूषण महान्।'

इसके पश्चात् कर्ण को पराजित करने के लिए एक योजनाबद्ध कार्यक्रम देखा जा सकता है। चौथे सर्ग में स्वयं इन्द्र ही ब्राह्मण-याचक का रूप धारण करके कर्ण के कवच-कुण्डलों का दान ले लेते हैं। । कर्ण के इन कवच-कुण्डलों की यह विशेषता थी कि उनके रहते हुए कर्ण पर बाण चोट नहीं कर सकता थे। अतः यह निश्चित था कि इन कवच-कुण्डलों के रहते हुए अर्जुन कर्ण का कोई भी अहित नहीं कर सकता था। अतः अर्जुन के पिता इन्द्र ने कर्ण को कवच-कुण्डल विहीन करने के लिए ब्राह्मण याचक का रूप धारण किया। कर्ण की दानवीरता सर्वविदित थी। देवराज इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके दानवीर कर्ण के समक्ष उपस्थित हुए और पहले तो कर्ण की दानवीरता की भारी प्रशंसा की और बाद में उसके कवच-कुण्डलों का दान माँग लिया। कर्ण वचनबद्ध था अतः उसे अपनी सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति का भी दान करना पड़ा। तथापि कर्ण को यह समझने में कठिनाई नहीं हुई कि यह असाधारण याचक स्वयं देवराज इन्द्र हैं। यद्यपि इन्द्र ने कर्ण के कवच-कुण्डल

का दान तो ले लिया, फिर भी उनका रोम-रोम कर्ण के विशाल व्यक्तित्व की सराहना किए बिना नहीं रह सका। देवराज इन्द्र को स्वयं अपने छल-कृत्य के प्रति आत्मग्लानि का अनुभव हुआ। अर्जुन के प्रति कर्ण का द्वेषभाव अपनी चरम स्थिति में पहुँच चुका था। अतः कर्ण याचक इन्द्र से कह उठा कि यदि अर्जुन कर्ण को विजित करने के लिए इतना आकुल है तो :

'कहिए उसे, मोम की मेरी एक मूर्ति बनवाये,
और काट कर उसे, जगत में कर्ण जयी कहलाये।'

इस सर्ग में कर्ण के व्यक्तित्व में और अधिक निखार आया है। कर्ण एक सच्चा पराक्रमी वीर है और युद्ध जीतने के लिए वह कभी भी छल-कपट के साधनों का आश्रय नहीं लेता। इस दृष्टि से कर्ण का व्यक्तित्व श्रीकृष्ण और इन्द्र से भी कहीं अधिक उज्ज्वल और तेजमय दीखता है। वह अपने सिद्धान्तों की परिभाषा इस प्रकार देता है :

'वह करतब है यह कि विश्व ही चाहे रिपु हो जाये,
दगा धर्म दे और पुण्य चाहे ज्वाला बरसाये।
पर, मनुष्य तब भी न कभी सत्पथ से टल सकता है,
बल से अंधड़ को ढकेल वह आगे चल सकता है।
वह करतब है यह कि युद्ध में मारो और मरो तुम,
पर, कुपन्थ में कभी जीत के लिए न पाँव धरो तुम।'

यही कारण है कि कर्ण के इस निष्कलंक और उदार व्यक्तित्व के प्रति श्रीकृष्ण तथा देवराज इन्द्र भी अत्यन्त आदर और सम्मान के भाव रखते हैं। देवराज इन्द्र अपनी इस छलपूर्ण विजय में भी कर्ण को वन्दनीय पाते हैं। वे उन्मुक्त कण्ठ से यह स्वीकार करते हैं :

'तू दानी, मैं कुटिल प्रवंचक, तू पवित्र, मैं पापी,
तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
तू पहुँचा है जहाँ कर्ण, देवत्व न जा सकता है,
इस महान् पद को कोई मानव ही पा सकता है।'

प्रस्थान करने से पूर्व इन्द्र, कर्ण को कुछ न कुछ वरदान देना चाहते हैं। कर्ण केवल यही वरदान माँगता है कि उसकी प्रवृति धर्म में बनी रहे। फिर भी, इन्द्र इसी से सन्तुष्ट नहीं हुए। उनका अन्तर्मन कर्ण को कुछ देकर ही हल्का अनुभव कर सकता था। अन्ततः वे कर्ण को 'एकघ्न' नामक एक अमोघ अस्त्र देते हुए कहते हैं :

'तू माँगे कुछ नहीं, किन्तु मुझको अवश्य देना है।
मन का कठिन बोझ थोड़ा-सा हल्का कर लेना है,
ले अमोघ यह अस्त्र, काल को भी यह खा सकता है,
इसका कोई वार किसी पर विफल न जा सकता है।'

पाँचवें सर्ग में कर्ण और कुन्ती के मध्य अत्यन्त मार्मिक वार्ता हुई है। कुन्ती के समक्ष कौरव-पाण्डवों के युद्ध की विभीषिका सुस्पष्ट होती जा रही है। कुन्ती इस अत्यन्त प्रलयंकारी युद्ध को टालने के लिए कटिबद्ध है और इसी उद्देश्य को लेकर वह अपनी इच्छा के विरुद्ध कर्ण के पास आती है। कर्ण पानी में खड़ा हुआ साधना कर रहा है। तभी उसकी माता कुन्ती आती है और इस विनाशकारी युद्ध को रोकने की प्रार्थना करती है। कर्ण का सन्तप्त हृदय माता कुन्ती को देखकर चीत्कार कर उठता है। वह अपनी माँ से उसके आगमन का प्रयोजन पूछता है, उसका परिचय पूछता है। इस कटीले प्रश्नों की चोट से कुन्ती द्रवित हो उठती है और कहती है :

'रे कर्ण ! बेध मत मुझे निदारुण शर से।

× × ×

राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है,
जो धर्मराज का, वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है।
अर्जुन-समान कुरुकुल का ही अंशी है।'

तत्पश्चात् कुन्ती अपने इस अवांछित पुत्र कर्ण के जन्म की दुखद कथा वर्णित करती है। कुन्ती का प्रत्येक शब्द पश्चात्ताप और आत्मग्लानि के भावों से ओत-प्रोत है। तथापि कर्ण अपने अपमान और सामाजिक अभिशाप को भूल नहीं पाता। माता कुन्ती अपने मातृत्व की दुहाई भी देती है, किन्तु कर्ण का मन दुर्योधन के प्रति वचनबद्ध था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्युत्तर में कर्ण ने माता कुन्ती के ऊपर व्यंग्य-बाणों की बौछार की, जोकि वस्तुत कर्ण के दुखद अनुभवों की सत्यकथा ही है :

'क्या तुम्हें कर्ण से काम? सूत है वह तो,
माता के तन का मल अपूत है वह तो।
तुम बड़े वंश की बेटी ठकुरानी हो,
अर्जुन की माता, कुरु-कुल की रानी हो।'

कर्ण अपने निश्चय पर अटल रहता है। माता कुन्ती का कातर स्वर कर्ण को उसके दृढ़ निश्चय से नहीं हिला सका। उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि :

'लेकिन, यह होगा नहीं, देवि ! तुम जाओ,
जैसे भी हो सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।'

कर्ण का यह निश्चयात्मक उत्तर सुनकर कुन्ती निरुत्तर हो गई। कवि ने इस निरुत्तरता की स्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है :

'राधेय मौन हो रहा व्यथा निज कह के,
आँखों से झरने लगे अश्रु बह-बह के।
कुन्ती के मुख में वृथा जीभ हिलती थी
कहने को कोई बात नहीं मिलती थी।'

इसके पश्चात् कुन्ती के स्वर कातरता से भर गए। वह दीनहीना भिखारिणी-सी बन गई और कर्ण को पुत्रवत् अंक में लेने का आग्रह किया। मातृत्व छलक पड़ा और कर्ण का पाषाण हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा कि जहाँ तक अर्जुन का सम्बन्ध है वह किसी प्रकार का समझौता नहीं कर पायेगा। तथापि अन्य चार पांडवों को वह जीवन-दान दे देगा और इस प्रकार कुन्ती के पाँचों पुत्र यथावत् बने रहेंगे (अर्जुन की मृत्यु हो जाने की स्थिति में कर्ण ने कुन्ती का पुत्र होकर पांडवों में मिल जाने का वचन दिया)। निस्संदेह कर्ण का यह निश्चय भी उसकी अनुकरणीय उदारता का प्रतीक था।

छठे सर्ग का आरम्भ कौरव-पांडवों के युद्ध के साथ होता है। चारों ओर युद्ध की लपटें उठ रही हैं। भीष्म घायलावस्था में असहाय हुए पड़े हैं। भीष्म के धराशायी होने के पश्चात् कर्ण युद्धभूमि में उतरा। युद्धभूमि में जाने से पूर्व कर्ण भीष्म का आशीर्वाद लेने जाता है। भीष्म भी कर्ण को युद्ध रोकने का प्रबोधन देता है किन्तु अब युद्ध रुकने की कोई सम्भावना नहीं रह गई थी। भीष्म अन्ततः युद्ध की विनाश-लीला को रोकना चाहते थे :

'चल सके सुयोधन पर यदि वश, बेटा! लो जग में नया सुयश,
लड़ने से बढ़ यह काम करो, आज ही बन्द संग्राम करो।
यदि इसे रोक तुम पाओगे,
जग के त्राता कहलाओगे।'

कर्ण के आगमन पर कौरवों का मनोबल जागृत हो जाता है। युद्ध और अधिक घमासान हो जाता है। एक-एक करके पांडवों के दिग्गज धराशायी हो जाते हैं। अभिमन्यु, जयद्रथ आदि सभी मृत्यु के अंक में सो जाते हैं। कर्ण निरन्तर अर्जुन का आह्वान करता है किन्तु श्रीकृष्ण किसी न किसी प्रकार अर्जुन को कर्ण के सामने नहीं आने देते। इसी बीच पाँडवों की ओर से भीम का पुत्र घटोत्कच भीषण उत्पात मचाने लगा। कौरवों में हाहाकार मच गया। दुर्योधन ने कर्ण को घटोत्कच को मारने के लिए कहा। कर्ण के पास अब एकमात्र अस्त्र वही 'एकघ्नी' रह गई थी और दुर्योधन के कहने पर कर्ण ने घटोत्कच पर एकघ्नी से वार किया। घटोत्कच चिरनिद्रा में लीन हो गया।

सातवें तथा अन्तिम सर्ग में परमपराक्रमी कर्ण के बलिदान की मार्मिक कथा का वर्णन किया गया है। शीघ्र ही द्रोणाचार्य भी मृत्यु के ग्रास बन गए। कौरवों की सेना-संचालन का भार कर्ण को दे दिया जाता है। युद्ध के दौरान कर्ण का सामना अर्जुन के अतिरिक्त चारों पांडवों से हुआ किन्तु उसने अपने

वचन के अनुसार उन चारों को जीवन-दान दे दिया। इसी घड़ी अर्जुन का रथ सामने आता है और कर्ण और अर्जुन का युद्ध आरम्भ हो जाता है। ये दोनों वीर विशालकाय पर्वतों की भाँति एक-दूसरे से टकरा रहे थे। दोनों पक्षों की सेनाएँ इन दिग्गजों का घमासान युद्ध देख रहे थे। इसी बीच अश्वसेन नामक एक सर्प कर्ण की सहायतार्थ आता है किन्तु कर्ण युद्ध में भी साधनों की पवित्रता का पक्षधर सिद्ध हुआ। उसके चरित्र की यही विशेषता है कि वह आद्योपान्त जय-पराजय से अधिक साधनों की पवित्रता और सैद्धान्तिक ईमानदारी का अनुयायी रहा है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसने छल अथवा कपटपूर्ण साधनों का आश्रय नहीं लिया। उसकी चारित्रिक ईमानदारी ही उसकी एकमात्र और सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। ऐसी कठिन घड़ी में अश्वसेन की सहायता के प्रस्ताव को ठुकराना जीवट का काम था किन्तु कर्ण के ये शब्द वस्तुतः नमस्य हैं :

> 'राधेय जरा हँस कर बोला, 'रे कुटिल ! बात क्या कहता है ?
> जय का समस्त साधन नर का अपनी बाँहों में रहता है।
> उस पर भी साँपों से मिलकर मैं मनुज मनुज, से युद्ध करूँ ?
> जीवन भर जो निष्ठा पाली, उससे आचरण विरुद्ध करूँ ?'

दुर्भाग्य से कर्ण के रथ का एक पहिया धरती में धंस जाता है। बहुत यत्न करने पर भी रथ अपने स्थान से तनिक भी नहीं हिलता। कर्ण ने स्वयं बहुत यत्न किया किन्तु पहिया नहीं हिला। कर्ण को निहत्था देखकर श्रीकृष्ण अर्जुन को बाण चलाने का आदेश देते हैं। अर्जुन तनिक संकोच करता है किन्तु श्रीकृष्ण उसे समझाते हैं कि युद्ध में इस प्रकार का संकोच उचित नहीं होता। कर्ण भी तनिक रुकने की प्रार्थना करता है किंतु श्रीकृष्ण के आग्रहपूर्ण आदेश को शिरोधार्य करके अर्जुन कर्ण पर बाण चला देता है। एक ही क्षण में कर्ण का शीश धरती पर लोट गया। युधिष्ठिर कर्ण की इस मृत्यु पर अत्यधिक हर्षित हो उठते हैं किन्तु श्रीकृष्ण कहते हैं कि वस्तुतः कर्ण ही विजयी रहा है :

> 'न भूलें आप केवल जीत को लें।
> नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है
> विभा का सार शील पुनीत में है।'

संभावित प्रश्न

प्रश्न १—'रश्मिरथी' काव्य की कथा संक्षेप में लिखिए।

२. पात्र चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण में मनुष्य की बाह्य तथा आन्तरिक दोनों सत्ताओं का समावेश होता है। जहाँ तक उसके बाह्य रूप-रंग का प्रश्न है, उसे एक ही झाँकी में देखा जा सकता है किन्तु उसकी आन्तरिक प्रकृति का परिचय निकट सम्पर्क से ही सम्भव है। साहित्य के क्षेत्र में पात्रों के क्रियाकलाप आदि उनकी बाह्य सत्ता का परिचय देते हैं और उनके वार्तालाप उनकी आन्तरिक प्रकृति, उनके चिन्तक के परिचायक होते हैं। कवि इन पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए दो विधियाँ अपनाते हैं---(क) प्रत्यक्ष चित्रण-विधि, तथा (ख) अप्रत्यक्ष चित्रण विधि। प्रत्यक्ष चित्रण-विधि के अन्तर्गत पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वयं लेखक द्वारा किया जाता है अर्थात् पात्रों और पाठक के मध्य लेखक विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति में कवि, चरित्र के बाह्याभ्यंतर दोनों सत्ताओं का वर्णन स्वयं करता है। निस्संदेह ऐसी प्रत्यक्ष चित्रण-विधि में पाठक को किसी प्रकार का बौद्धिक प्रयास करने की आवश्यकता नहीं रहती। स्वयं कवि ही पात्रों का चरित्र-चित्रण कर देता है। इसके विपरीत, अप्रत्यक्ष चित्रण-विधि के अन्तर्गत कवि स्वयं नेपथ्य में छिपा रहता है और पाठक स्वयं ही पात्रों के चरित्रों को समझता है। निस्सन्देह इस प्रत्यक्ष विधि में पाठक को ही पात्रों के चरित्र के बाह्य तथा आन्तरिक दोनों रूपों को समझना होता है। यद्यपि यह विधि अपेक्षतया अधिक दुरूह होती है किन्तु इसमें कलात्मक सौंदर्य भी अधिक होता है। पाठक और पात्रों के मध्य कोई व्यवधान नहीं होता है।

'रश्मिरथी' के पात्रों का चरित्र-चित्रण अप्रत्यक्ष चरित्र विधि द्वारा किया गया है। कवि स्वयं प्रायशः मौन रहा है। इस प्रकार की चरित्र विधि के अन्तर्गत तीन उपविधियाँ आती हैं—(क) अभिभाषण एवं कथोपकथनों आदि द्वारा (ख) क्रियाकलापों द्वारा, तथा (ग) पात्रों पर पड़े प्रभावों द्वारा। कवि दिनकर ने इन सभी उपविधियों का प्रयोग किया है। परस्पर कथोपकथन अथवा अभिभाषण द्वारा पात्रों के चरित्रों की रेखाएँ उभारी गई हैं। इसी प्रकार पात्रों के क्रिया-कलापों के आधार पर उनके चरित्रों का अध्ययन किया गया है। क्रिया-कलाप ही वस्तुतः पात्र के चरित्र की कसौटी है।

'रश्मिरथी' का मुख्य पात्र कर्ण है और कवि ने उसी के चरित्र को पूरी तरह अंकित किया है। यद्यपि 'रश्मिरथी' में कर्ण के अतिरिक्त अन्य पात्र भी हैं किन्तु कवि ने कर्ण के चरित्रांकन में ही पूर्णता का परिचय दिया है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण बहुत-कुछ 'कर्तव्यपूर्ति' के ढंग से किया गया है। 'रश्मिरथी' के मुख्य पात्रों में कर्ण, अर्जुन, दुर्योधन, भीष्म, द्रोणाचार्य, परशुराम; इन्द्र तथा श्रीकृष्ण आदि को परिगणित किया जा सकता है।

(क) कर्ण—कर्ण 'रश्मिरथी' खण्डकाव्य का प्रमुख पात्र है और यही एक पात्र है जो काव्य में आद्योपान्त छाया रहता है। कर्ण का प्रथम परिचय पहले सर्ग में होता है और वह प्रथम परिचय ही कर्ण के अभिशप्त जीवन के प्रति कुतूहल उत्पन्न करता है। इतिहास के आधार पर चली आ रही कथा के अनुसार कर्ण की माँ कुन्ती और पिता सूर्य थे। कहते हैं कि कुन्ती ने अपनी कौमार्यावस्था में ही कर्ण को जन्म दिया था और लोकलाज के भय से उसे एक मंजूषा में रखकर नदी में बहा दिया था। वह मंजूषा अधिरथ नामक एक सूत को मिल गई और वह इस नवजात शिशु को अपने घर ले आया। सूत और उसकी पत्नी राधा ने ही बालक कर्ण का लालन-पालन किया। यही कारण है कि कर्ण को कुन्ती का पुत्र होने के नाते 'कौन्तेय' और राधा द्वारा पालन-पोषण किये जाने के कारण 'राधेय' भी कहा जाता है।

कर्ण का प्रथम परिचय ही अत्यन्त रोमांचपूर्ण है। रंगभूमि में कौरव एवं पाण्डव गुरु द्रोणाचार्य से शस्त्र विद्या सीख रहे हैं। अर्जुन नाना प्रकार के करतब दिखलाकर वहाँ उपस्थित जनसमूह का साधुवाद लूट रहा है। उसी समय भीड़ को चीरता हुआ कर्ण उपस्थित होता है और अर्जुन को चुनौती देते हुए कहता है कि :

> 'तूने जो-जो किया, उसे मैं भी दिखला सकता हूँ।
> चाहे तो कुछ नयी कलाएँ भी सिखला सकता हूँ।
> आँख खोल कर देख, कर्ण के हाथों का व्यापार,
> फूले सस्ता सुयश प्राप्त कर, उस नर को धिक्कार।'

कर्ण के चरित्र की पहली विशेषता यही है कि वह अपराजेय आत्मविश्वास का धनी है। उसका यह आत्मविश्वास आद्योपान्त अक्षुण्ण बना रहता है। पहले ही सर्ग में जब रंगभूमि में उपस्थित जनसमूह कर्ण का साधुवाद कर उठा तो अर्जुन सहित सभी पाण्डव निस्तेज हो गये। उसी घड़ी गुरु द्रोण ने कर्ण की जाति-धाम आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किया। कर्ण का सरल हृदय निरुत्तर हो गया। जाति और वंश के नाम पर कर्ण के पास कुछ नहीं था किन्तु उसे अपने भुजबल पर अटूट विश्वास था। जातिवाद पर करारा व्यंग्य करते हुए कर्ण बोला :

> 'जाति-जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाखंड,
> मैं क्या जानूँ जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।
> × × ×
> पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो मेरे भुजबल से,
> रवि समान दीपित ललाट से और कवच-कुण्डल से।'

कर्ण को केवल अपने भुजबल का सहारा है, जाति और वंश की गौरवशाली परम्पराएँ उसके भाग्य में नहीं हैं।

इसी घड़ी दुर्योधन हस्तक्षेप करता है और कहता है कि ऐसे वीर पराक्रमी को इस प्रकार अपमानित करना उचित नहीं। दुर्योधन के ये शब्द कर्ण के चरित्र का ही उद्घाटन करते हैं :

'मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का।
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर-क्रूर।'

इसके पश्चात् कर्ण ने द्वन्द्वयुद्ध के लिए पुनः अर्जुन को ललकारा और इस बार फिर गुरु द्रोणाचार्य ने यह शर्त लगा दी कि अर्जुन एक राजपुत्र है और इसलिए इसके साथ एक राजपुत्र ही द्वन्द्वयुद्ध कर सकता है। कर्ण का उत्साह फिर धीमा पड़ गया किन्तु दुर्योधन ने उस यशस्वी वीर का सम्मान रखा और भरी सभा में घोषणा की कि :

'बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोषणा सुने सकल संसार।
अंगदेश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ,
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।'

दुर्योधन ने भरी सभा में कर्ण को वीरता का अधिकारी बना के कर्ण को अपनी चिरमैत्री सूत्र में बांध लिया। ऐसी कठिन परिस्थिति में दुर्योधन की इस अप्रत्याशित कृपा को कर्ण ने जीवनपर्यन्त स्मरण रखा। इस छोटी-सी किन्तु महत्त्वपूर्ण घटना के कारण कर्ण और दुर्योधन जीवनपर्यन्त एकता सूत्र में बंधे रहे और कर्ण आजीवन अपने आपको दुर्योधन का ऋणी मानता रहा। मित्रता का ऐसा आदर्श सम्भवतः समूचे भारतीय इतिहास में नहीं मिल पायेगा। कर्ण का रोम-रोम दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता के पुनीत भाव से आप्लावित है। इन दोनों की मित्रता को अनेक परीक्षाएँ देनी पड़ती है किन्तु कर्ण की चारित्रिक दृढ़ता इस मैत्री को उत्तरोत्तर विकासमान बनाए रखती है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी कर्ण इस पुनीत मैत्री-भाव की रक्षा करता है। तीसरे सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण कर्ण को युद्ध रोकने के लिए कहते है और आग्रह करते हैं :

'कौरव को तज रण रोक सखे
भू का हर भावी शोक सखे।'

यही नहीं, भगवान श्रीकृष्ण कर्ण को नाना प्रकार के प्रलोभन भी देते है, कुरुराज, साम्राज्य, यश, मुकुट और सिंहासन सभी कुछ समर्पित करने को भी तत्पर हैं किन्तु कर्ण को उसके दृढ़ निश्चय से डिगा सकना सम्भव नहीं है। वह किसी भी स्थिति में, विशेष रूप से संकट की स्थिति में, दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ सकता। कर्ण को अभी तक याद है कि :

'राजा रंक से बना करके, यश, मान, मुकुट पहना करके,
बाँहों पर मुझे उठा करके, सामने जगत् के ला करके
करतब क्या-क्या न किया उसने,
मुझको नवजन्म दिया उसने।'

कर्ण मित्रता को एक अमूल्य रत्न बतलाते हुए कहता है कि मैत्री की सुखद छाया धरती ही नहीं, वैकुण्ठ से भी कहीं अधिक शीतल और सुखदायी होती है। तभी तो कर्ण प्रतिपल दुर्योधन की कृपा से उऋण होने के लिए लालायित है। इस सम्बन्ध में भगवान श्रीकृष्ण को कहे गए कर्ण के निम्न शब्द दृष्टव्य हैं :

'सिर लिए स्कन्ध पर चलता हूँ, उस दिन के लिए मचलता हूं।
यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूँ बढ़ कर अपने उपर।
कटवा दूँ उसके लिए गला,
चाहिए मुझे क्या और भला।'

वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि दुर्योधन का साथ देने में वह अपना कोई हित-साधन नहीं कर रहा है। उसे धन और साम्राज्य का लोभ नहीं, वैभव-विलास की चाह नहीं, वह तो उनमें से है जो,

'जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।'

इसलिए कर्ण श्रीकृष्ण को निस्संकोच भाव से कह देता है :

'मुझको न कहीं कुछ पाना है,
केवल ऋण मात्र चुकाना है।'

यूँ तो कर्ण की इस दुर्योधन-मैत्री को पग-पग पर परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं किन्तु पाँचवें सर्ग में जब कर्ण की माता कुन्ती समूचे मातृत्व की दुहाई देती हुई कर्ण से दुर्योधन का साथ छोड़ने का आग्रह करती है तो कर्ण वस्तुतः बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है। श्रीकृष्ण को दो-टूक उत्तर देने में उसे किसी प्रकार की दुविधा का अनुभव नहीं हुआ था किन्तु जब स्वयं माता कुन्ती वही बात कहने आई तो कर्ण धर्म-संकट में पड़ गया। यद्यपि कर्ण ने उस अग्नि-परीक्षा में भी मैत्री के सुखद एवं शीतल किसलयों को झुलसने नहीं दिया तथापि यह निर्विवाद है कि उसके समूचे जीवन में ऐसा उग्र धर्मसंकट सम्भवतः कभी भी नहीं उपस्थित हुआ। माता कुन्ती का आग्रह इस प्रकार है :

'पर, एक बात सुन, जो कहने आयी हूँ,
आदेश नहीं, प्रार्थना साथ लायी हूँ।

कल कुरुक्षेत्र में जो संग्राम छिड़ेगा,
क्षत्रिय-समाज पर कल जो प्रलय घिरेगा।
उसमें न पांडवों के विरुद्ध हो लड़ तू,
मत उन्हें मार या उनके हाथों मर तू।'

माता कुन्ती यह चाहती है कि कर्ण दुर्योधन का साथ छोड़कर पाण्डवों के नेता के रूप में युद्ध में अवतरित हो। कुन्ती कहती है कि—"ये पाँचों पाण्डव तेरे ही अनुज हैं और तू ही इनका बड़ा भाई है। इनका अनुज बनकर युद्ध का संचालन कर और विजयश्री प्राप्त करके इस सारी सम्पदा को भोग।" माता के इन स्नेहसिक्त ममता से परिपूर्ण शब्दों को सुनकर भी कर्ण अपने सत्पथ से डिगा नहीं। यही है कर्ण की महानता। जिस व्यक्ति ने भी उस चिर उपेक्षित कर्ण को एक बार गले से लगा लिया, तिरस्कार और अपमान के स्थान पर निश्छल प्रेमभाव और मैत्री का हाथ बढ़ा दिया, कर्ण ने उसे जीवन भर निभाया। कर्ण की यही चारित्रिक दृढ़ता उसके प्रोज्ज्वल व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अतः कर्ण अपनी माता के इन कातर वचनों से भी द्रवित नहीं हुआ और बोला :

'लेकिन, यह होगा नहीं देवि! तुम जाओ,
जैसे भी हो सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही, कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।

कुरुपति का मेरे रोम रोम पर ऋण है,
आसान न होना उससे कभी उऋण है।
छल किया अगर, तो क्या जग में यश लूंगा,
प्राण ही नहीं तो उसे और क्या दूंगा।'

इस प्रकार कर्ण में मैत्री का पुनीत भाव और उसके साथ ही वचन-प्रियता का सुरम्य मेल दीखता है। वचनप्रियता भी अन्ततः चारित्रिक दृढ़ता की द्योतक है। वस्तुत. मित्रता का निर्वाह करना असाधारण जीवट, आदर्श, वचन-प्रियता एवं दृढ़ चरित्र की अपेक्षा करता है। विपत्ति की घड़ियों में ही इसकी परीक्षा होती है और जो व्यक्ति उस कठिन समय में भी अपने दृढ़ संकल्प पर डटा रहता है, वही वस्तुतः नमस्य है। इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कर्ण एक स्थल पर श्रीकृष्ण को कहता है कि :

'रह साथ सदा खेला खाया, सौभाग्य सुयश उससे पाया,
अब जब विपत्ति आने को है, घनघोर प्रलय छाने को है,
तज उसे भाग यदि जाऊंगा,
कायर, कृतघ्न कहलाऊंगा।'

कर्ण के आदर्श चरित्र की एक अन्यतम विशेषता उसका धर्माचरण है। सामान्य जीवन में ही नहीं अपितु युद्ध की-सी कठिन घड़ियों में भी कर्ण ने धर्म का संबल नहीं छोड़ा है। धर्माचरण अपने आपमें एक अत्यन्त व्यापक गुण है। धर्म का शाब्दिक अर्थ धारण करने योग्य होता है। इस प्रकार मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की अवस्थिति देखी जा सकती है। मित्रता अथवा शत्रुता, दानवीरता अथवा शूरवीरता—सभी क्षेत्रों में कुछ धार्मिक प्रतिमान होते हैं और आदर्श एवं श्रेष्ठ व्यक्ति पूरी निष्ठा के साथ उन प्रतिमानों का परिपालन करते हैं। कर्ण ने मित्रता में मित्र-धर्म की भाँति ही युद्ध में भी युद्ध-धर्म का पालन किया है। स्थूल रूप से इसे साधनों की पवित्रता भी कहा जा सकता है। विभिन्न भारतीय धर्मों में साध्य से अधिक साधनों की महत्ता प्रतिष्ठित की गई है। मनुष्य के कर्म भी इसी आधार पर अच्छे और बुरे कहलाते हैं। मूल बात यह नहीं है कि मनुष्य के ध्येय की पूर्ति हुई कि नहीं बल्कि असली महत्व इस बात का है कि उसने अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए कौन से साधनों का प्रयोग किया। क्या उसके साधन सम्बन्धित धर्म की दृष्टि से पवित्र थे? जहाँ तक कर्ण के चरित्र का प्रश्न है उसने आद्योपान्त साधनों की महत्ता स्वीकारी है। उसने जीवनपर्यन्त ध्येय की नहीं, साधनों की आराधना की है। उसके समक्ष जय-पराजय का कोई महत्व नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण को उत्तर देते हुए कर्ण अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहता है:

'वह करतब है यह कि युद्ध में मारो और मरो तुम,
पर कुपंथ में कभी जीत के लिए न पाँव धरो तुम।
वह करतब है यह कि सत्यपथ पर चाहे कट जाओ।
विजय-तिलक के लिए करों में कालिख पर, न लगाओ।'

छठे सर्ग में कवि ने कर्ण के इस धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है:

'है धर्म पहुंचना नहीं, धर्म तो जीवन भर चलने में है,
फैला कर पथ पर स्निग्ध ज्योति दीपक समान जलने में है
यदि कहें विजय, तो विजय प्राप्त हो जाती परतापी को भी
सत्य ही, पुत्र, दारा, धन, जन मिल जाते हैं पापी को भी।
इसलिए ध्येय में नहीं, धर्म तो सदा निहित साधन में है।'

इस दृष्टि से महाभारत के युद्ध का एक अन्य प्रसंग भी उल्लेखनीय है। अर्जुन से युद्ध करते समय जब कर्ण अपने तरकस से बाण निकालने लगा तो अश्वसेन नामक एक प्रचंड विषधर उपस्थित हुआ और स्वयं को कर्ण के सेवार्थ प्रस्तुत करते हुए बोला कि:

'बस, एक बार कर कृपा धनुष पर चढ़ शरव्य तक जाने दे,
इस महाशत्रु को अभी तुरत स्यन्दन में मुझे सुलाने दे।

कर वमन गरल जीवन भर का संचित प्रतिशोध उतारूँगा,
तू मुझे सहारा दे बढ़कर, मैं अभी पार्थ को मारूँगा।'

कर्ण के लिए यह जय और पराजय का प्रश्न था, वर्षों से सिंचित प्रतिशोध की आग को शीतल करने का सुअवसर था, किन्तु कर्ण के धर्मपरायण मन को अश्वसेन का यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं था। अनुचित साधनों के बल पर मिलने वाली विजयश्री उसके लिए अर्थहीन थी। कर्ण ने अश्वसेन को यही कहा कि :

'तेरी सहायता से जय तो मैं अनायास पा जाऊंगा,
आने वाली मानवता को लेकिन, क्या मुख दिखलाऊंगा।
संसार कहेगा जीवन का सब सुकृत कर्ण ने क्षार किया,
प्रतिभट के वध के लिए सर्प का पापी ने साहाय्य किया।

× × ×

जा भाग, मनुज का सहज शत्रु मित्रता न मेरी पा सकता,
मैं किसी हेतु भी यह कलंक अपने पर नहीं लगा सकता।'

कर्ण के चरित्र की एक अन्य जगविदित विशेषता उसकी दानशीलता है। कर्ण केवल शूरवीर ही नहीं अपितु दानवीर भी है। यही कारण है कि कवि ने कर्ण को शिव, दधीचि की पंक्ति का अधिकारी बताया है। कहते हैं कि कर्ण के समान दानवीर समूचे भारतीय इतिहास में विरले ही होंगे। कर्ण के चरित्र की पराकाष्ठा यही है कि वह लौकिक-स्वार्थों, वैभव-विलास के प्रलोभनों से बहुत ऊपर है। वह श्रीकृष्ण को स्पष्ट शब्दों में कहता है कि वह दुर्योधन का साथ किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर नहीं, अपितु, केवल उसकी कृपा से उऋण होने के लिए दे रहा है। महाभारत में कर्ण के समान त्यागी और दानवीर पात्र और कोई नहीं है। वह प्राप्ति में नहीं उत्सर्ग में विश्वास रखता है। कर्ण के ये शब्द उसके चरित्र के इसी पक्ष को प्रकाशित करते हैं :

'मुझसे मनुष्य जो होते हैं, कंचन का भार न ढोते हैं।
पाते हैं धन बिखराने को, लाते हैं रतन लुटाने को।
'जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।'

स्वयं कवि ने भी कर्ण की दानवीरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि :

'युग युग जियें कर्ण, दलितों के वे दुख-दैन्य हरण हैं,
कल्पवृक्ष धरती के, अशरण की अप्रतिम शरण हैं।
पहले ऐसे दानवीर धरती पर कब आया था?
इतने अधिक जनों को किसने यह सुख पहुंचाया था?'

कर्ण अपने घर से किसी भी याचक को खाली हाथ नहीं जाने देता। जब देवराज स्वयं याचक ब्राह्मण का रूप धारण करके उसके पास आए और

'कवच-कुण्डल' माँगने में संकोच का अनुभव करने लगे तो कर्ण अपनी दानशीलता का परिचय देते हुए कहता है :

'माँगो माँगो दान, अन्न या वसन, धाम या धन दूँ ?
अपना छोटा राज्य याकि यह क्षणिक क्षुद्र जीवन दूँ ?
मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।'

कर्ण के चरित्र की एक अन्य विशेषता उसका अमित धैर्य और अनुकरणीय सहनशीलता है। कर्ण के चरित्र का यह पक्ष अपने चरम रूप में दूसरे सर्ग में प्रकाशित हुआ है। गुरु परशुराम कर्ण की जाँघ पर सिर रखे हुए सो रहे हैं। तभी एक विषकीट कर्ण की जंघा में दंश मारता है। कर्ण को असह्य पीड़ा होती है किन्तु इस डर से कि कहीं गुरुजी की नींद न उचट जाए वह तनिक भी हिलता-डुलता नहीं। विषकीट घाव करता रहा और फिर कर्ण की जंघा से निकले रक्त की उष्णता के कारण गुरु की नींद खुल गई। गुरुजी सारी स्थिति को तत्काल समझ गए। कवि ने कर्ण की इस सहनशीलता का वर्णन करते हुए कहा है :

'बैठा रहा अचल आसन से कर्ण बहुत मन को मारे,
आह निकाले बिना, शिला-सी सहनशीलता को धारे।'

यही कारण था कि महाक्रोधी परशुराम भी ऐसे प्रिय को शाप देकर स्वयं भी बहुत दुखी हुए। उनका कठोर हृदय भी कर्ण की गुरु-भक्ति को देखकर पसीज गया :

'जाओ, जाओ कर्ण ! मुझे बिलकुल असंग हो जाने दो,
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है, तुम्हें निराश देखकर छाती कहीं न फट जाये,
फिरा न लूँ अभिशाप, पिघल कर वाणी नहीं उलट जाये।'

कर्ण के चरित्र में एक अन्य विशेषता उसकी प्रतिशोध की भावना है। कर्ण आरम्भ से ही अर्जुन का बैरी रहा है और उसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य सम्भवतः अर्जुन से प्रतिशोध लेना है। उसने कई बार अपनी इस भावना को अभिव्यक्त किया है। जब-जब उसे अपनी सफलता असफलता में बदलती हुई दीखती है अथवा जब-जब उसकी आशा निराशा का रूप धारण कर लेती है उसका मन यही कहता है। कुछेक स्थल इस प्रकार हैं :

(१) (गुरु परशुराम को) :

'एक कसक रह गई, नहीं पूरा जीवन का व्रत मेरा,
गुरु की कृपा! शाप से जल कर अभी भस्म हो जाऊँगा,
पर, मदान्ध अर्जुन का मस्तक देव ! कहाँ मैं पाऊँगा।'

(२) चौथे सर्ग में देवराज इन्द्र को कहे गए निम्न व्यंग्य-बाणों में कर्ण का प्रतिशोध भाव ही झलकता है :

'और पार्थ यदि बिना लड़े ही जय के लिए विकल है।
तो कहता हूं उस जय का भी एक उपाय सरल है।
कहिए उसे, मोम की मेरी एक मूर्ति बनवावे,
और काट कर उसे, जगत में कर्ण-विजयी कहलावे।'

(३) माता कुन्ती को कहे गये निम्न वचन कर्ण के आशय को सुस्पष्ट करते हैं :

'मैं एक कर्ण अतएव, मांग लेता हूं,
बदले में तुमको चार कर्ण देता हूं,
छोड़ूंगा मैं तो कभी नहीं अर्जुन को,
तोड़ूंगा कैसे स्वयं पुरातन प्रण को।'

(४) युद्धक्षेत्र में :

'क्या धमकाता है ? काल अरे आजा मुट्ठी में बन्द करूं।
छुट्टी पाऊँ तुमको समाप्त कर दूं, निज को स्वच्छन्द करूं।
ओ शल्य ! हयों को तेज करो, ले चलो उड़ा कर शीघ्र वहां।
गोविन्द पार्थ के साथ डटे हों चुनकर सारे वीर जहां।।

इस प्रकार समग्रत: कहा जा सकता है कि कर्ण एक अपराजेय शूरवीर, महान् तेजस्वी, अवढरदानी, एक आदर्श मित्र, धर्मावलम्बी, निरीह पददलितों का नेता सभी कुछ था। उसका चरित्र जीवनपर्यन्त धर्म और शील की आभा से देदीप्यमान रहा है। कवि ने इस चरित्र की सभी विशेषताएँ निम्न पंक्तियों में समेकित कर दी हैं :

'तन से समर शूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी।
जाति गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी।
ज्ञान-ध्यान, शस्त्रास्त्र-शास्त्र का कर सम्यक् अभ्यास,
अपने गुण का किया कर्ण ने आप स्वयं सुविकास।'

(ख) अर्जुन—अर्जुन भी महाभारत का एक अत्यन्त वीर पात्र है। अर्जुन कुन्ती का पुत्र और गुरु द्रोणाचार्य का सर्वप्रिय शिष्य है। अर्जुन का परिचय 'रश्मिरथी' के पहले सर्ग में होता है। अर्जुन धनुर्विद्या में निष्णात था और यही कारण है कि गुरु द्रोणाचार्य को वह बहुत प्रिय था। रंगभूमि में अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के विभिन्न करतब दिखला रहा था और वहां उपस्थित सारा जनसमूह उसकी धनुर्विद्या की प्रशंसा कर रहा था :

'रंगभूमि में अर्जुन था जब समां अनोखा बांधे।'

गुरु द्रोणाचार्य यह नहीं चाहते थे कि अर्जुन का कोई प्रतिद्वन्द्वी हो और अपने इस ध्येय की पूर्ति के लिए उन्होंने कोई कोर-कसर नहीं रखी। जब कर्ण

अर्जुन को द्वन्द्वयुद्ध के लिए ललकारता है तो गुरु द्रोण हस्तक्षेप करते हैं और एक न एक शर्त लगाकर इन दोनों के द्वन्द्वयुद्ध को टाल देते हैं।

वास्तविकता यह है कि कवि दिनकर ने कर्ण के अतिरिक्त किसी भी अन्य पात्र के चरित्र की पूरी रेखाओं को नहीं उभारा है। उनका उद्देश्य ही महाभारत के यशस्वी किन्तु उपेक्षित कर्ण के चरित्र का पुनर्मूल्यांकन करके उसका प्रोज्ज्वल रूप प्रकाशित करना है। अतः स्वाभाविक है कि 'रश्मिरथी' में केवल कर्ण ही एक ऐसा पात्र है जिसके चरित्र-चित्रण में कवि का मन सर्वाधिक रमा है। यही कारण है कि अर्जुन का चरित्र कर्ण की भांति विकसित नहीं हो सका है। तथापि अर्जुन के चरित्र की कतिपय स्थूल रेखाओं का अध्ययन किया जा सकता है।

'रश्मिरथी' काव्य में अर्जुन एक दो स्थलों को छोड़कर परोक्ष रूप में ही दीखता है। प्रत्यक्षतः अर्जुन के दर्शन समूचे 'रश्मिरथी' में या तो पहले सर्ग में अथवा अन्तिम सर्ग में ही होते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थलों पर स्वयं कर्ण द्वारा अथवा 'रश्मिरथी' के अन्य पात्रों द्वारा अर्जुन के सम्बन्ध में कहे गए अभिभाषणों से भी अर्जुन के चरित्र की कुछ रेखाओं का अध्ययन किया जा सकता है। तीसरे सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण, कर्ण का प्रबोधन करते हैं। कृष्ण उससे कहते हैं कि वह भी कुन्ती का ज्येष्ठ पुत्र है, इसलिये उसे पाण्डवों के विरुद्ध युद्ध नहीं करना चाहिए। कृष्ण चाहते हैं कि कर्ण पाण्डवों के अग्रज की भांति रहे और अपनी इसी इच्छा से प्रेरित होकर वे कर्ण के समक्ष अत्यन्त सलोना दृश्य उपस्थित करते हुए कहते हैं :

चल होकर संग अभी मेरे, हैं जहाँ पाँच भ्राता तेरे।
बिछुड़े भाई मिल जायेंगे,
हम मिलकर मोद मनाएंगे।'

× × ×

पद-त्राण भीम पहनायेगा, धर्माधिप चंवर डुलायेगा,
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव-नकुल अनुचर होंगे।

इन पंक्तियों से केवल ऐसा ही आभास मिलता है कि पार्थ अर्थात् अर्जुन एक पराक्रमी वीर है।

अर्जुन का चरित्र सातवें सर्ग में और अधिक विकसित हुआ है। युद्धक्षेत्र में कर्ण और अर्जुन युद्धरत है। जब कर्ण के सामने अर्जुन का रथ आता है तो वह अनायास कह उठता है :

'विधि ने जिस हेतु पार्थ ! हम दोनों का निर्माण किया,
जिस लिए प्रकृति के अनल का हम दोनों ने पान किया
आ गया भाग्य से आज जन्म-जन्मों का निर्धारित वह क्षण।'

कर्ण अर्जुन को यह भी कहता है कि :

'हो गया बड़ा अतिकाल आज,
फैसला हमें कर लेना है।
शत्रु का या कि अपना मस्तक,
काट कर यहीं धर देना है।'

कर्ण के इन वीरतापूर्ण शब्दों को सुनकर अर्जुन अग्नि की तरह दहक उठा और वीरोचित शिष्टता एवं संयम को तिलांजलि देकर बोला :

'रे सारथि पुत्र ! किया तूने, सत्य ही, योग्य निश्चय
पर, कौन रहेगा यहां ? बात यह अभी बताये देता हूं,
धड़ पर से तेरा शीश मूढ़ ! ले अभी हटाये देता हूं।'

निस्सन्देह यहां अर्जुन का कर्ण को 'सारथि पुत्र' कह कर सम्बोधित करना अर्जुन सरीखे पराक्रमी वीर को शोभा नहीं देता है। इस दृष्टि से अर्जुन के चरित्र में माँसलता का स्पष्ट अभाव दीखता है। यह ठीक है कि कर्ण आरम्भ से अन्त तक अर्जुन के रक्त का प्यासा रहा है किन्तु फिर भी, उसने सदैव वीरोचित संयम और शिष्टता का निर्वाह अवश्य किया है। अर्जुन के उपर्युक्त तीखे शब्दों के उत्तर में भी कर्ण ने अर्जुन को 'शाबाश, वीर अर्जुन" कहकर संबोधित किया है।

अर्जुन के चरित्र की एक और विशेषता बताए बिना उस वीर योद्धा के प्रति पूरा न्याय नहीं हो पाएगा। अर्जुन के चरित्र में सर्वत्र चरित्र-स्वातंत्र्य नहीं बना रहा है। युद्धक्षेत्र में तो वह श्रीकृष्ण के मानसिक दास के रूप में अवतरित हुआ है और उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व उभर ही नहीं पाया है। जब युद्ध-भूमि में कर्ण के रथ का चक्का धरती में धंस जाता है और कर्ण शरासनहीन होकर उस चक्के को निकालने के लिए रथ से नीचे उतरता है तो श्रीकृष्ण अर्जुन को यह उपदेश देते हैं कि :

'खड़ा है देखता क्या मौन भोले ?
शरासन तान, बस, अवसर यही है,
घड़ी फिर और मिलने को नहीं है,
विशिख कोई गले के पार कर दे,
अभी ही शत्रु का संहार कर दे।'

इस पर भी अर्जुन का मन संकोच-भार से दब गया। उसके भीतर का वीर बोला कि इस प्रकार निहत्थे शत्रु पर वार करना वीरोचित नहीं है। युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन की यह मानसिक द्विविधा निस्सन्देह उसके चरित्र का चरम विकास है। भगवान श्रीकृष्ण का उक्त आदेश सुनकर भी उसने अत्यन्त नम्र भाव से श्रीकृष्ण को निवेदन किया :

'नरोचित, किन्तु क्या यह कर्म होगा ?
मलिन इससे नहीं क्या धर्म होगा ?'

इस प्रकरण से स्पष्ट है कि अर्जुन एक पराक्रमी वीर होने के साथ-साथ धर्मभीरु और सदय भी है। तथापि अन्ततः यह श्रीकृष्ण के आदेश पर कर्ण पर प्रहार कर देता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि :

'शिथिल कर पार्थ ! किंचित भी न मन तू
न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू।
कड़ा कर वक्ष को, शर मार इसको
चढ़ा शायक, तुरन्त संहार इसको।'

यहां अर्जुन के व्यक्तित्व पर श्रीकृष्ण का आदेश छा गया है। अर्जुन एक कठपुतली की भांति श्रीकृष्ण के इंगितों पर नाचने लगा। निस्सन्देह अर्जुन के व्यक्तित्व का यह पक्ष अपेक्षित चारित्रिक दृढ़ता और मनोबल के अभाव का प्रतीक है तथापि व्यापक हित की दृष्टि से उसने जो कुछ किया उसका मूल्यांकन इतिहास के विद्यार्थी का विषय है। प्रस्तुत प्रसंग में कवि केवल कर्ण के चरित्र को उच्चता के बहुसम्भव सोपानों पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। यही कारण है कि उसने निहत्थे कर्ण पर अर्जुन के प्रहारों का वर्णन करके पाठक के मन में कर्ण के प्रति सहानुभूति का भाव जागृत किया है और इस प्रकार अर्जुन के चरित्र के इस किंचित दुर्बल पक्ष को अधिक उभारा है। इस दृष्टि से 'रश्मिरथी' के निम्न पद द्रष्टव्य हैं :

'लगा राधेय का शर मारने वह,
विपद में शत्रु को संहारने वह,
शरों से बेधने तन को, बदन को,
दिखाने वीरता निःशस्त्र जन को।
विशिख-संधान में अर्जुन निरत था,
खड़ा राधेय निःसंबल, विरथ था,
खड़े निर्वाक सब जन देखते थे,
अनोखे धर्म का रण देखते थे।'

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अर्जुन एक पराक्रमी वीर तो है किन्तु उसके भीतर विवेक-बुद्धि का अभाव है। अन्तिम सर्गों में तो उसकी विवेक-बुद्धि पूर्णतः मृतप्राय हो जाती है और वह एक कठपुतली की तरह भगवान श्रीकृष्ण के इंगितों पर ही नाचता है। कर्ण की तुलना में अर्जुन का चरित्र अत्यन्त साधारण है। उसमें कर्ण की-सी चारित्रिक दृढ़ता, मनोबल, पराक्रम एवं शौर्य नहीं है। युद्ध के मैदान में उसका एकमात्र सम्बल श्रीकृष्ण की रक्षिता भुजा है।

(ग) दुर्योधन—'रश्मिरथी' का दुर्योधन महाभारत के दुर्योधन की भांति ही अत्यन्त व्यवहार-कुशल, स्वार्थी और पाण्डवों का महान शत्रु है। कुछ मिला कर देखा जाय तो महाभारत के भीषण नरसंहार का दायित्व अधिकांशतः उसी के कलंकित भाल का टीका है। यदि वह न्यायप्रिय होता और पाण्डवों को उनका समुचित राज्यक्षेत्र दे देता तो निस्सन्देह महाभारत का युद्ध टल सकता था। दुर्योधन के अन्तर्मन में पाण्डवों के प्रति जन्मजात ईर्ष्या के भाव सहज सुलभ हैं।

'रश्मिरथी' में दुर्योधन का प्रथम परिचय पहले ही सर्ग में उस समय होता है जबकि गुरु द्रोणाचार्य कर्ण को उसकी जाति और वंश के नाम पर अपमानित कर रहे होते हैं। रंगभूमि में अर्जुन ने 'अनोखा समां' बांधा हुआ था कि तभी यशस्वी कर्ण वहां आ गया और उसने अर्जुन को शस्त्रज्ञान के प्रदर्शन के लिए चुनौती दी। कर्ण के शस्त्रास्त्र ज्ञान को देख कर रंगभूमि में उपस्थित सारा जन-समूह साधुवाद कर उठा। इसके पश्चात् कर्ण ने द्वन्द्वयुद्ध के लिए चुनौती दी। गुरु द्रोणाचार्य ने हस्तक्षेप करते हुए कहा कि अर्जुन एक राजपुत्र है और उसके साथ द्वन्द्वयुद्ध वही व्यक्ति कर सकता है जोकि एक राजपुत्र हो। कर्ण इस अनोखी शर्त को सुनकर हतप्रभ हो गया। तभी दुर्योधन आगे बढ़ा और उसने कर्ण का पक्ष लेते हुए कहा—

'बड़ा पाप है करना, इस प्रकार अपमान।
उस नर को जो दीप रहा हो सचमुच सूर्य समान।'

यही नहीं, दुर्योधन ने अपनी व्यवहार-कुशलता का परिचय देते हुए यह भी कहा :

'करना क्या अपमान ठीक है इस अनमोल रतन का,
मानवता की इस विभूति का? धरती के इस धन का?
बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार
तो मेरी यह खुली घोषणा सुने सकल संसार।
अंगदेश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूं,
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूं।'

यद्यपि दुर्योधन ने इस प्रकार कर्ण के मन में आदरपूर्ण स्थान बना लिया था तथापि उसकी यह अप्रत्याशित कृपा पूरी तरह स्वार्थहीन नहीं है। वस्तुतः कर्ण पर उसकी यह कृपा किसी सत्प्रेरणा अथवा सद्भावना की नहीं अपितु स्वार्थ-साधन की परिचायक है। इस कठिन घड़ी में कर्ण का सहायक बनकर दुर्योधन ने कर्ण जैसे शौर्यवान वीर को अपने पक्ष में ले लिया। दुर्योधन की राज्यलिप्सा और सत्ता की तृष्णा उस समय प्रकट होती है जबकि भगवान श्रीकृष्ण पाण्डवों का संदेशा लेकर उसके पास आते हैं और कहते हैं :

'दो न्याय अगर तो आधा दो, पर इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पांच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।

हम वही खुशी से खायेंगे,
परिजन पर असि न उठायेंगे।'

कहना न होगा कि श्रीकृष्ण के माध्यम से भेजा गया पाण्डवों का यह प्रस्ताव केवल न्यायोचित ही नहीं अपितु युद्ध को टालने की दशा में किया गया एक सच्चा प्रयास भी था किन्तु स्वार्थान्ध दुर्योधन ने शांति के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इसके विपरीत, दुर्योधन अन्याय और मद के वशीभूत होकर भगवान श्रीकृष्ण को ही बन्दी बनाने की सोचने लगा। स्वभावतः श्रीकृष्ण को रूप का विस्तार करना पड़ा और दुर्योधन को यह बताना पड़ा कि 'भूलोक अतल पाताल, गत और अनागत' सभी कुछ उन्हीं में निहित है। श्रीकृष्ण के अत्यन्त विकराल रूप को देख कर दुर्योधन को अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ। अन्ततः श्रीकृष्ण दुर्योधन को यह कहकर चले गये :

'हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ—
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन-जय या कि मरण होगा।'

दुर्योधन में वीरोचित धैर्य और विवेक का भी अभाव है। यही नहीं, बल्कि सच तो यह है कि कर्ण की पराजय का कारण भी दुर्योधन था। यदि कुरुक्षेत्र में दुर्योधन तनिक धैर्य और विवेक से कार्य करता और कर्ण की एकघ्नी को 'घटोत्कच' पर न चलवाता तो निस्सन्देह महाभारत के युद्ध का रूप ही कुछ और होता। युद्धक्षेत्र में अर्जुन की विजय सुनिश्चित करने के लिए कर्ण को एकघ्नी से वंचित करना आवश्यक था। इस कार्य की पूर्ति योजनाबद्ध रूप में की गई और इसके लिए घटोत्कच को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। श्रीकृष्ण ने घटोत्कच को उकसाते हुए कहा :

'बेटा ! क्या देख रहा ?
हाथ से विजय जाने पर है।
अब सबका भाग्य एक तेरे
कुछ करतब दिखलाने पर है।'

इसका परिणाम यह हुआ कि कौरवों की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई। घटोत्कच के दानवी रूप का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

'कूदा रण में त्यों महाघोर
गर्जन का दानव किमाकर,
सत्य ही असुर के आते ही
रण का वह क्रम टूटने लगा।
कौरवी अनी भयभीत हुई,
धीरज उसका छूटने लगा।'

जब इस महादानव की विनाशलीला को रोकना दूभर हो गया और कौरवों की सेना का मनोबल गिरने लगा तो दुर्योधन घबरा उठा। घटोत्कच की इस दानवी-लीला से त्रस्त दुर्योधन कर्ण को कहने लगा :

'क्या देख रहे हो सखे ! दस्यु,
ऐसे क्या कभी मरेगा यह ?
दो घड़ी और जो देर हुई
सबका संहार करेगा यह।'

दुर्योधन ने कर्ण को एकघ्नी धारण करने की सलाह देते हुए कहा :

'अब नहीं अन्य गति, आंख मूंद,
एकघ्नी का संधान करो।
अरि का मस्तक है दूर, अभी
अपनों के शीश बचाओ तुम।'

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दुर्योधन महाभारत का एक ऐसा पात्र है जिसके कारण कर्ण को भी पराजय देखनी पड़ी। आरम्भ में दुर्योधन एक अत्यन्त आदर्श चरित्र-सा प्रतीत होता है किन्तु शीघ्र ही उसका कुटिल रूप सामने आ जाता है। पाण्डवों के नितान्त न्यायपूर्ण प्रस्ताव को ठुकराना ही दुर्योधन के दुष्ट एवं कुटिल चरित्र का परिचायक है। दुर्योधन वीर योद्धा भी नहीं है। वस्तुतः वह तो छलपूर्ण राजनीतिक चालों में ही विश्वास करता है। धर्म, न्याय, नीति आदि के प्रति उसके मन में कोई श्रद्धा नहीं है। यही नहीं, दुर्योधन में दूरदर्शिता का भी अभाव है। युद्धक्षेत्र में उसी की अदूरदर्शिता और विवेकहीनता के कारण स्वयं उसे और उसके मित्र कर्ण को पराजय का मुख देखना पड़ा। कर्ण की तुलना में दुर्योधन का चरित्र अत्यन्त क्षुद्र और बौना दिखाई देता है।

(घ) भीष्म—भीष्म महाभारत के पात्रों में पितामह के रूप में विख्यात थे। आजीवन ब्रह्मचारी रहने के कारण ही इनका नाम भीष्म पितामह पड़ गया। भीष्म कौरवों तथा पाण्डवों दोनों के पूज्य थे।

'रश्मिरथी' में भीष्म के दर्शन सर्वप्रथम छठे सर्ग में होते हैं। कहते हैं कि भीष्म ने महाभारत का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व ही कर्ण को अधिरथी कहकर पुकारा था और कर्ण ने अपने को अपमानित अनुभव किया था। अतः उसने यह निश्चय किया कि जब तक भीष्म युद्ध में लड़ते रहेंगे तब तक वह युद्ध-क्षेत्र में नहीं कूदेगा। अन्ततः भीष्म पितामह गिर पड़े। शरशैय्या पर पड़े हुए भीष्म की प्रतीक्षा में स्वयं मृत्यु खड़ी हुई थी। भीष्म अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली और वीर योद्धा थे। उनकी विशालकाया की तुलना 'पर्वत' से करते हुए कवि कहता है।

'गिरि का उदग्र गौरवाधार, गिर जाय शृंग ज्यों महाकार
अथवा सूना कर आसमान, ज्यों गिरे टूट रवि भासमान।'

उक्त पंक्तियों से ऐसा पता चलता है कि भीष्म भूधराकार शरीरधारी महापराक्रमी योद्धा थे। तथापि भीष्म के मन में कर्ण के प्रति एक प्रकार का ईर्ष्यामिश्रित द्वेषभाव रहता था और इसका एकमात्र कारण यही था कि भीष्म यह नहीं चाहते थे कि कर्ण दुर्योधन के विश्वास का भाजन बने। यही कारण है कि वे प्रायः कर्ण के प्रति द्वेषपूर्ण व्यवहार ही किया करते थे। कर्ण भी उनकी इस द्वेषभावना से परिचित था और इसीलिए युद्धक्षेत्र में उतरने से पूर्व वह उनका आशीर्वाद ग्रहण करने आया। शरशैय्या पर पड़े हुए इस भूधराकार शरीरधारी भीष्म का हृदय अन्तिम समय में करुणा और उदारता से पसीज गया था। इस युद्ध के कारणों का सम्यक् विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए भीष्म कहते हैं :

'मैं रहा रोकता ही क्षण क्षण, पर हाय, हठी यह दुर्योधन,
अंकुश विवेक का सह न सका, मेरे कहने में रह न सका।
क्रोधान्ध, भ्रान्त, मद में विभोर,
ले ही आयी संग्राम घोर।'

यहाँ भीष्म का चरित्र एक विचारशील दार्शनिक की भांति दीखता है जो युद्ध की विभीषिका से त्रस्त होकर पुनः शान्ति और परस्पर सहयोग की भावना की प्रतिष्ठा के लिए आतुर होता है। शरशैय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह एक महान् शान्ति-दूत की तरह कर्ण का प्रबोधन करते हुए कहते हैं :

'इसलिए पुत्र ! अब भी रुक कर, मन में सोचो यह महासमर,
किस ओर तुम्हें ले जायेगा, फल अलभ कौन दे पायेगा ?
मानवता ही मिट जायेगी,
फिर विजय-सिद्धि क्या लायेगी।'

अपनी अन्तिम घड़ियों में भीष्म अपने मन का बोझ भी हल्का करना चाहते हैं। इस अवसर पर वे कर्ण की वीरता और पराक्रम की प्रशंसा करते हैं और इससे पहले के अपने दुर्व्यवहार के प्रति ग्लानि का भाव प्रकट करते हैं :

'ओ मेरे प्रतिद्वन्द्वी मानी ! निश्छल, पवित्र, गुणमय, ज्ञानी।
मेरे मुख से सुन परुष वचन, तुम वृथा मलिन करते थे मन।
मैं नहीं निरा अवशंसी था,
मन-ही-मन बड़ा प्रशंसी था।'

भीष्म के ये निश्छल शब्द इनके भारीभरकम व्यक्तित्व के सर्वथा अनुरूप हैं। वीरों का सम्मान केवल वीर ही कर सकते हैं। कर्ण एक वीर था और इसलिए उसकी वीरता की प्रशंसा भी उसके समकक्ष का कोई वीर ही कर

सकता था। मुक्तकण्ठ से कर्ण की प्रशंसा करके भीष्म पितामह का चरित्र भी और अधिक उज्जवल बन पड़ा है। अन्तिम समय में भीष्म यह स्वीकार करते हैं कि—"हे कर्ण, मेरा तुम्हारा बैर केवल इसलिए था कि तुम दुर्योधन के विश्वासभाजन थे" :

अन्यथा पुत्र ! तुमसे बढ़कर,
मैं किसे मानता वीर प्रवर।'

कर्ण की प्रशंसा करते हुए भीष्म उसे कृष्ण के समकक्ष स्थान देने तक में नहीं हिचकते। निस्सन्देह यह उसके निश्छल हृदय से निकली सीधी-सच्ची वाणी है :

'पार्थोपम रथी, धुनर्धारि, केशव-समान रण-भट भारी,
धर्मज्ञ, धीर, पावन चरित्र, दीनों-दलितों के विहित मित्र।
अर्जुन को मिले कृष्ण जैसे,
तुम मिले कौरवों को वैसे।'

शान्ति के अग्रदूत के रूप में भीष्म के चरित्र का यह पक्ष निस्सन्देह बहुत उज्जवल बन पड़ा है। युद्ध के क्षेत्र में भीष्म पितामह का यह बेजोड़ प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। एक ओर दुर्योधन की रणलिप्सा, अन्याय और कपट पर आधृत जीवन-दर्शन और दूसरी ओर युद्ध की अग्नि को शमित करने की दिशा में भीष्म का यह एक सच्चा और सशक्त प्रयास—दोनों ही दो विपरीत विचारधाराओं के संघात का परिचय देते हैं। तथापि भीष्म कर्ण को समझाते हुए कहते हैं :

'चल सके सुयोधन पर यदि वश, बेटा लो जग में नया सुयश,
लड़ने से बढ़ यह काम करो, आज ही बन्द संग्राम करो।
यदि इसे रोक तुम पाओगे,
जग के त्राता कहलोगे।'

इतिहास में यह सचमुच एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थल ही कहा जायेगा कि ऐसी सामयिक मन्त्रणा का कोई प्रभाव नहीं हुआ। कर्ण ने प्रत्युत्तर में अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि अब युद्ध को रोकना असम्भव है। कर्ण कहता है कि अब तो केवल दो ही विकल्प हैं—जय अथवा पराजय। भीष्म का करुणासिक्त हृदय कर्ण के इस दो-टूक उत्तर को सुनकर हताश हो गया। उन्हें दुख था कि उनका यह अन्तिम प्रयास भी निष्फल रहा। भीष्म के निम्न वचन निराशा के भार से रुँधे हुए प्रतीत होते हैं :

'गांगेय निराशा में भर कर बोले, 'तब हे नरवीर प्रवर।
जो भला लगे, वह काम करो, जाओ रण में लड़ नाम करो।
भगवान् शमित विष पूर्ण करें,
अपनी इच्छाएँ पूर्ण करें।'

(ङ) द्रोणाचार्य : गुरु द्रोणाचार्य कौरवों-पाण्डवों को धनुर्विद्या की शिक्षा देते थे। 'रश्मिरथी' में इनका परिचय पहले सर्ग में ही होता है। रंगभूमि में द्रोणाचार्य का सर्वाधिक प्रिय शिष्य अर्जुन 'अनोखा समां' बांधे हुए था। तभी पराक्रमी वीर कर्ण भी वहां आ जाता है और अपनी 'रण-कलाएँ' दिखाकर वहाँ उपस्थित जनसमूह का साधुवाद प्राप्त करता है। गुरु द्रोणाचार्य अर्जुन के प्रति अपूर्व स्नेह रखते हैं और वे यह नहीं चाहते कि अर्जुन का कोई भी प्रतिद्वन्द्वी हो। रण-कलाएँ दिखलाने के पश्चात् कर्ण ने अर्जुन को द्वन्द्वयुद्ध की चुनौती दी और इससे पहले कि अर्जुन चुनौती को स्वीकार अथवा अस्वीकार करे, गुरुजी ने हस्तक्षेप किया और कर्ण से कहा कि :

'सुनो हे वीर युवक अनजान,
भरत-वंश अवतंस पाण्डु की अर्जुन है संतान।
क्षत्रिय है, यह राजपुत्र है, यों ही नहीं लड़ेगा।
जिस तिससे हाथपाई में कैसे कूद पड़ेगा।
अर्जुन से लड़ना हो तो मत गहो सभा में मौन,
नाम धाम कुछ कहो बताओ कि तुम जाति हो कौन।'

कर्ण के पास जाति और वंश के नाम पर केवल भुजदण्ड थे। वह स्पष्ट शब्दों में कहता है कि उसकी जाति तो उसके भुजदण्ड हैं। यही नहीं, वह अर्जुन के क्षत्रियत्व को भी ललकारता है किन्तु गुरु द्रोणाचार्य अत्यन्त संयम और दूरदर्शिता से काम लेकर स्थिति को बिगड़ने नहीं देते। कर्ण के अत्यन्त उत्तेजनात्मक शब्दों को सुनकर भी गुरु द्रोणाचार्य अत्यन्त सन्तुलित भाषा में कर्ण को समझाते हुए कहते हैं कि :

'वृथा तुम क्रुद्ध हुए जाते हो,
साधारण-सी बात, उसे भी समझ नहीं पाते हो।
राजपुत्र से लड़े बिना होता हो अगर अकाज,
अर्जित करना तुम्हें चाहिए पहले कोई राज।'

इस प्रकार गुरु द्रोणाचार्य के चरित्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है—विवेकशील, दूरदर्शिता और अधिकाधिक उत्तेजना की स्थिति में अनुकरणीय संयम एवं सन्तुलन का प्रदर्शन।

गुरु द्रोणाचार्य के व्यक्तित्व का एक दुर्बल पक्ष भी है। गुरुजी अर्जुन के प्रति सर्वाधिक स्नेह रखते थे। उनके इस स्नेह की चरम सीमा यह थी कि वे यह सहन नहीं कर सकते थे कि कोई भी अन्य व्यक्ति अर्जुन से श्रेष्ठतर धनुर्धारी हो। अपने इस ध्येय की पूर्ति में वे अनुचित अथवा धर्म-विरुद्ध साधनों का प्रयोग करने में भी नहीं हिचकते थे। अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए वे अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को कहते हैं कि :

'जनमे नहीं जगत में अर्जुन ! कोई प्रतिबल तेरा,
टँगा रहा है एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा।
एकलव्य से लिया अंगूठा, कढ़ी न मुख से आह,
रखना चाहता हूँ निष्कंटक बेटा ! तेरी राह।'

अपने इस कुत्सित लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपनी योजना का ब्योरा देते हुए वह कहते हैं कि इतना तो निश्चित है कि मैं उसे दीक्षा नहीं दूंगा। वैसे गुरु जी अर्जुन को भी जागरूक रहने की सलाह देते हैं। गुरु द्रोणाचार्य के चरित्र का सबसे अधिक दुर्बल पक्ष यही है कि वे अर्जुन को विश्वविजयी बनवाने के लिए छल-कपट तक का आश्रय ले सकते हैं। एकलव्य की कथा, जिसका उल्लेख उक्त पंक्तियों में किया गया है, उनके चरित्र के इसी पक्ष—दुर्बलता को प्रकाशित करती है। गुरु का पद अत्यन्त ऊँचा माना गया है। भारतीय साहित्य में तो गुरु का पद 'गोविन्द' से भी ऊँचा माना गया है। इस दृष्टि से गुरु द्रोणाचार्य का चरित्र एक आदर्श गुरु की शोभा नहीं हो सकता। 'गुरु' शब्द में 'जिन उच्च आदर्शों, निष्कलंक चरित्र एवं निश्छल हृदय' आदि की परिकल्पना निहित है, गुरु द्रोणाचार्य में उन सबका प्रायशः अभाव है। चारित्रिक ईमानदारी की दृष्टि से गुरु द्रोणाचार्य कर्ण के समक्ष अत्यन्त क्षुद्र और सामान्य ही दीखेंगे।

(च) परशुराम—परशुराम भी एक पौराणिक पात्र हैं और 'रश्मिरथी' में उनका परिचय दूसरे सर्ग में मिलता है। परशुराम एक ऐसा पात्र है जिसमें विवेक और व्यवहार, असि और त्याग का अभूतपूर्व सम्मिश्रण देखा जा सकता है। कवि ने परशुराम के चरित्र की बहुत-सी रेखाएँ महेन्द्रगिरि पर स्थित उनकी एकान्त कुटी और निकटवर्ती वातावरण का वर्णन करके उभारने का प्रयत्न किया है। महेन्द्रगिरि पर स्थित परशुराम की कुटिया तथा उसके आस-पास का वातावरण ही महाक्रोधी मुनि परशुराम के चरित्र, उनकी अभिरुचियों आदि का परिचायक है। वहाँ के वातावरण में शांति और समृद्धि दीखती है। यज्ञ-कर्म आदि में परशुराम की रुचि का परिचय देते हुए कवि कहता है :

'हवन अग्नि बुझ चुकी, गंध से वायु अभी, पर माती है
भीनी भीनी महक प्राण में मादकता पहुँचाती है।'

चारों ओर दिव्य शान्ति छाई हुई है। चूहे, गिलहरी आदि निर्भय होकर धान के कटे हुए खेतों में दाने खा रहे हैं। एक ओर गायें बैठी हुई हैं। बन के सारे जीव-जन्तु बिलों से निकलकर निर्भय होकर वहाँ विचरण कर रहे हैं।

वहाँ एक ओर तो मृग चर्म, कुश, पालाश, कमंडल आदि दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर धनुष, तूणीर, तीर, बरछे आदि सुसज्जित हैं। कुटिया के मुख्य द्वार पर एक चमचमता हुआ फरसा टंगा है जिसे देखकर मन घबरा जाता है।

कवि ने इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करके परशुराम के व्यक्तित्व की झाँकी ही प्रस्तुत की है। इस वातावरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि जन-कोलाहल से दूर इस एकांत में रहने वाला व्यक्ति तप, त्याग और असि का एक साथ अनुष्ठान करता है। शक्ति और विवेक का सामंजस्य आवश्यक है अन्यथा विवेकहीन शक्ति, तप-त्यागहीन, पराक्रम केवल विध्वंस का कारण हो सकता है। कवि ने इस पात्र का निर्माण करके आधुनिक युग की विषमताओं का उपचार ढूंढ़ने का भी प्रयास किया है। इस पात्र द्वारा कवि यही सिद्ध करना चाहता है कि वस्तुतः पराक्रमी वीर का शृंगार केवल शारीरिक-बल ही नहीं होता, इसके साथ ही शास्त्रसम्मत विवेक का अंकुश आवश्यक है। कवि बताता है कि :

'परशु और तप, ये दोनों वीरों के ही होते शृंगार,
क्लीव न तो तप ही करता है, न तो उठा सकता तलवार।
तप से मनुज दिव्य बनता है, षड् विकार से लड़ता है।
तन की समरभूमि में लेकिन, काम खड्ग ही करता है।'

इन पंक्तियों में कवि ने परशुराम के व्यक्तित्व का प्रकाशन ही किया है क्योंकि परशुराम के भीतर तपस्या का दिव्य तेज और शक्ति का अक्षय कोश विद्यमान है। आगे चलकर कवि परशुराम का और स्पष्ट परिचय देते हुए कहता है कि यह कुटिया उसी परशुराम की है जिसके पास शस्त्र और शास्त्र दोनों का सम्बल है। कवि के शब्दों में :

'मुख में वेद, पीठ पर तरकस, कर में कठिन कुठार, विमल,
शाप और शर, दोनों ही थे, जिस महान ऋषि के संबल।
यह कुटी है उसी महामुनि परशुराम बलशाली का,
भृगु के परम पुनीत वंशधर, व्रती, वीर प्रणपाली का।'

इन पंक्तियों से परशुराम के चरित्र की विशेषताओं पर और अधिक प्रकाश पड़ता है। कवि के अनुसार परशुराम में कोमलता और कठोरता, शस्त्र और शास्त्र दोनों का सुखद सम्मिश्रण है। परशुराम एक ओर कठोर तपस्या में लीन हैं तो दूसरी ओर उनके कुटीर के मुख्य द्वार पर टंगा चमचमाता हुआ परशु उनके अपूर्व पराक्रम और शौर्य का प्रतीक है। जीवन की पूर्णता के लिए इन दोनो तत्वों की अवस्थिति अनिवार्य है। केवल शक्ति अपने आप में अन्धी होती है और अकेला शास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण होता है। कहते हैं कि परशुराम ने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियविहीन किया था। कहना न होगा कि यह अकेला तथ्य परशुराम के पराक्रमी और अपूर्व बलशाली व्यक्तित्व का परिचायक है।

परशुराम यही चाहते हैं कि ब्राह्मणों में तप और त्याग तो होना चाहिए किन्तु निरा तप-त्याग ही पर्याप्त नहीं है। तप-त्याग के साथ 'लोहे के भुजदण्ड'

होने भी आवश्यक हैं अन्यथा संसार उनकी कोई परवाह नहीं करेगा। सत्ता और वैभव के अधिकारी लोग केवल खड्ग की भाषा पहचानते हैं। तभी तो परशुराम कहते हैं :

'पत्थर सी हों मांसपेशियाँ, लोहे से भुजदण्ड अभय,
नस-नस में हो लहर आग की, तभी जवानी पाती जय।'

असिविहीन ब्राह्मण केवल अपमान और तिरस्कार का भागी होता है। राजाओं की रणलिप्सा और शोणित की प्यास उन्हें मदान्ध किये हुए है। उनके समक्ष वही ब्राह्मण आदर पाता है जो शास्त्र-ज्ञान के साथ शस्त्र-चालन में भी निष्णात हो। इस प्रकार रश्मिरथी के दूसरे सर्ग में परशुराम के व्यक्तित्व का भरा-पूरा परिचय मिलता है। इस सर्ग में मूल कथा को भी गति मिलती है और कर्ण एवं परशुराम के परस्पर सम्वादों से परशुराम के व्यक्तित्व की अन्य सूक्ष्म रेखाएँ भी उभरती हैं।

पहले सर्ग में अपमानित और उपेक्षित होने के पश्चात् कर्ण शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करने के लिए परशुराम की सेवा में उपस्थित होता है। कर्ण के तेजपूर्ण मुखमण्डल को देखकर परशुराम उसे ब्राम्ह्मणकुमार समझ लेते हैं और कर्ण भी धनुर्विद्या सीखने के लोभ से गुरु की इस भ्रांति का खण्डन नहीं करता। कर्ण की लगन और निष्ठापूर्ण भक्ति देखकर परशुराम गदगद हो गए और उन्होंने भी पूरी लगन के साथ कर्ण को शस्त्रविद्या का दान दिया। परशुराम का कठोर हृदय कर्ण की भक्ति और सेवाभाव से विजित हो गया। उन्होंने बताया कि उसे शस्त्र-विद्या सिखाने में उन्हें अपना रक्त जलाना होता है :

'जरा सोच, कितनी कठोरता से मैं, तुझे चलाता हूँ,
और नहीं तो एक पाव दिन भर में रक्त जलाता हूँ।'

इसी क्रम में परशुराम युद्धलिप्सा में रत राजाओं के स्वार्थी जीवन एवं कुत्सित इरादों को प्रकट करते हुए युद्ध के कारणों पर अत्यन्त व्यावहारिक स्तर पर अपने विचार प्रकट करते हैं। परशुराम बताते हैं कि रणलिप्सा में मग्न यह शासकवर्ग जन-कल्याण के लिए नहीं बल्कि स्वयं अपनी वैभव-विलास वृद्धि के लिए विनाशकारी युद्धों का आयोजन करता है। इनके समक्ष समाज के उपेक्षित और दीनहीन वर्गों की समुन्नति का कोई प्रश्न नहीं होता है। इनके शस्त्रास्त्र वीरोचित विवेक से संचालित नहीं होते अपितु उनके पीछे इनकी राज्यलिप्सा, दीनों के शोषण का कुत्सित भाव छलकता है। इन्हें किसी भी प्रकार का विरोध सहन नहीं होता और ये अपने मार्ग को पूर्णतः निष्कंटक बनाने के लिए कृतसंकल्प होते हैं। कवि ने इन सभी कटु तथ्यों का अत्यन्त प्रभावशाली तथा मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है :

'औ' रण भी किसलिए? नहीं जग से दुख-दैन्य भगाने को,
परशोषक, पथभ्रांत मनुज को नहीं धर्म पर लाने को।
रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएं मिलें उन्हें वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें,
बढ़े राज की सीमा, जिससे अधिक जनों को लूट सकें।
रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,
भूपों के विपरीत न कोई कहीं कभी कुछ भी बोले।'

इस प्रसंग में परशुराम एक और महत्वपूर्ण बात भी कहते हैं। उनके मतानुसार सुदृढ़ राज्य केवल शक्ति के बल पर ही नहीं चलता। जिस राज्य में कवियों, पण्डितों, विद्वानों, तपस्वियों आदि को उचित सम्मान नहीं मिलता वह राज्य कभी भी स्थाई नहीं हो सकता। केवल शक्ति का भय मनुष्य को नैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के सोपानों तक नहीं पहुंचा सकता। शासक की शक्ति, प्रजा के हृदय को नहीं जीत सकती। निर्द्वन्द्व तथा निर्बाध शक्ति मनुष्य के शरीर को तो बाँध सकती है किन्तु उसके अन्तर्मन को स्पर्श नहीं कर सकती। परशुराम के ये सुचिन्तित विचार महाभारत युग के लिये ही नहीं, अपितु आधुनिक भारत के बड़े-से-बड़े राजनीतिज्ञों के पथ प्रदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। परशुराम की पक्की धारणा है कि जब तक :

'कवि, कोविद, विज्ञान-विशारद, कलाकार, पंडित, ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना, ज्ञान, उज्जवल चरित्र के अभिमानी।
इन विभूतियों को जब तक संसार नहीं पहचानेगा,
राजाओं से अधिक पूज्य जब तक न इन्हें वह मानेगा,
तब तक पड़ी आग में धरती इसी तरह अकुलायेगी,
चाहे जो भी करे, दुखों से छूट नहीं वह पायेगी।'

परशुराम में मानवता के उदात्त गुणों के प्रति भी महान् आस्था और विश्वास है। उनके विचार से शक्ति का प्रयोग वही कर सकता है जिसमें मानवीय मूल्यों के प्रति दृढ़ विश्वास हो। शक्ति का निर्बाध प्रयोग अवश्य विनाशकारी और मानवता के लिए अहितकर होता है। मानवता के सनातन मूल्यों की रक्षा का महत्व सर्वोपरि होता है। अपने प्रिय शिष्य कर्ण का प्रबोधन करते हुए परशुराम कहते हैं कि :

'वीर वही है जो कि शत्रु पर जब भी खड्ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।'

उनके विचार से महाभयकारी खड्ग को प्रत्येक व्यक्ति धारण नहीं कर सकता। परशुराम के शब्दों में :

'वही उठा सकता है इसको, जो कठोर हो, कोमल भी,
जिसमें हो धीरता, वीरता और तपस्या का बल भी।'

परशुराम का क्रोधी स्वभाव तो जगविदित है। उनके क्रोधी स्वभाव की एक बानगी दूसरे सर्ग में उस समय देखने को मिलती है जबकि उन्हें यह पता चलता है कि उनका प्रिय शिष्य कर्ण ब्राह्मणकुमार नहीं है अपितु सूत-पुत्र है। जब परशुराम को यह पता लगा कि कर्ण ने छल से शस्त्रज्ञान प्राप्त किया है तो :

'दाँत पीस आँखें तरेर कर बोले—'कौन छली है तू?
ब्राह्मण है या और या किसी अभिजन का पुत्र बली है तू?'

कर्ण ने अपनी भूल स्वीकार की और क्षमायाचना की। परशुराम क्रोधाग्नि से तिलमिला रहे थे। उन्हें अब ज्ञात हुआ था कि कर्ण इसी कारण बड़ी लगन और भक्ति के साथ उनकी सेवा करता था और उनके मुख से निकले प्रत्येक शब्द को ध्यान से सुनता था। कर्ण की गुरुभक्ति की प्रशंसा करते हुए परशुराम यहां तक कहते हैं कि :

'देखे अगणित शिष्य, द्रोण को भी कुछ करतब सिखलाया,
पर तुझ सा जिज्ञासु आज तक कभी नहीं मैंने पाया।'

परशुराम मुक्तकण्ठ से यह स्वीकार करते हैं कि कर्ण की गुरुभक्ति को देखकर वे कर्ण को अपने पुत्र-सा स्नेह करने लगे थे। यही कारण है कि इस दुःखद घड़ी में उनका क्रोधी मन करुणा से सहज ही पसीज गया। अपने मन की इस उद्विग्न स्थिति का वर्णन करते हुए परशुराम कहते हैं :

'सुत सा रखा जिसे, उसको कैसे कठोर हो मारूं मैं,
जलते हुए क्रोध की ज्वाला लेकिन, कहां उतारूं मैं।'

तथापि उन्हें कर्ण को दण्डित अवश्य करना था, अपनी क्रोधाग्नि को कैसे तो शान्त करना ही था। अन्ततः उन्होंने कर्ण को प्राणदान तो दे दिया किन्तु उसके साथ ही यह शाप भी दे दिया कि :

'सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आयेगा।
है यह मेरा शाप, समय पर उसे भूल तू जायेगा।'

तथापि परशुराम का उद्विग्न मन यह शाप देकर भी शान्त नहीं हो पाया। सच तो यह है कि सम्भवतः स्वयं कर्ण को अपना यह सर्वस्व लुट जाने का इतना दुःख नहीं था जितना कि परशुराम को 'दिया ज्ञान हर लेने' का पश्चात्ताप था। तप और परशु के पुजारी परशुराम का क्रोधी मन कर्ण के इस दुर्भाग्य के प्रति द्रवित हो उठा था। उन्हें स्वयं अपने पर काबू नहीं रह गया था। उनके निम्न शब्द इसी तथ्य के परिचायक हैं कि इस महान् क्रोधी मुनि परशुराम के मन में करुणा का अजस्र स्रोत भी हिलोरें मारता था :

'जाओ, जाओ कर्ण ! मुझे बिलकुल प्रसंग हो जाने दो,
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है तुम्हें निराश देख कर छाती कहीं न फट जाये।
फिरा न लूं अभिशाप, पिघलकर वाणी नहीं उलट जाये।'

(छ) इन्द्र—देवराज इन्द्र का प्रथम परिचय चौथे सर्ग में मिलता है। इस सर्ग में इन्द्र का जो रूप वर्णित है उसे देखकर एकमात्र धारणा यही बनती है कि वह अपने पुत्र अर्जुन को विश्वविजयी बनाने के लक्ष्य को लेकर छल और कपटपूर्ण आचरण का आश्रय लेता है। उसे यह ज्ञात है कि जब तक कर्ण के पास कवच-कुण्डल हैं तब तक कर्ण को जीतना कठिन है। अतः वह कर्ण के पास इन्हीं कवच-कुण्डलों का दान लेने के लिए उपस्थित हुआ। निस्सन्देह उसका यह सारा कृत्य उसके चरित्र की दुर्बलता का ही परिचायक है।

इन्द्र के चरित्र की एक अन्यतम विशेषता उसकी वाकपटुता है। जब वह ब्राह्मण याचक के रूप में कर्ण के समक्ष उपस्थित होता है तो वह एकदम से अपना मन्तव्य नहीं प्रकट कर देता। अपने इस पापपूर्ण ध्येय की पूर्ति के लिए इन्द्र पहले उपयुक्त मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि तैयार करता है। यह निर्विवाद है कि इन्द्र अपने इस कुत्सित ध्येय की पूर्ति के लिए असाधारण वाकपटुता का परिचय देता है। सबसे पहले तो इन्द्र छल का आश्रय लेकर ब्राह्मण का रूप धारण करता है। कर्ण के समक्ष जाने पर वह स्वयं ही कर्ण की दानवीरता की जी भर कर प्रशंसा करता है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अत्यन्त निर्दयी अथवा क्रूर व्यक्ति भी दूसरे के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर पसीज जाता है और फिर यहाँ तो कर्ण स्वभाव से दानशील है। अतः एक दीन विप्र से अपनी प्रशंसा सुनकर क्या कर्ण का मन भी गद्‌गद् नहीं हुआ होगा ? कर्ण की दानशीलता का वर्णन करते हुए छली इन्द्र कहता है :

'जय हो, हमने भी है सुनी सुकीर्ति कहानी
नहीं आज त्रिलोक में कहीं आप-सा दानी।
लोग दिव्य शत-शत प्रणाम निष्ठा के बतलाते हैं,
शिव-दधीचि-प्रह्लाद-कोटि में आप गिने जाते हैं,
सबका है विश्वास, मृत्यु से आप न डर सकते हैं,
हंस कर, प्रण के लिए प्राण न्यौछावर कर सकते हैं।'

इसी प्रसंग में देवराज इन्द्र यह भी कह देते हैं कि —"हे दानवीर, फिर भी यदि याचक का पात्र ही छोटा हो तो दान देने वाला भी अधिक कैसे दे सकता है।" इस सम्बन्ध में एक अकाट्य तर्क प्रस्तुत करते हुए इन्द्र कहते हैं कि "सागर-सा उदार दानी भी उतना ही पानी दे सकता है जितना कि पात्र हो। यदि पात्र छोटा होगा तो सागर भी उससे अधिक पानी कैसे दे सकता है।

अतः दान लेना भी भाग्य पर निर्भर करता है।" एक ब्राह्मण की इन विचित्र बातों को सुनकर कर्ण उन्हें आश्वस्त करते हैं कि यदि व्यक्ति में पौरुष और दृढ़ता हो तो वह अपना भाग्य भी बदल सकता है। कर्ण पुनः इन्द्र को आश्वस्त करता है कि उन्हें संकोच छोड़कर अपना मन्तव्य स्पष्ट करना चाहिए। कर्ण कहता है कि—"हे विप्र याचक, पर्वत और ध्रुवतारा अपना स्थान बदल सकते हैं किन्तु मेरा वचन कभी नहीं डोल सकता।" अत्यन्त व्यवहारकुशल और वाकपटु इन्द्र इस स्थिति का लाभ उठाते हुए पुनः कर्ण की दानवीरता का गुणगान करते हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे कर्ण को ऐसी स्थिति में ला देते हैं कि यदि किन्हीं कारणवश वह माँगी हुई वस्तु न भी देना चाहे तो भी उसे देनी पड़े। कर्ण की प्रशंसा करते हुए इन्द्र पुनः कहते हैं :

'धन्य-धन्य राधेय ! दान के अति अमोघ व्रतधारी,
ऐसा है औदार्य, तभी तो कहता प्रति याचक है,
महाराज का वचन सदा, सर्वत्र क्रियावाचक है।'

अपना मन्तव्य स्पष्ट करने से पहले इन्द्र एक और चाल चलते हैं और कहते हैं कि—"मैंने तो आपके ये वचन सुनकर ही सब कुछ प्राप्त कर लिया, अब मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए।" कर्ण इस विचित्र याचक को समझ नहीं पा रहा है। इन्द्र यह भी कह देते हैं कि :

'कहीं आप दे सके नहीं, जो कुछ मैं धन मांगूँगा,
मैं तो भला किसी विधि, अपनी अभिलाषा त्यागूँगा,
किन्तु आपकी कीर्ति-चाँदनी फीकी हो जायेगी,
निष्कलंक विधु कहाँ दूसरा फिर वसुधा पायेगी।'

जिस याचक को अपने दाता की 'कीर्ति-चाँदनी' के फीका पड़ जाने की इतनी चिन्ता हो भला ऐसे भक्त याचक को कौन दाता अपना सर्वस्व देकर भी परम सन्तोष का अनुभव नहीं करेगा। ठीक यही स्थिति देवराज इन्द्र की और दानवीर कर्ण की है। कर्ण को अपनी वचनपूर्ति अथवा दानवीरता की धवल-कीर्ति के कलंकित हो जाने का इतना भय नहीं है जितना कि इस विप्रवेशधारी इन्द्र को। उसको यह चिन्ता है कि कहीं उसके कारण दाता कर्ण का गर्वोन्नत भाल अवनत न हो जाये।

भोला कर्ण इस विचित्र याचक के छल को नहीं समझ पाता। वह सीधे स्वभाव में पुनः कहता है कि—"महाराज, आप तो बड़े ही विचित्र व्यक्ति हैं। आप मुझसे कुछ भी मांगिए, मैं अवश्य दूँगा। आप कहें तो मैं अपना शीश कटवाकर आपके चरणों पर रख दूँ। आप चाहें तो मैं जीवनपर्यन्त आपके चरणों को धोता रहूं ? आप मांगिए तो सही क्या मांगते हैं ? संकोच छोड़िए और अपनी मनचाही वस्तु मांगिए।"

देवराज इन्द्र इसी अवसर की ताक में थे। उन्होंने अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहा :

> 'धन की लेकर भीख नहीं मैं घर भरने आया हूँ,
> और नहीं नृप को अपना सेवक करने आया हूँ।
> यह कुछ मुझको नहीं चाहिए, देव धर्म को बल दें,
> देना हो मुझे कृपा कर कवच और कुण्डल दें।'

कवच और कुण्डल की मांग सुनते ही कर्ण को विद्युत्-सी छू गई किन्तु अब वह वचनबद्ध था। उसे यह पहचानने में तनिक भी समय नहीं लगा कि यह विचित्र याचक ब्राह्मण नहीं अपितु स्वयं देवराज इन्द्र हैं। तथापि कर्ण ने अपने दिए वचन को पूरा करते हुए कवच और कुण्डल का दान दे दिया। कर्ण की इस असहाय स्थिति को देखकर देवराज स्वयं दुखी हो गए। इसके अतिरिक्त कर्ण के इस प्रोज्ज्वल चरित्र के समक्ष वह स्वयं को बहुत छोटा समझने लगे। उनका पापी मन आत्मग्लानि का अनुभव करने लगा। उनका मन चीत्कार कर उठा :

> 'वन्दनीय तू कर्ण, देखकर तेज अति तिग्म तेरा,
> काँप उठा था आते ही देवत्वपूर्ण मन मेरा।
> किन्तु अभी तो तुझे देख मन और डरा जाता है।
> हृदय सिमटता हुआ आप ही आप मरा जाता है।'

मनुष्य सारे जगत् को धोखा दे सकते हैं किन्तु अपने आप को नहीं देवराज इन्द्र ने भी पुत्रप्रेम (इन्द्र को अर्जुन का पिता कहा गया है) में अंधे होकर दान और तप के महान् व्रती कर्ण के साथ छल तो किया किन्तु उनका अन्तर्मन ग्लानि और पश्चाताप के भावों से भर गया। कर्ण के प्रति कहे गए निम्न शब्द देवराज इन्द्र की इसी आत्मग्लानि के परिचायक हैं :

> 'तू दानी मैं कुटिल प्रवंचक, तू पवित्र मैं पापी,
> तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
> तू पहुँचा है जहां कर्ण, देवत्व न जा सकता है।
> इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।'

इसके साथ ही इन्द्र के चरित्र का एक अपेक्षतया उज्ज्वल पक्ष उभर कर आता है। कर्ण के यहां से जाने से पहले वे यह चाहते हैं कि कर्ण भी उनसे कोई न कोई वरदान अवश्य मांग ले। वस्तुतः उनका उद्देश्य एक ओर तो अपने मन का भार हल्का करना और दूसरी ओर कर्ण को हुई इस भारी क्षति की पूर्ति करना था। देवराज इन्द्र अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि :

> 'तू मांगे कुछ नहीं, किन्तु मुझको अवश्य देना है,
> मन का कठिन बोझ थोड़ा-सा हलका कर लेना है।

ले अमोघ यह अस्त्र, काल को भी यह खा सकता है,
इसका कोई वार किसी पर विफल नहीं जा सकता है।'

इस प्रकार इन्द्र का चरित्र आरम्भ में तो एक छली एवं कपटी पिता का रहा है किन्तु अन्त में जाकर अपने पापपूर्ण कृति के प्रति आत्मग्लानि का अनुभव कर लेने और कर्ण को 'एकघ्नी' का वरदान दे देने से उनके चरित्र का एक अपेक्षतया उज्ज्वल अंश भी उभर कर आता है।

(ज) श्रीकृष्ण : मूल महाभारत में श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान ईश्वरीय सत्ता के रूप में चित्रित हैं, किन्तु 'रश्मिरथी' के कवि ने श्रीकृष्ण के ईश्वरीय रूप का चित्रण केवल उतना ही किया है जितना कि कथा के प्रयोजन के लिए आवश्यक है। 'रश्मिरथी' के कवि का लक्ष्य केवल कर्ण के उपेक्षित एवं तिरस्कृत चरित्र का पुनर्मूल्यांकन करना ही है, अतः यह स्वाभाविक ही है कि यदि श्रीकृष्ण का ईश्वरीय रूप अपने पूरे आयामों के साथ चित्रित किया जाता तो कवि के लक्ष्य की पूर्ति सम्भव नहीं हो सकती थी। कर्ण का व्यक्तित्व वांछित उभर नहीं पा सकता था।

'रश्मिरथी' में श्रीकृष्ण का प्रथम परिचय तीसरे सर्ग में उस समय होता है जबकि पाण्डव अपने अज्ञातवास की अवधि पूरी कर आये थे और श्रीकृष्ण उनका संदेश लेकर दुर्योधन के पास आते हैं। श्रीकृष्ण ने एक शान्तिदूत की भूमिका का निर्वाह करते हुए दुर्योधन से कहा :

'दो न्याय अगर तो आधा दो, इसमें भी यदि बाधा हो,
तो दे दो केवल पांच ग्राम, रक्खो अपनी धरती तमाम।
हम वहीं खुशी से खायेंगे, परिजन पर असि न उठायेंगे।

निस्सन्देह, श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध को टालने के लिए एक सद्भावनापूर्ण प्रस्ताव लेकर आये थे किन्तु राज्यलिप्सा और क्षुद्र स्वार्थों से घिरे हुए दुर्योधन ने उनके इस प्रस्ताव को ठुकराकर अपनी मदान्धता का ही परिचय दिया। दुर्योधन की विवेक बुद्धि पर विनाश के बादल मंडरा रहे थे। सत्ता और मद में अन्धा होकर मनुष्य में सत्-असत् का विवेक भी नहीं रह जाता और कभी-कभी वह अपनी सीमाओं को भी भूल जाता है। दुर्योधन भी अपनी सीमाओं को भूलकर भगवान श्रीकृष्ण को बांधने चला। श्रीकृष्ण ने तत्काल अपना ईश्वरीय रूप प्रकट किया :

'यह देख, गगन मुझ में लय है, यह देख पवन मुझ में लय है,
मुझ में विलीन झंकार सकल, मुझ में लय है संसार सकल।
अमरत्व फूलता है मुझमें, संहार झूलता है मुझमें।'

श्रीकृष्ण कहते हैं कि भूलोक, अतल, पाताल, गत और अनागत काल सभी कुछ उनमें लय है। अन्ततः वे अपना यह संकल्प सुनाते हैं :

'हित वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं अब रण होगा, जीवन-जय या कि मरण होगा।'

श्रीकृष्ण अभी अपने शान्ति अभियान में पूरी तरह निराश नहीं हुए थे; वे अभी भी महाभारत का युद्ध टालने की सम्भावना के लिए प्रयत्नशील थे। दुर्योधन के द्वार से निराश लौटने पर श्रीकृष्ण ने कर्ण को समझाने का यत्न किया। निस्सन्देह कर्ण को समझाते समय श्रीकृष्ण अपनी वाकपटुता का भी परिचय देते हैं। वे कर्ण के समक्ष युद्ध के विनाशकारी परिणामों का वर्णन करते हुए उससे यह आग्रह करते हैं कि :

'हाँ, एक बात यदि तू माने, तो शान्ति नहीं जल सकती है,
समराग्नि अभी टल सकती है।'

वे कर्ण को वह बताते हैं कि वह वस्तुतः पाण्डवों का ही अग्रज है और परिस्थितियों के कारण ही दुर्योधन के पक्ष में चला गया है। वे कर्ण के बल, बुद्धि और शील की प्रशंसा करते हैं और यह विश्वास दिलाते हैं कि यदि वह दुर्योधन का साथ छोड़कर पाण्डवों से मिल जायेगा तो :

'पद-त्रास भीम पहनायेगा, धर्माधिप चंवर डुलायेगा,
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव-नकुल अनुचर होंगे,
भोजन उत्तरा बनायेगी, पाँचाली पान खिलायेगी।'

यही नहीं, श्रीकृष्ण यह भी कहते हैं कि कर्ण को पुनः प्राप्त करके कुन्ती भी फूली नहीं समायेगी। वस्तुतः श्रीकृष्ण किसी भी मूल्य पर शान्ति के लिए महाभारत का युद्ध टालने के लिए प्रयत्नशील हैं और निस्सन्देह श्रीकृष्ण के चरित्र का यह पक्ष सर्वाधिक उज्ज्वल है। उन्होंने एक शान्तिदूत की भूमिका का सफल निर्वाह किया है। दुर्योधन का साथ छोड़ने के लिए वे कर्ण को सभी सम्भव प्रलोभन देते हुए कहते हैं :

'कुरुराज्य समर्पण करता हूँ, साम्राज्य समर्पण करता हूँ,
यश, मुकुट, मान, सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे, भू का हर भावी शोक सखे।'

श्रीकृष्ण बताते हैं कि यदि यह युद्ध टल गया तो सारे संसार में शांति का अभ्युदय होगा, सर्वत्र सुख और समृद्धि होगी। स्वयं श्रीकृष्ण के शब्दों में :

'संसार बड़े सुख में होगा, कोई न कहीं दुख में होगा।
सब गीत खुशी के गायेंगे, तेरा सौभाग्य मनायेंगे।'

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण के दर्शन महाभारत के युद्ध-क्षेत्र में होते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी के रूप में युद्धक्षेत्र में प्रवेश करते हैं। युद्ध-क्षेत्र में श्रीकृष्ण अनागत के एक द्रष्टा और वर्तमान के अनुभवी संचालन के रूप में

उपस्थित होते हैं। युद्ध में कर्ण के रथ का पहिया धरती में धंस गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब रथ का पहिया कीचड़ में से नहीं निकला तो कर्ण स्वयं रथ पर से उतर कर पहिया निकालने लगा। इस समय कर्ण पूरी तरह निहत्था था। तभी कृष्ण ने अर्जुन को समय का सदुपयोग करने का परामर्श देते हुए कहा :

जगा कर पार्थ को भगवान बोले—खड़ा है देखता क्या मौन भोले ?
शरासन तान, बस, अवसर यही है, घड़ फिर और मिलने को नहीं है।
बिशिख कोई गले के पार कर दे, अभी ही शत्रु का संहार कर दे।'

अर्जुन सरासनहीन कर्ण पर बाण चलाने में संकोच का अनुभव कर रहा था। अर्जुन को इस प्रकार प्रहार करना धर्मविरुद्ध प्रतीत हो रहा था। इस समय श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि उसे धर्म-अधर्म का कोई विवेक नहीं है। शत्रु का नाश करना ही सबसे बड़ा धर्म होता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हुए कहते हैं कि :

'कहूँ जो, पाल उसको, धर्म है यह, हनन कर शत्रु का सत्कर्म है यह।
क्रिया को छोड़ चिन्तन में फंसेगा, उलट कर काल तुझको ही ग्रसेगा।'

अर्जुन के धर्म-विरुद्ध आचरण को देखकर स्वयं कर्ण भी उससे तनिक रुकने के लिए कहता है। कर्ण धर्म और नीति के सिद्धान्तों की दुहाई देते हुए कहता है कि इस प्रकार निहत्थे शत्रु पर आक्रमण करना नरोचित धर्म के प्रतिकूल होगा। अर्जुन का मन फिर से चिन्तनशील हो उठा और वह खिन्न हो श्रीकृष्ण की ओर निहारने लगा। इस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दुर्योधन के कुकृत्यों का स्मरण कराया। छल से की गई अभिमन्यु की मृत्यु का, भरी सभा में द्रोपदी के चीरहरण आदि की याद दिलाते हुए श्रीकृष्ण ने पुनः अर्जुन को कहा कि :

'शिथिल कर पार्थ ! किंचित भी न मन तू, न धर्माधर्म में पड़ भीरु बन तू,
कड़ा कर वक्ष को, शर मार इसको, चढ़ा शायक, तुरत संहार इसको।'

अब अर्जुन श्रीकृष्ण के आदेश को नहीं टाल सका और उसने कर्ण पर बाणों से प्रहार किया। उसका मस्तक छिन्न होकर धरती पर लोटने लगा और अर्जुन की जयजयकार हो उठी। श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन यहीं समाप्त नहीं होता। उनके चरित्र का एक अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष यह था कि वे कर्ण के सद्गुणों के प्रशंसक भी थे। शत्रु के गुणों की भी प्रशंसा करना जीवट का काम होता है। श्रीकृष्ण ऐसी महान् विभूतियों में से थे जो शत्रु के गुणों के भी सच्चे प्रशंसक थे। कर्ण की मृत्यु होने पर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। इस पर श्रीकृष्ण उदास स्वरों में बोले—केवल विजय पर गर्वित हो जाना उचित नहीं होता :

'न भूलें केवल आप जीत को लें, नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है।
विभा का सार शील पुनीत है।'

कर्ण के सद्गुणों का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं :
'मगर जो हो, मनुज सुवरिष्ठ था वह, धनुर्धर ही नहीं, धर्मिष्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था, बड़ा ब्रह्मण्य था, मन से बली था।
हृदय से निष्कपट पावन क्रिया का, दलित तारक, समुद्धारक त्रिया का :
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था, युधिष्ठिर ! कर्ण का अद्भुत हृदय था।'

कर्ण के पावन मैत्रीभाव की प्रशंसा करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि कर्ण की मृत्यु के साथ ही मानवता बलहीन हो गई है। कर्ण के बिना धरती भी दीन हो गई लगती है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण का चरित्र एक शान्तिदूत और युगद्रष्टा विचारक का चरित्र है।

(ङ) कुन्ती : कुन्ती महाभारत का एक दुर्भाग्यपूर्ण चरित्र है जो जीवन-भर किसी न किसी वेदना का पाषाण-भार ढोती रही है। कुन्ती के पति महाराज पाण्डु थे। ऐसी कथा आती है कि महाराज पाण्डु को किसी ऋषि का यह शाप मिला हुआ था कि उनके संयोग से कुन्ती किसी सन्तान को जन्म नहीं दे सकती थी। अतः कुन्ती ने अपने पति की अनुमति लेकर तीन सन्तानों को जन्म दिया— युधिष्ठर, अर्जुन तथा भीम। राजा पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री ने नकुल और सहदेव नामक दो पुत्रों को जन्म दिया और इस प्रकार महाराज पाण्डु के ये पाँचों पुत्र पाण्डव कहलाए। कुन्ती के जीवन में एक कलंक और था और वह था अपनी कौमार्यावस्था में कर्ण को जन्म देना। कहते हैं कि कुन्ती ने अपनी कौमार्यावस्था में ही सूर्य के संयोग से बालक कर्ण को जन्म दिया था किन्तु लोकलाज के भय से उसे वह अपने पास नहीं रख सकी। अन्ततः उसे अपना यह अवांछित शिशु एक मंजूषा में बन्द करके नदी की धार में प्रवाहित करना पड़ा। संयोग से यह मंजूषा अधिरथ नामक सूत के हाथ लगी जो इसे घर ले आया और इस परित्यक्त बालक का पालन-पोषण उसी अधिरथ के घर हुआ। अधिरथ की पत्नी का नाम राधा था और इसीलिए कर्ण को राधेय भी कहा जाता है।

'रश्मिरथी' में कुन्ती का प्रथम परिचय पहले सर्ग में उस समय होता है जबकि रंगभूमि में कर्ण और अर्जुन के मध्य धुर्नविद्या सम्बन्धी प्रतियोगिया चल रही थी। रंगभूमि में उपस्थित सारा जनसमूह अर्जुन तथा कर्ण की जयजय-कार करता हुआ जा रहा था। दर्शकों के दो दल बन गये थे, एक का नेता अर्जुन तथा दूसरे का नेता कर्ण था। कर्ण भरी सभा में अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिये ललकार चुका था जो कि गुरु द्रोणाचार्य के सामयिक हस्तक्षेप के कारण होता-होता रुक गया। तथापि इतना निश्चित था कि अर्जुन और कर्ण के मध्य

तीव्र द्वेष एवं प्रतिद्वन्द्विता के अंकुर उत्पन्न हो चुके थे। उस सभा में अन्य रानियों-महारानियों के साथ कुन्ती भी विद्यमान थी। कुन्ती का मातृ-हृदय इन दोनों भाईयों के मध्य हुई इस कटु-वार्ता को देखकर किसी अनिष्ट की सम्भावना से शंकित हो गया था। यद्यपि वह चाहती तो यह कटुता समाप्त हो सकती थी किन्तु ऐसा करने के लिये उसे कर्ण के जन्म का दुखद रहस्य प्रकट करके भरी सभा में अपमान और तिरस्कार का भागी होना पड़ता। कुन्ती में इतना जीवट नहीं था फिर भी वह कर्ण और अर्जुन के मध्य की इस कटुता को सहन नहीं कर सकती थी। उसकी स्थिति एक ऐसे असहाय व्यक्ति की-सी थी जोकि किसी महान् लक्ष्य की पूर्ति तो करना चाहता है किन्तु उसका मूल्य चुकाने की क्षमता नहीं रखता। अतः कुन्ती को कर्ण के जन्म की दुखद कथा के रहस्य का पाषाण-भार ढोना पड़ा। कवि ने कुन्ती की इस अपार मानसिक वेदना का अत्यन्त मार्मिक वर्णन इस प्रकार किया है :

> 'और हाय ! रनिवास चला वापस जब राजभवन में,
> सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
> उजड़ गये हों स्वप्न कि जैसे हार गयी हो दांव,
> नहीं उठाये ये भी उठ पाते थे कुन्ती के पांव।'

इसके पश्चात् कुन्ती के दर्शन रश्मिरथी के पाँचवें सर्ग में होते हैं जहां वह पुनः महाभारत के विनाशकारी युद्ध को रोकने का अन्तिम प्रयत्न करती है। तथापि अब युद्ध के टलने की कोई सम्भावना नहीं रह गई। उसे अपने पाँचों पुत्रों के प्रति गहरा स्नेह है, अतः वह एक बार कर्ण के पास जाकर यह कहना चाहती है कि वह भी वस्तुतः उसी का पुत्र है। उसका उद्देश्य केवल यही है कि उसके पाँचों पुत्रों पर कोई आँच न आये और उसे यह भी ज्ञात है कि कर्ण अपूर्व पराक्रम और वीरता का अधिकारी है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि वह कर्ण से अपने इन पाँचों पुत्रों के लिए जीवनदान माँगना चाहती है। तथापि उसकी आत्मा उसका साथ नहीं दे रही है, क्योंकि उसे यह ज्ञात है कि इससे पूर्व उसने कभी भी कर्ण को अपना पुत्र कहकर नहीं पुकारा। फिर भी उसने साहस बटोरा और युद्ध आरम्भ होने से ठीक एक दिन पहले कर्ण के द्वार पर चली गई। जब कुन्ती वहाँ पहुंची तो उसका यह परित्यक्त पुत्र कर्ण सांध्यपूजन में मग्न था। अपने पुत्र के 'दीपित ललाट' और 'स्वर्णिम शिखर' जैसा शरीर देखकर कुन्ती का मातृत्व उमड़ आया। वह एकटक अपने पुत्र की कांतिवान काया को निहारती रही :

> **'सुत की शोभा को देख मोद में भूली, कुन्ती क्षण-भर को व्यथा-वेदना भूली।**
> **भर कर ममता-पय से निष्पलक नयन को, वह खड़ी सींचती रही, पुत्र के तन को।'**

आहट सुनकर कर्ण उसकी ओर मुड़ा और कुन्ती ने एक सांस में अपनी वर्षों पुरानी व्यथा का भार हलका कर लिया। जिस रहस्य को वह कुक्षि में

पल रही सन्तान की तरह वर्षों से ढोए फिर रही थी आज उसने उस रहस्य-भार से सहज ही मुक्ति प्राप्त कर ली। अब उसके समक्ष लोकलाज का कोई भय नहीं रह गया था और आज पहली बार कुन्ती अपनी उस कालिमा को धो देने के लिए हर संभव मूल्य चुकाने को तैयार होकर आई थी। उसने कर्ण को कहा :

'राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है, जो धर्मराज का वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है, अर्जुन समान कुरुकुल का ही अंशी है।
जिस तरह तीन पुत्रों को मैंने पाया, तू उसी तरह था प्रथम कुक्षि में आया।
पा तुझे धन्य थी हुई गोद मेरी, मैं ही अभागिनी पृथा जननी हूँ तेरी।'

इसके पश्चात् कुन्ती अपनी सारी दुखद कथा वर्णित करती है। वह स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार करती है कि उस समय उसके कौमार्यावस्था में उत्पन्न हुए इस पुत्र को जलधारा में प्रवाहित कर देने के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं था। वह विवश थी। फिर भी अब वह उस राधा के दोनों पैर धोने और अपनी अग्रजा मानने को तैयार है जिसने कर्ण का लालन-पालन किया था। वस्तुतः इस समय कुन्ती के मन में कोई भी छल अथवा कपट-भावना नहीं है। आज वह अपने कर्ण के पास पूरी सद्भावना के साथ आई है। फिर भी, उसे अपनी सीमाओं का पूरा ज्ञान है और इसीलिए वह कहती है कि, "हे कर्ण, आज मैं तुम्हें कोई आदेश देने नहीं आई बल्कि एक प्रार्थना लेकर आई हूं।" कुन्ती अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहती है कि :

'कल कुरुक्षेत्र में जो संग्राम छिड़ेगा,
क्षत्रिय समाज पर कर जो प्रलय घिरेगा
उसमें न पांडवों के विरुद्ध हो लड़ तू,
मत उन्हें मार या उनके हाथों मर तू।
मेरे ही सुत मेरे सुत को ही मारें,
हो क्रुद्ध परस्पर ही प्रतिशोध उतारें।
यह विकट दृश्य मुझसे न सहा जायेगा,
अब और न मुझसे मूक रहा जायेगा।'

कुन्ती के इन वचनों ने कर्ण की कटु-स्मृतियों को पुनः जागृत कर दिया। अर्जुन और गुरु द्रोणाचार्य के हाथों हुआ अपमान और तिरस्कार उसे याद हो आया। उस दिन भरी सभा में कर्ण को विष का घूंट पीना पड़ा था, वह निस्संदेह कुन्ती के ही कारण था। कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कुन्ती को कह देता है कि वह अपना मातृ स्वत्व खो चुकी है। उसकी वास्तविक माता तो राधा है जिसने उसे धूल में से उठाकर गले लगाया। यही नहीं, कर्ण आवेश में आकर कुन्ती को तीखे व्यंग्य-वाणों का स्वाद भी चखाता है। एक स्थल पर तो वह यहां तक कह देता है :

'तुम बड़े वंश की बेटी ठकुरानी हो, अर्जुन की माता कुरुकुल की रानी हो।
मैं नाम गोत्र से हीन, दीन खोटा हूँ, सारथिपुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ
ठकुरानी, क्या लेकर तुम मुझे करोगी ? मल को पवित्र गोदी में कहां धरोगी ?'

कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह भी बता देता है कि वह दुर्योधन का साथ कभी भी नहीं छोड़ेगा। कर्ण के इस उत्तर को सुनकर भी कुन्ती दुखी नहीं हुई। उसे यह ज्ञात था कि स्वयं उसका दोष इतना बड़ा था कि कर्ण को वह कुछ भी नहीं कह सकती थी। वह जानती थी कि :

'जो किया दोष जीवन भर दारुण रह कर,
मेटूँगी क्षण में उसे बात क्या कह कर ?'

उसके मन की विचित्र स्थिति थी। उसके पास कुछ भी कहने को नहीं था, सभी अस्त्र चूक गये थे। कवि दिनकर ने कुन्ती की इस मानसिक उद्विग्नता की स्थिति का वर्णन अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है :

'कुन्ती के मुख में वृथा जीभ हिलती थी,
कहने को कोई बात नहीं मिलती थी।'

कुन्ती निराश नहीं हुई। वह आज अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए कोई भी मूल्य चुकाने को तैयार होकर ही आई थी। वह बोली, "बेटा कर्ण, मैं सुना करती थी तेरे द्वार से कोई भी याचक खाली नहीं लौटता किन्तु मैं अभागिनी तो आज खाली हाथ ही जा रही हूं।" कुन्ती का सारा ममत्व छलक आया और उसका मातृ-हृदय बुदबुदा उठा :

'फिर भी तू जीता रहे, न न अपयश जाने, संसार किसी दिन तुझे पुत्र पहचाने।
अब आ क्षण भर मैं तुझे अंक में भर लूँ, आखिरी बार तेरा आलिंगन कर लूँ।'

अन्ततः कुन्ती की विजय हुई किन्तु कर्ण ने भी अपने संकल्प को पराजित नहीं होने दिया। कर्ण ने यह स्वीकार कर लिया कि वह पाँच पाण्डवों की माता अवश्य बनी रहेगी। कर्ण ने कहा कि वह अर्जुन को तो छोड़ेगा नहीं किन्तु यदि युद्ध में अर्जुन की मृत्यु हो गई तो वह कुन्ती का पुत्र बनकर अर्जुन की कमी पूरी कर देगा और यदि स्वयं उसी को मृत्यु का मुख देखना पड़ा, तब तो कुन्ती पूर्ववत् पाँचों पाण्डवों की माता बनी ही रहेगी।

इस प्रकार कुन्ती ने रश्मिरथी के पाँचवें सर्ग में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। उसके व्यथित मातृ-हृदय को इससे अधिक और मिल भी क्या सकता था ? समग्रतः वह एक ऐसी अभागिनी नारी है जो परिस्थितियों के क्रूर चक्र में पड़ जाने के कारण अपनी अन्तर्व्यथा को कह भी नहीं सकती।

सम्भावित प्रश्न

निम्नलिखित पात्रों का चरित्र-चित्रण कीजिए :

(क) कर्ण (ख) अर्जुन (ग) दुर्योधन (घ) भीष्म (ङ) द्रोणाचार्य (च) परशुराम (छ) इन्द्र (ज) श्रीकृष्ण (झ) कुन्ती।

३. संवाद-योजना

पात्रों के परस्पर वार्तालाप को ही संवाद कहते हैं। खण्डकाव्य में ही नहीं अपितु किसी भी साहित्यिक कृति में संवादों का अपना अ ग-अलग महत्व होता है। संवादों के माध्यम से कवि केवल पात्रों के चरित्रों को ही परि-लक्षित नहीं करता है अपितु मूलकथा को भी गति देता है। इस प्रकर संवादों का सम्बन्ध पात्रों और मूल कथावस्तु, दोनों से होता है। संवादों की उपादेयता केवल यहीं तक सीमित नहीं है। कवि प्राय: इन संवादों के माध्यम से महत्वपूर्ण युगीन समस्याओं को भी स्पर्श करता है। निस्सन्देह कवि प्रत्यक्षत: या स्वयं अपने मुख से इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं करता, क्योंकि ऐसा करने पर तो वह कवि न होकर उपदेशक अथवा नीति-प्रचारक का स्थान ले लेगा। साहित्य में जो "कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे" की बात कही जाती है, उसका आशय यही है कि कवि को अपने गौरवपूर्ण स्थान की रक्षा करनी चाहिए और एक उपदेशक की भाँति अपने नैतिक सिद्धान्तों का पक्षपोषण नहीं करना चाहिए। वस्तुत: होता यह है कि कवि अपना मन्तव्य अथवा युगीन समस्याओं के प्रति अपना दृष्टिकोण पात्रों के माध्यम से व्यक्त करता है और ये पात्र परस्पर संवादों द्वारा प्रत्यक्षत: अपनी और परोक्षत: कृतिकार की अवधारणाओं को स्वर प्रदान करते हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए कवि के पास अन्य वैकल्पिक विधियाँ भी होती हैं जैसे प्रकाशन-विधि, वर्णनात्मक विधि, मनोविश्लेषण विधि अथवा अन्य पात्रों के मुख से चरित्र-वर्णन की विधि आदि। तथापि संवादों की उपादेयता इसलिए सर्वोपरि बनी रहती है क्योंकि इनके माध्यम से कवि इन पात्रों के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ युगीन समस्याओं पर गम्भीर चिन्तन का अवकाश भी प्राप्त कर लेता है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे अप्रत्यक्ष विधि कहा जाता है क्योंकि इसमें कवि पाठकों के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नहीं होता। पात्र और पाठक के मध्य कोई

भी व्यवधान नहीं होता। पात्रों के परस्पर संवादों के माध्यम से ही पाठक उनका परिचय प्राप्त करता है। इस प्रकार खण्डकाव्य में संवादों के मुख्यतः तीन प्रयोजन हो सकते हैं—(१) पात्रों के चरित्र का उद्घाटन, (२) कथा की गतिशीलता, तथा (३) युगीन समस्याओं का विवेचन। प्रस्तुत खण्डकाव्य में मुख्यतः चार संवादों को महत्त्वपूर्ण समझा गया है— (क) कर्ण-परशुराम संवाद, (ख) कर्ण-कृष्ण संवाद, (ग) कर्ण-इन्द्र संवाद, और (घ) कर्ण-कुन्ती संवाद।

(क) कर्ण-परशुराम संवाद—कौरव-पाण्डवों के शस्त्र गुरु द्रोणाचार्य से तिरस्कृत और अपमानित होने के पश्चात् कर्ण गुरु परशुराम से शस्त्र-विद्यार्जन करने का निश्चय करता है। उन दिनों परशुराम महेन्द्र गिरि पर्वत पर वास कर रहे थे। यहाँ पर कर्ण और उसके गुरु परशुराम के मध्य दो संवाद हुए हैं। एक में तो कर्ण अपने गुरु के उपदेशों को स्मरण करके स्वतन्त्र चिन्तन में निरत होता है और दूसरे में कर्ण और परशुराम के मध्य प्रत्यक्ष वार्तालाप होता है। कर्ण मन-ही-मन गुरु के वचनों का ध्यान कर रहा है। परशुराम सामाजिक व्यवस्था और जातिगत वर्गीकरण के खोखलेपन पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि :

'क्या विचित्र रचना समाज की ? गिरा ज्ञान ब्राह्मण घर में,
मोती बरसा वैश्य वैश्य में, पड़ा खड्ग क्षत्रिय कर में।'

परशुराम कहते हैं कि आधुनिक युग में केवल पौरुष और सामर्थ्य की ही पूजा होती है। ब्राह्मण की ज्ञान की बातों को कोई भी कान नहीं भरता। सर्वत्र शक्ति और पराक्रम का बोलबाला है। शासकगण भी सत्ता के मद में अन्धे होकर युद्धलिप्सा और स्वार्थपरता के वशीभूत हो गए हैं। यहाँ कवि युद्ध की समस्या और उसके कारणों का विवेचन करते हुए बताता है कि आज के राजा लोग केवल अपने सुख के लिए, सत्ता के विस्तार के लिए, मिथ्याभिमान की पूर्ति के लिए, अधिकाधिक दीन-हीनों का शोषण करते रहने के लिए युद्धरत हो रहे हैं। उनके समक्ष जन-कल्याण का दुख-दैन्य भगाने का कोई लक्ष्य नहीं है। कवि परशुराम के मुख से कहलवाता है :

'रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें,
बढ़े राज्य की सीमा जिससे अधिक जनों को लूट सकें।
रण केवल इसलिए कि सत्ता बढ़े, नहीं पत्ता डोले,
भूपों के विपरीत न कोई कहीं कभी कुछ भी बोले।
ज्यों-ज्यों मिलती विजय, अहं नरपति को बढ़ता जाता है।
और जोर से वह समाज के सिर पर चढ़ता जाता है।'

इसी परोक्ष संवाद में कवि परशुराम के मुख से यह भी कहलवाता है कि जब तक इस धरती पर कलाकारों, कवियों, ज्ञानियों और पण्डितों को समुचित सम्मान नहीं प्राप्त होगा तब तक संसार में व्याप्त अशान्ति और शोषण की अग्नि शमित नहीं होगी। रणलिप्सा और सत्ता की मदान्धता से अभिशप्त धरती के उद्धार के लिए कला और संस्कृति के प्रहरियों को सर्वोच्च स्थान दिया जाना आवश्यक है। परशुराम इस दुर्नीति और अव्यवस्था को दूर करने का एकमात्र उपचार 'खड्ग-शक्ति' को मानते हैं और कहते हैं कि :

'थकी जीभ समझा कर, गहरी लगी ठेस अभिलाषा को,
भूप समझता नहीं और कुछ छोड़ खड्ग की भाषा को।'

इसलिए परशुराम ज्ञानियों और विद्वानों को खड्ग धारण करने की सलाह देते हैं। उनके मतानुसार यह मदान्ध संसार केवल शक्ति की भाषा पहचानता है। ज्ञान के उपदेश, धर्म और नीति के सिद्धान्त 'खड्ग' की चकाचौंध में अर्थहीन हो गए हैं। इसलिए ज्ञान के साथ शक्ति का, कोमलता के साथ कठोरता का सम्मिश्रण वांछनीय है। परशुराम कहते हैं :

'इसीलिए तो मैं कहता हूं, अरे ज्ञानियो! खड्ग धरो,
हर न सका जिसको कोई भी, भू का वह तुम त्रास हरो।'

इसी क्रम में कर्ण और परशुराम के मध्य एक प्रत्यक्ष संवाद भी होता है। गुरु परशुराम शिष्य कर्ण की जांघ पर सिर रखे हुए सो रहे हैं। कर्ण में गुरु-भक्ति के पवित्र भाव हिलोरें मार रहे हैं। तभी एक विषकीट कर्ण की जांघ में दंश मारता है। कर्ण इस भय से, कि कहीं जांघ हिलाने से गुरु की नींद न उचट जाए, इस असह्य पीड़ा को सहता रहा। धीरे-धीरे विषकीट घाव करता गया और फिर उसमें से रिसता हुआ गर्म रक्त गुरुजी की पीठ को छू गया। गुरुजी जाग उठे और सारा दृश्य देखकर वस्तुस्थिति समझ गए। उन्होंने तत्काल यह समझ लिया कि, कर्ण ब्राह्मण कुमार नहीं हो सकता क्योंकि ब्राह्मण कभी भी 'सहन-शीलता को अपना कर कभी न जीता है।' कर्ण ने सारी बात सच-सच कह दी और परशुराम को जब यह पता लगा कि कर्ण ब्राह्मण कुमार नहीं अपितु सूत-पुत्र है तो उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। परशुराम कह उठे :

'तू अवश्य क्षत्रिय है, पापी! बता, न तो, फल पायेगा,
परशुराम के कठिन शाप से अभी भस्म हो जायेगा।'

इस संवाद में कवि ने परशुराम के अन्तर्द्वन्द्व को शब्दों में बांधने का सफल प्रयास किया है। स्वभाव से उग्र, क्रोधी, त्याग और तपस्या की दिव्य मूर्ति तथा पराक्रम में महान् शौर्य और पौरुष के स्वामी परशुराम का चरित्र इसी संवाद में मुखरित हुआ है। कर्ण के अन्तर्मन में इस घटना को लेकर भीषण अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हुई है। उग्र क्रोध के वशीभूत होकर भी

परशुराम का कठोर मन कर्ण के सदाचरण की पवित्रता एवं अभूतपूर्व गुरुनिष्ठा को देखकर द्रवित हो गया। उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया कि :

'तूने (कर्ण ने) ने जीत लिया था मुझको निज पवित्रता के बल से।

× × ×

किसी और पर नहीं किया, वैसा सनेह मैं करता था,
सोने पर भी धनुर्वेद का ज्ञान कान में भरता था।'

क्रोध की वन्हि पवित्रता की शीतलता से शमित हो गई और छली कर्ण को भस्म करने का शाप देने वाले उग्र, क्रोधी परशुराम कह उठे :

'मान लिया था पुत्र, इसी से प्राणदान तो देता हूँ,
पर अपनी विद्या का अन्तिम चरम तेज हर लेता हूँ,
सिखलाया ब्रह्मास्त्र तुझे जो, काम नहीं वह आयेगा,
है यह मेरा शाप, समय पर उसे भूल तू जायेगा।'

निस्सन्देह, परशुराम ने यह शाप किसी प्रतिशोध की भावना से प्रेरित होकर नहीं अपितु कर्तव्य की किसी अज्ञात विवशता के कारण दिया था। इस शाप को देते समय भी उनकी मानसिक अस्थिरता, कर्ण के प्रति कोमल मनोभाव सुस्पष्ट हो जाते हैं। निम्न पंक्तियों में परशुराम का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व एवं विवशता साकार हो उठी है :

'हाय छीनना पड़ा मुझी को, दिया हुआ अपना ही धन,
सोच-सोच यह बहुत विकल हो रहा, नहीं जाने क्यों, मन ?
व्रत का पर, निर्वाह कभी ऐसे भी करना होता है,
इस कर से जो दिया उसे उस कर से हरना होता है।'

निस्सन्देह परशुराम के मन की पीड़ा उनके क्रोधी व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है किन्तु सदैव क्रोध एवं आवेश से ग्रस्त व्यक्ति भी कभी-कभी 'दो क्षण' के ही लिए सही. द्रवीभूत हो जाता है। परशुराम की निम्न पंक्तियाँ उनकी विश्व-प्रसिद्ध कठोरता एवं क्रोधी स्वभाव पर अट्टहास-सा करती लगती है :

'जाओ जाओ कर्ण ! मुझे बिलकुल असंग हो जाने दो
बैठ किसी एकान्त कुंज में मन को स्वस्थ बनाने दो।
भय है, तुम्हें निराश देखकर छाती कहीं न फट जाये,
फिरा न लूँ अभिशाप, पिघलकर वाणी नहीं उलट जाये।'

(ख) कर्ण-कृष्ण संवाद—अज्ञातवास की अवधि बीत जाने पर पाण्डव लोग लौट आए। कौरव-पाण्डवों के मध्य मनो-भाव जागृत करने और इस प्रकार महाभारत के महासमर की संभावना को नष्ट करने के उद्देश्य से भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास आए। उन्होंने दुर्योधन से पाण्डवों के लिए आधे राज्य की मांग की और यह भी कहा कि यदि वह आधा राज्य देने में

कोई कठिनाई अनुभव करता हो तो पाण्डव लोग पांच गांवों में ही निर्वाह कर लेंगे। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के इस स्तुत्य प्रयास का आदर नहीं किया और उसके बदले 'हरि को बांधने चला, जो था असाध्य साधने चला।' श्रीकृष्ण ने स्थिति की गम्भीरता को समझ लिया और फिर अपने 'स्वरूप का विस्तार' करके सारे जनसमूह को हतप्रभ कर दिया। उन्होंने दुर्योधन को धिक्कारते हुए कहा :

'हित वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना
तो ले, मैं भी अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा।
जीवन-जय या कि मरण होगा।'

इस प्रकार दुर्योधन के द्वार से निराश लौटते हुए श्रीकृष्ण की मार्ग में कर्ण से भेंट हो जाती है। श्रीकृष्ण उसे रथ में बिठा लेते हैं और फिर कर्ण-कृष्ण का यह प्रसिद्ध संवाद आरम्भ होता है। इस संवाद में श्रीकृष्ण युद्ध की विकरालता एवं विनाशकारी प्रभावों का वर्णन करते हुए कर्ण को बताते हैं कि युद्ध होने पर :

'सोचो क्या दृश्य विकट होगा, रण में जब काल प्रकट होगा।
बाहर शोणित की तप्त धार, भीतर विधवाओं की पुकार।
निरशन विषण्ण बिललायेंगे, बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।'

श्रीकृष्ण कर्ण को इस कठिन घड़ी में युद्ध को टालने के लिए कहते हैं : वे उसे बताते हैं कि रणलिप्सु दुर्योधन केवल कर्ण के बल पर ही रण का आह्वान कर रहा है। वे उसे बताते हैं कि वस्तुतः वह भी पाँच पाण्डवों की भांति ही कुन्ती-पुत्र है और इसलिए उसे इस युद्ध में पाण्डवों का साथ देना चाहिए। श्रीकृष्ण कुरु राज्य का प्रलोभन देते हुए यहां तक कह देते हैं कि :

'कुरुराज समर्पण करता हूँ, साम्राज्य समर्पण करता हूँ।
यश, मुकुट, मान, सिंहासन ले, बस एक भीख मुझको दे दे।
कौरव को तज रण रोक सखे
भू का हर भावी शोक सखे।'

यही नहीं, श्रीकृष्ण कर्ण के सम्मुख उसके पाण्डवों के साथ मिल जाने की स्थिति का एक ऐसा सलोना दृश्य उपस्थित करता है कि कर्ण भी द्रवीभूत हो जाता है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि :

'मस्तक पर मुकुट धरेंगे हम, तेरा अभिषेक करेंगे हम।
आरती समोद उतारेंगे
सब मिलकर पाँव पखारेंगे।
पद-त्राण भीम पहनायेगा, धर्माधिप चंवर डुलायेगा।
पहरे पर पार्थ प्रवर होंगे, सहदेव नकुल अनुचर होंगे।
भोजन उत्तरा बनायेगी, पांचाली पान खिलायेगी।'

यह सब सुनकर कर्ण अधीर हो उठा किन्तु उसी क्षण उसे अपने अभिशप्त जन्म की तिक्त स्मृतियां आ घेरती हैं। वह तत्काल ही श्रीकृष्ण से कहता है कि वह अपनी मां कुन्ती के बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहता। कर्ण स्पष्ट शब्दों में कहता है :

'वह नहीं नारि कुलपाली थी
सर्पिणी परम विकराली थी।
गोदी में आग लगा करके, मेरा कुल वंश छिपा करके
दुश्मन का उसने काम किया
माताओं को बदनाम किया।'

कर्ण कहता है कि उसके लिए जन्म देने वाली कुन्ती नहीं बल्कि उसका पालन-पोषण करने वाली राधा ही सच्ची माता है। इसी प्रसंग में कर्ण, दुर्योधन के अप्रत्याशित मैत्री-व्यवहार की चर्चा करता है। कर्ण कहता है कि जब उसे सर्वत्र अपमान और तिरस्कार का प्रसाद मिल रहा था तब दुर्योधन ही ऐसा अकेला व्यक्ति था जिसने उसे भरी सभा में अभूतपूर्व गौरव और सम्मान प्रदान किया। कर्ण कहता है कि दुर्योधन की इस कृपापूर्ण-मैत्री को वह कभी न भुला सकेगा। स्वयं कर्ण के शब्दों में :

'है ऋणी कर्ण का रोम रोम, जानते सत्य यह सूर्य सोम।
तन, मन, धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोड़ूँगा,
केशव ! मैं उसे न छोड़ूँगा।

इस संवाद में कर्ण का व्यक्तित्व अत्यन्त मुखरित हो उठा है। इस संसार में कर्ण ने मित्रता के पुनीत सम्बन्ध, दुर्योधन के प्रति निस्वार्थपूर्ण निष्ठा और चारित्रिक दृढ़ता का परिचय दिया है। मनुष्य-जीवन में मित्रता का सम्बन्ध सर्वाधिक पवित्र माना गया है। कर्ण अपने मित्र दुर्योधन के लिए अपने प्राणों तक की बलि देने को तत्पर है। यह स्पष्ट शब्दों में कहता है :

मित्रता बड़ा अनमोल रतन, कब इसे तोल सकता है धन ?
धरती की तो है क्या बिसात, आ जाय अगर वैकुण्ठ हाथ,
उसको भी न्यौछावर कर दूँ
कुरुपति के चरणों पर धर दूँ।
सिर लिए स्कन्ध पर चलता हूँ, उस दिन के लिए मचलता हूँ।
यदि चले वज्र दुर्योधन पर, ले लूँ बढ़कर अपने ऊपर,
कटवा दूँ उसके लिए गला
चाहिए मुझे क्या और भला।'

कर्ण के व्यक्तित्व की पराकाष्ठा उस समय देखी जा सकती है जबकि वह आग्रहपूर्ण शब्दों में श्रीकृष्ण को कहता है कि उसके समक्ष केवल धर्मपक्ष का महत्व है, केवल सत्पथ पर आरूढ़ होने की कामना है। कर्ण स्पष्ट शब्दों में कहता है कि जीवन के क्षुद्र वैभव-विलास, समृद्धि और साम्राज्य उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखते :

'जीवन का मूल समझता हूँ,
धन को मैं धूल समझता हूँ।
धनराशि जोगना लक्ष्य नहीं, साम्राज्य भोगना लक्ष्य नहीं।
× × ×
मुझसे मनुष्य जो होते हैं, कंचन का भार न ढोते हैं,
पाते हैं धन बिखराने को, लाते हैं रतन लुटाने को।
जग से न कभी कुछ लेते हैं,
दान ही हृदय का देते हैं।'

उक्त अन्तिम दो पंक्तियों में महाभारत के इस यशस्वी पात्र का व्यक्तित्व सिमट आया है और यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि उसने जीवन भर दिया ही है' लिया कुछ नहीं। अन्ततः श्रीकृष्ण द्वारा दिये गये सभी प्रलोभन कर्ण के दृढ़ एवं पुनीत मैत्री भाव के दिव्य प्रकाश में कान्तिहीन हो गये। अन्ततः कर्ण श्रीकृष्ण का चरणस्पर्श करके अपने दृढ़ निश्चय की पुष्टि करते हुए चला जाता है। कर्ण के इस उदात्त चरित्र के प्रति भगवान श्रीकृष्ण भी श्रद्धा से विनत कह उठते हैं :

"वीर ! शत बार धन्य, तुझ-सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण
नरता का है भूषण महान।"

इस संवाद की यही विशेषता है कि इससे मूलकथा को तो गति मिलती ही है किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें कर्ण का उदात्त व्यक्तित्व अपने चरमोत्कर्ष की स्थिति को स्पर्श कर सका है।

(ग) कर्ण-इन्द्र संवाद—इस संवाद में इन्द्र की दानशीलता अपनी चरम स्थिति में पहुंची है। कर्ण और इन्द्र के इस संवाद में कवि ने दोनों ही पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है। तथापि कर्ण का चरित्र अधिक उज्ज्वल बन पड़ा है। इस संवाद में कर्ण के व्यक्तित्व की दो महत्वपूर्ण रेखाएँ उभर कर सामने आई हैं—(१) उसकी दानशीलता तथा (२) उसकी चारित्रिक दृढ़ता। प्रसंग इस प्रकार है कि कर्ण के असाधारण पौरुष और पराक्रम को देखकर अर्जुन के पक्ष वाले लोग किसी भी प्रकार कर्ण को असहाय कर देना चाहते थे। कहते हैं कि कर्ण को जन्म से कवच-कुण्डलों का वरदान प्राप्त था जिनके रहते हुए कोई भी शस्त्र कर्ण के शरीर को कोई क्षति नहीं पहुंचा सकता था। अर्जुन को

विजयी बनाने के लिए देवराज इन्द्र ब्राह्मण याचक का रूप धारण करके कर्ण के समक्ष आ गए और छलपूर्वक कवच-कुण्डलों का दान ले लिया। जब ब्राह्मण याचक के रूप में इन्द्र कर्ण के यहां आते हैं तो कर्ण यही कहते हैं :

'माँगो, माँगो दान,अन्न या वसन, धाम या धन दूँ ?
अपना छोटा राज्य या कि यह क्षणिक क्षुद्र जीवन दूँ।'

कर्ण अपना दृढ़ संकल्प सुनाते हुए कहता है :

'मेघ भले लौटे उदास हो, किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर नहीं कर्ण के घर से।'

दीन ब्राह्मण अत्यन्त वाक्पटु है और वह अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए पहले से ही उपयुक्त आधारभूमि तैयार कर लेता है। उसे यह ज्ञात है कि 'कवच-कुण्डल' कर्ण की सर्वाधिक मूल्यवान निधि है और कर्ण उसे सहज में ही दान नहीं कर देगा. अत: वह पहले कर्ण को इस प्रयोजन के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार करता है। पहले तो वह कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए कहता है कि उसने भी यह सुना है कि :

'नहीं फिराते एक बार जो कुछ मुख से कहते हैं
प्रण पालन के लिए आप बहु भाँति कष्ट सहते हैं।
आश्वासन से ही अभीत हो सुख विपन्न पाता है
कर्ण-वचन सर्वत्र कार्यवाचक माना जाता है।'

याचक एक और तर्क देते हुए कर्ण से कहता है कि "यह तो ठीक है कि आपकी गिनती शिव-दधीचि की कोटि में होती है किन्तु यदि याचक ही भाग्यहीन हो तो दानी ही क्या दे सकता है।" कर्ण इसे चुनौती के रूप में लेकर कहता है कि पौरुष और उद्यम के समक्ष दानी भाग्य की एक नहीं चलती। प्रत्युत्तर में कर्ण विप्र याचक को कहता है कि आप वृथा ही भाग्य से भयभीत हैं :

'महाराज, उद्यम से विधि का अंग उलट जाता है,
किस्मत का पासा पौरुष से हार पलट जाता है।
और उच्च अभिलाषाएं तो मनुज मात्र का बल हैं।
जगा जगा कर हमें वही तो रखती नित चंचल हैं।'

याचक अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि था। उसने कहा कि वह इस बात से तो आश्वस्त है कि दानवीर कर्ण दान देने में कोई संकोच नहीं करेगा किन्तु उसे यह आशंका अवश्य है कि यदि कर्ण मांगी हुई वस्तु नहीं दे सका तो कर्ण की 'कीर्ति चांदनी' को क्या होगा। कर्ण पुन: अपने वचन दोहराता हुआ कहता है कि ऐसी 'कौन वस्तु है जिसे न दे सकता राधा का सुत है।' अन्तत: ब्राह्मण का रूप धारण किए हुए देवराज इन्द्र कर्ण से कवच कुण्डल का दान माँगते हैं इस अप्रत्याशित माँग के कारण कर्ण को विद्युत् सी छू गई किन्तु

वह अपने सत्पथ से विमुख नहीं हुआ। कर्ण के निम्न शब्द उसकी चारित्रिक दृढ़ता के परिचायक हैं :

'अतः आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा
शिव-दधीचि की पंक्ति छोड़ कर जग में अयश न लूंगा।'

इसके पश्चात् कर्ण इतना अवश्य कहता है कि 'कवच-कुण्डलों' के दे देने के पश्चात् वह निष्प्राण हो जायेगा। कर्ण को यह समझने में भी समय नहीं लगा कि वह ब्राह्मण वेषधारी याचक स्वयं इन्द्र ही हैं। कर्ण इन्द्र से कहता है कि क्या उनके लिए यह उचित है कि वे केवल अर्जुन को विजयी बनाने के लिए साधनों की पवित्रता की भी बलि दे दें। जिस छल और कपट-योजना से उन्होंने कर्ण का सर्वस्व दान में ले लिया था क्या वह वीरोचित कर्म था? कर्ण कहता है कि यदि अर्जुन वस्तुतः कर्ण को जीतने के लिए इतना आकुल है तो उसे कहिए कि कर्ण की एक मोम की मूर्ति तैयार करके, उसे तलवार से काट ले और फिर 'कर्णजयी' का सम्मान प्राप्त करे।

इस संवाद में पहली बार कर्ण के व्यक्तित्व में किंचित निराशा के भाव भी दीख पड़ते हैं। अपराजेय आत्मविश्वास के धनी, महान् पराक्रमी और शौर्य के स्वामी, तप-त्याग और साधना के इस महान् व्रती के जीवन में ऐसे निराशा के क्षण केवल एक बार ही दीखते हैं और वह भी केवल इसी सर्ग में। वस्तुतः प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझते रहने की भी एक सीमा होती है। मनुष्य अनन्त काल तक संघर्ष नहीं कर सकता और यदि करे भी तो उसका मनोबल एक-सा नहीं रह सकता। कर्ण की निम्न पंक्तियाँ इसी कटु सत्य की ओर इंगित करती हैं :

'जानें क्या मेरी रचना में था उद्देश्य प्रकृति का?
मुझे बना आगार शूरता का, करुणा का, धृति का,
देवोपम गुण सभी दान कर, जाने क्या करने को,
दिया भेज भू पर केवल बाधाओं से लड़ने को।'

घड़ी भर बाद ही कर्ण का मनोबल जागृत हो पाया है। वह पुनः 'भाग्य के भाल' पर पाँव रखने की क्षमता का परिचय देता है। साथ ही वह सत्पथ के प्रति अपनी गहन आस्था और निष्ठापूर्ण विश्वास को दोहराते हुए स्वयं को दीन-हीनों का सच्चा प्रतिनिधि मानकर घोषणा करता है कि :

'मैं केवल आदर्श एक उनका बनने आया हूँ,
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा छोड़ बाहु के बल को।

अन्ततः कर्ण अपनी त्वचा छीलकर 'कवच-कुण्डलों' का दान दे देता है। स्वयं सुरपति इन्द्र कर्ण की इस दानवीरता और वचनबद्धता को देखकर नतमस्तक हो जाते हैं। कर्ण के चरित्र की यही विशेषता है कि उससे मतभेद

रखने वाले, उसके विरोधी भी उसकी प्रशंसा करे बिना नहीं रहते। कर्ण की इस उत्सर्ग-भावना को देखकर देवराज इन्द्र भी उसके समक्ष अपने को 'लघु' पाते हैं। कर्ण के समक्ष उनकी यह स्वीकारोक्ति इसी तथ्य को परिचायक है :

'तू दानी, मैं कुटिल प्रवंचक तू पवित्र मैं पापी,
तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
तू पहुँचा है जहाँ कर्ण देवत्व न जा सकता है
इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।'

प्रस्थान करने से पहले इन्द्र कर्ण को कुछ वरदान देना चाहते हैं। कर्ण केवल वही वरदान मांगता है कि उसकी धर्म-कर्म में रुचि बनी रहे। तथापि सुरपति कर्ण को 'एकघ्नी' नामक अस्त्र देते हुए कहते हैं :

'तू मांगे कुछ नहीं किन्तु मुझको अवश्य देना है,
मन का कठिन बोझ थोड़ा-सा हलका कर लेना है।
ले अमोघ यह अस्त्र काल को भी यह खा सकता है,
इसका कोई वार किसी पर विफल न जा सकता है।
एक ही बार मगर, काम तू इससे ले पायेगा,
फिर यह तुरन्त लौट कर मेरे पास चला आयेगा।'

इस प्रकार इस संवाद में मूलकथा और उसकी पृष्ठभूमि के लिए पर्याप्त सामग्री है और उसके साथ ही इसमें कर्ण का उदात्त चरित्र अपने सर्वाधिक उज्ज्वल और व्रती रूप में वर्णित हुआ है। इस प्रसंग में कर्ण दीन-हीनों का प्रतिनिधित्व करता हुआ दीखता है। निस्सन्देह, यह संवाद कर्ण के उदात्त चरित्र को ऊँचाई की ओर नई-नई दिशाएँ प्रदान करता है।

(घ) कर्ण-कुन्ती संवाद : 'रश्मिरथी' का यह संवाद भी अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावशाली है। महाभारत आरम्भ होने से ठीक एक दिन पहले कर्ण की माता कुन्ती अपने परित्यक्त पुत्र कर्ण के पास आती है। उसका प्रयोजन भी युद्ध को टालने का है और अपने इसी मन्तव्य को लेकर वह कर्ण के पास पहुंचती है। कर्ण नियमानुसार जल में खड़ा हुआ सन्ध्यापूजन में निरत था। अपने पुत्र की इस कंचन-सी काया को देखकर कुन्ती मन-ही-मन फूली नहीं समा रही थी। कुन्ती के आगमन की आहट सुनकर कर्ण चौंक उठा। कुन्ती को देखते ही वह पूछ बैठा—"हैं कौन ? देवि ! कहिए क्या काम करूँ मैं !" कुन्ती इस व्यंग्यबाण से कराह उठी और साधिकार रूप से बोली :

'राधा का सुत तू नहीं, तनय मेरा है, जो धर्मराज का, वही वंश तेरा है।
तू नहीं सूत का पुत्र, राजवंशी है, अर्जुन-समान कुरुकुल का ही अंशी है।'

कुन्ती ने कर्ण के जन्म की दुखद कथा भी दोहरायी। इसके पश्चात् कुन्ती ने अपने आने का प्रयोजन बताते हुए अत्यन्त कातर शब्दों में कहा :

'पर एक बात सुन, जो कहने आयी हूँ,
आदेश नहीं, प्रार्थना साथ लायी हूँ।
कल कुरुक्षेत्र में जो संग्राम छिड़ेगा,
क्षत्रिय समाज पर कल जो प्रलय घिरेगा।
उसमें न पाण्डवों के विरुद्ध हो लड़ तू,
मत उन्हें मार या उनके हाथों मर तू।'

कुन्ती कहती है कि—'पाँचों पाण्डवों में तू ही सबसे बड़ा है, अतः तू इस संग्राम में उनका नेतृत्व कर और विजयी होकर राजकाज को संभाल।" कुन्ती कर्ण से पुराने द्वेष को भूल जाने के लिए कहती है किन्तु कर्ण के अन्तर्मन में छुपे हुए घाव अभी भी भरे नहीं हैं। जाति और वंश के नाम पर उसने जिस उपेक्षा और अपमान की विषघूंट पी है, उसकी तिक्तता अभी पूर्णतः निरसित नहीं हुई है। यद्यपि इस बार कुन्ती के इस कथन में कोई भी छल-कपट नहीं है और अपने कथन की सत्यता के प्रमाण-स्वरूप वह पश्चिमी तट पर चमकते हुए सूर्य की साक्षी देती है तथापि कर्ण का खण्डित हृदय मौन नहीं रह पाता। वर्षों से पल रही वेदना विष उगलने को आतुर है :

'क्या तुम्हें कर्ण से काम? सुत है वह तो,
माता के तन का मल अपूत है वह तो।
तुम बड़े वंश की बेटी ठकुरानी हो,
अर्जुन की माता, कुरु-कुल की रानी हो।
मैं नामगोत्र से हीन, दीन खोटा हूँ,
सारथि पुत्र हूँ, मनुज बड़ा छोटा हूँ।
ठकुरानी, क्या लेकर तुम मुझे करोगी?
मल को पवित्र गोदी में कहां रखोगी?'

कर्ण विष में बुझे व्यंग्य-वाणों की बौछार करता रहता है। वह कहता है कि "तुम तो मुझे अपना दूध भी न पिला सकीं, तुम मेरी माता कैसे हो सकती हो? तुम तो लोकलाज के भय से मुझे मृत्यु के मुख मे छोड़ गई थीं। मेरी वास्तविक माता तो वह राधा है जिसने मुझे धूल में से उठा कर गले लगाया।" कर्ण स्पष्ट शब्दों में कह देता है कि अब उसके लिए सत्पथ से डिग जाना सम्भव नहीं है। वह कुन्ती पर यह आरोप भी लगाता है कि अब भी कुन्ती पुत्र की ममता से वशीभूत होकर नहीं अपितु—'फोड़ने मुझे आई हो दुर्योधन से।' वह अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अपना निर्णय सुनाता हुआ कहता है :

'लेकिन, यह होगा नहीं देवि! तुम जाओ,
जैसे भी हो सुत का सौभाग्य मनाओ।
दें छोड़ भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।"

बाद में कर्ण को माता कुन्ती के लिए कहे विष-बाणों पर पश्चाताप भी होता है, किन्तु बाण धनुष से निकल चुका था। कुन्ती निराश हो जाती है किंतु जाने से पूर्व वह याचिका रूप में कर्ण से माता का स्वत्व मांग लेती है। वह कर्ण की दानशीलता की भी दुहाई देती है और निस्सन्देह इस स्थल पर मां की ममता का आगार सिमट आया है। मातृहृदय में भरा हुआ सारा ममत्व छलक पड़ता दीख रहा है। अपने पुत्र के लिए कुन्ती के निम्न वचन इस सर्ग के ही नहीं अपितु समूचे 'रश्मिरथी' काव्य में अपना अलग स्थान रखने हैं :

'थी विदित वत्स ! तेरी यह कीर्ति निराली,
लौटता न कोई कभी द्वार से खाली।
पर मैं अभागिनी ही अंचल फैला कर,
जा रही रिक्त बेटे से भीख न पाकर।
फिर भी तू जीता रहे न अपयश जाने,
संसार किसी दिन तुझे पुत्र पहचाने
अब आ क्षण-भर मैं तुझे अंक में भर लूँ।
आखिर बार तेरा आलिंगन कर लूँ।'

कर्ण का कठोर मन पसीज गया। उसने कुन्ती को यह आश्वासन दया कि अर्जुन को छोड़ वह उसके किसी भी पुत्र को नहीं मारेगा। इस प्रकार कुन्ती पाँच पाण्डवों की मां अवश्य बनी रहेगी। यदि अर्जुन मारा गया तो वह स्वयं उसका पाँचवां पुत्र बन जायेगा और यदि रण में वही काम आ गया तो भी वह पांच पाण्डवों की माता बनी रहेगी। इस संवाद में कर्ण पुनः अपने आपको दीनहीन दलितों का नेता स्वीकार करता है। कर्ण की यही मानवतावादी दृष्टि कहीं प्रत्यक्ष रूप में तो कहीं प्रच्छन्न रूप में आद्योपान्त देखी जा सकती है। इस संवाद की यही विशेषता है कि इसमें कर्ण का पावन चरित्र करुणा और स्नेहसिक्त ममता के ताप में कंचन की भांति और अधिक प्रोज्ज्वल बन गया है। इसके साथ ही माता कुन्ती का ममत्व अपने निश्छल रूप में अपनी अलग आभा रखता है। कुछ विचारकों ने कर्ण द्वारा अपनी माता को कहे गए कटु शब्दों की आलोचना करते हुए कहा है कि कर्ण जैसे सन्तुलित व्यक्ति को ऐसी कटूक्तियाँ शोभा नहीं देतीं। निस्सन्देह कर्ण ने जो कुछ कहा सच था किन्तु यदि किंचित संयम से काम लिया जाता, सच बात को ही शालीनता का स्पर्श दे दिया जाता तो कर्ण का चरित्र किसी भी दृष्टि से हेय अथवा निकृष्ट नहीं कहा जा सकता था बल्कि उस स्थिति में कर्ण के प्रति पाठक के मन में और भी अधिक श्रद्धा एवं सहानुभूति का उदय होता।

संभावित प्रश्न

प्रश्न—'रश्मिरथी' काव्य के आधार पर 'दिनकर' जी की संवादयोजना की सफलता पर प्रकाश डालिए।

४. प्रकृति-चित्रण

सृष्टि के आरम्भ से ही मनुष्य और प्रकृति के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा है। मनुष्य ने सदा-सदा से कलकल करती नदियां, उच्च पर्वत-मालाओं, नववसन्त के अनुरागमय फूलों, वर्षा के चित्ताकर्षक बादलों के मनोरम चित्रों को जी-भर कर सराहा है। प्रकृति मनुष्य की जीवन-सहचरी बनी रही है। यही नहीं, मनुष्य ने प्रकृति में अपने राग-विराग, सुख-दुख की भी पहचान की है। "आज भी जब उपवनों में नववसन्त के फूल खिलते हैं तब उसका मन आनन्द से विभोर हो उठता है। जब ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप के उपरान्त श्रावण की घटाएँ उमड़ती हुई आती हैं तब नगर में रहने वाले मनुष्य का मन भी एक प्रकार की विचित्र शांति का अनुभव करता है। प्रकृति आज भी हमारे सुख-दुख की वैसी ही संगिनी बनी हुई है जैसी आज से हजारों वर्ष पहले थी, जब मानव प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में रहता था।"

जिस प्रकार मानव-जीवन में प्रकृति एक अनुरागमय स्थान की अधिकारिणी बनी हुई है, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी प्रकृति का स्थान अक्षुण्ण बना रहा है। साहित्य भी तो अन्तत: युग-जीवन का प्रतिबिम्ब होता है और युग जीवन प्रकृति के अनिन्द्य-सौन्दर्य मन्दिर के बिना रीता है। हमारे प्राचीन संस्कृत कवियों ने तो प्रकृति के अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं मनोरम चित्रों की रचना की है। महाकवि कालिदास कृत कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवंश तथा ऋतुसंहार आदि में प्रकृति का स्थान मनुष्य के समकक्ष ही बन पड़ा है। यही कारण है कि संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य के निर्माणक तत्व में प्रकृति के सुरम्य चित्रों का वर्णन आवश्यक बताया है। संस्कृत के काव्य-शास्त्रियों के मतानुसार जिस कवि ने प्रकृति के भीतर जाकर उसकी अक्षय सौन्दर्य निधि का अवलोकन नहीं किया, सूर्य की परुष किरणों में कर्मठता और पौरुष का पाठ नहीं पढ़ा, उषा की अरुणिमा में से स्नेह और स्निग्धता का सौरभ नहीं लूटा उसमें महाकाव्योचित प्रतिभा एवं संस्कार हो ही नहीं सकते।

इसके विपरीत, हिन्दी कवियों ने प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य और उसकी सुख-दुखात्मक अनुभूतियों को अधिक आदर और सम्मान दिया। इसका अर्थ यह नहीं है कि हिन्दी के कवियों ने प्रकृति का वर्णन किया ही नहीं। वस्तुत: उन्होंने प्रकृति के सुरम्य चित्रों के साथ-साथ मानवीय सुख-दुख, राग-विराग के गीतों को भी अपनी काव्य-कृतियों में पिरोया है। इसका कारण युगीन आवश्यकता भी रही। संस्कृत कवियों का युग और हिन्दी कवियों के समय की राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक परिस्थितियों में पर्याप्त अन्तर था।

हिन्दी में प्रकृति वर्णन कई रूपों में हुआ है। यथा उद्दीपन रूप आलंबन रूप, रहस्यभावना की अभिव्यक्ति, वातावरण निर्माण, उपदेशात्मक रूप, प्रतीकात्मक रूप, अप्रस्तुत योजना आदि। 'रश्मिरथी' का कृतिकार छायावाद के अन्तिम चरण का कवि है। कवि दिनकर छायावाद काल के उत्तरार्द्ध और प्रगतिवाद के पूर्वार्द्ध के मध्य की एक महत्त्वपूर्ण शृंखला है। यही कारण है कि प्रकृति के प्रति दिनकर का दृष्टिकोण इन दोनों साहित्यिक वादों की सम्मिलित विशेषताओं से अनुप्राणित है। दिनकर का प्रकृति-चित्रण छायावादी कवियों की परम्परा से तनिक अलग श्रेणी का है। दूसरे शब्दों में, दिनकर के प्रकृति चित्रण में छायावादी दृष्टिकोण के साथ-साथ प्रगतिवादी अर्थात् मानवतावादी दृष्टिकोण के अंकुर भी विद्यमान हैं। कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' में प्रकृति का वर्णन वातावरण निर्माण, सहानुभूतिपूर्ण चेतन सत्ता, मानवीय भावों की गायिका, मानवीकरण आदि विभिन्न रूपों में किया है। इनके प्रकृति-चित्रण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि प्रकृति के उपादान मूल कथा के विकास और उसके पात्रों के चरित्रों के उद्घाटन में भरा-पूरा सहयोग देते हैं। प्रकृति के वायवी अथवा पलायनवादी चित्रों के लिए यहाँ कोई अवकाश नहीं है। यही नहीं, कवि दिनकर ने इस खण्डकाव्य में प्रकृति के माध्यम से अपने व्यक्तिगत सुख-दुख को भी वर्णित नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, प्रकृति का वर्णन मूल कथा के विकास और पात्रों के चरित्र के उद्घाटन के लिए किया गया है और यही कारण है कि 'रश्मिरथी' में प्रकृति का वर्णन कहीं भी अस्वाभाविक अथवा अनावश्यक बौद्धिक विलास का रूप नहीं ग्रहण कर पाया है। मानव-जीवन की सहजगति के लिए उपयुक्त वातावरण एवं पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए, मानवीय भावों को सम्प्रेषणीय बनाने के लिए जितना प्रकृति वर्णन अभीष्ट था, उतना ही 'रश्मिरथी' में सुलभ है।

वातावरण निर्माण के रूप में प्रकृति वर्णन :

'रश्मिरथी' में कवि ने प्रकृति का वर्णन वातावरण निर्माण के लिए भी किया है। किसी भी व्यक्ति अथवा भावी घटना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करनी होती है। दूसरे सर्ग में परशुराम की कुटिया और उस तपोवन के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करके कवि ने निस्सन्देह परशुराम के स्वभाव, अभिरुचि, व्यक्तित्व आदि को भी मुखरित किया है। उदाहरण के लिए निम्न पंक्तियाँ देखिए।

'शीतल विरल एक कानन शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स प्रस्रवण चमकते झरते कहीं शुभ्र निर्झर।
जहाँ भूमि समतल, सुन्दर है, नहीं दीखते हैं पाहन,
हरियाली के बीच खड़ा है विस्तृत एक उटज पावन।

आसपास कुछ कटे हुए पीले धनखेत सुहाते हैं,
शशक, मूस, गिलहरी, कबूतर घूम-घूम कण खाते हैं।
कुछ तन्द्रिल, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,
कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े तुष्ट सारे गोधन।'

निम्न पंक्तियां इस बात का संकेत देती हैं कि परशुराम की उस नीरव कुटिया में हवन-यज्ञ आदि का आयोजन भी होता रहता है :

'हवन-अग्नि बुझ चुकी, गंध से वायु अभी, पर माती है,
भीनी-भीनी महक प्राण में मादकता पहुँचाती है।
धूप-धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्याम छदन कैसे ?
झपर रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।'

इन पंक्तियों के पढ़ने पर परशुराम की कुटिया और उसके आस-पास के विजन प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का परिचय मिलता है, कवि बता रहा है कि वहाँ अभी-अभी हवन होकर चुका है जिसकी गंध अभी भी वायु में व्याप्त है। सर्वत्र भीनी-भीनी महक एक विचित्र मादकता का वातावरण निर्मित कर रही है। हलकी-हलकी धूप छिटकी हुई है और उस सुनहली धूप में बैठे हुए हिरण जुगाली कर रहे हैं। वन के जीवजन्तु अपने-अपने विवरों से निकल कर निर्भयतापूर्वक घूम रहे हैं। आम के वृक्षों की डालों पर मुनि के वस्त्र सूख रहे हैं। इस तपोभूमि के सुरम्य और शान्त वातावरण की झाँकी प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है :

'बैठे हुए सुखद आतप में मृग रोमन्थन करते हैं,
वन के जीव विवर से बाहर हो विश्रब्ध विचरते हैं।
सूख रहे चीवर रसाल की नन्हीं झुकी टहनियों पर,
नीचे बिखरे हुए पड़े हैं इंगुद से चिकने पत्थर।
अजिन, दर्भ, पलाश, कमंडलु एक ओर तप के साधन,
एक ओर हैं टँगे धनुष, तूणीर तीर बरछे भीषण।
चमक रहा तृण-कुटीर-द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह-दण्ड पर जड़ित पड़ा हो, मानो अर्ध अंशुमाली।

इसी प्रकार 'रश्मिरथी' के अन्तिम सर्ग में प्रकृति का वर्णन वातावरण निर्माण के रूप में हुआ है। महाभारत का युद्ध चल रहा है। दूर क्षितिज में उषा की अरुणिमा छिटक रही है। युद्ध की विभीषिका में मनुष्य के पास प्रकृति के सौन्दर्य को निहारने का अवकाश ही कहाँ रह जाता है। ऐसी अशान्ति के वातावरण में भी उषा की लालिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

'संभाले शीश पर आलोक-मंडल,
दिशाओं में उड़ाती ज्योतिरंचल,
किरण में स्निग्ध आतप फेंकती सी
शिशिर-कंपित द्रुमों को सेंकती-सी।
खगों का स्पर्श से कर पंख-मोचन,
कुसुम के पोंछती हिमसिक्त लोचन।
दिवस की स्वामिनी आई गगन में
उड़ा कुंकुम, जगा जीवन भुवन में।'

युद्धकालीन अशान्ति की इस विकट घड़ी में कवि कहता है :

'मगर, नर-बुद्धि-मद से चूर होकर
अलग बैठा हुआ है दूर होकर,
उषा पोंछे भला फिर आँख कैसे ?
करे उन्मुक्त मन की पाँख कैसे।

मनुष्य के बौद्धिक-मद की भर्त्सना करते हुए कवि कहता है :

'मनुज विभ्राट ज्ञानी हो चुका है,
कुतुक का उत्स पानी हो चुका है,
प्रकृति में कौन वह उत्साह खोजे ?
सितारों के हृदय में राह खोजे।'

मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए :

'रश्मिरथी' में कई स्थलों पर कवि ने मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक उपादानों का आश्रय लिया है। निस्सन्देह, इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन अधिक मार्मिक और प्रभावशाली सिद्ध होते हैं। पहले ही सर्ग में जब कौरव-पाण्डवों के शस्त्रचालन-कक्ष में कर्ण अपने पराक्रम और शौर्य के प्रदर्शन से सारी सभा को हतप्रभ कर देता है और उसके उपेक्षित जीवन में पहली बार मान एवं आदर प्राप्त होता है तब कवि इस दृश्य का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करता है। कवि कहता है कि कर्ण की इस अभूतपूर्व सफलता को देख-कर गगन का सूर्य भी क्षण भर को ठिठक गया प्रतीत होता है। भला अपने पुत्र की सफलता को देखकर कौन पिता भावविभोर नहीं हो जायेगा। कर्ण को सूर्यपुत्र माना जाता है। कवि कहता है कि अपने पुत्र कर्ण की इस महान् सफलता को देखकर सूर्य अस्ताचल से ही अपने पुत्र के अंगों का स्पर्श कर रहे हैं, दिवसावसान की बात भी भूल गए हैं :

'बड़ी तृप्ति के साथ सूर्य शीतल अस्ताचल पर से,
चूम रहे थे अंग पुत्र का स्निग्ध, सुकोमल कर से
आज न था प्रिय उन्हें दिवस का समय-सिद्ध अवसान
विरम गया क्षण एक क्षितिज पर गति को छोड़ विमान।'

इसी प्रकार पांचवें सर्ग में कुन्ती और कर्ण की वार्ता के माध्यम से कवि ने कुन्ती के मातृत्व भाव के वर्णन के लिए प्रकृति के उपादानों का आश्रय लिया है। जब माता कुन्ती, कर्ण के निष्ठुर व्यवहार से पूर्णतः निराश हो गई तो उसने अपने मातृत्व की दुहाई देते हुए पुत्र कर्ण से कहा कि—'अब आ क्षण-भर मैं तुझे अंक में भर लूं।' वर्षों से बिछुड़े हुए इस मां और पुत्र के अभूतपूर्व मिलन का वर्णन करने में कवि ने प्रकृति का अत्यन्त सफल प्रयोग करते हुए कहा है :

पहली वर्षा में मही भीगती जैसे
भीगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।'

इसी प्रकार दूसरे सर्ग में परशुराम के समक्ष कर्ण की जाति का भेद खुल गया और गुरुजी ने कर्ण को, यह शाप दे दिया कि —ह समय आने पर सिखाई हुई सारी शस्त्रविद्या भूल जाएगा। निस्सन्देह, गुरुजी का यह शाप, कर्ण के लिए काल की तरह सिद्ध हुआ। कर्ण का सर्वस्व ही लुट गया। उसके मन की अथाह पीड़ा को साकार करते हुए कवि कहता है :

'परशुधर के चरण की धूलि लेकर, उन्हें अपने हृदय की भक्ति देकर,
निराशा से विकल, टूटा हुआ-सा, किसी गिरि-शृंग से छूटा हुआ-सा।
चला खोया हुआ-सा कर्ण मन में,
कि जैसे चाँद चलता हो गगन में।'

'रश्मिरथी' के कवि ने प्रकृति का मानवीकरण रूप में भी चित्रण किया है। मानवीकरण के रूप में प्रकृति-वर्णन, छायावाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कवि दिनकर भी छायावादी कवियों के खेमे के अन्तिम चरण के कवि हैं, अतः उनके प्रकृति-वर्णन में छायावादी प्रभाव सहज ही सुलभ है। इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन में प्रकृति का मानवी रूप अभिव्यंजित किया जाता है। 'रश्मिरथी' में उषाकाल का वर्णन इसी कोटि में आता है :

'सम्भाले शीश पर आलोक मंडल,
दिशाओं में उड़ती ज्योतिरंचल,
किरण में स्निग्ध आतप फेंकती-सी,
शिशिर-कंपित द्रुमों को सेंकती-सी,
खगों में स्पर्श से कर पंख-मोचन,
कुसुम के पोंछती हिम-सिक्त लोचन,
दिवस की स्वामिनी आई गगन में,
उड़ा कुंकुम, जगा जीवन भवन में।

इसी प्रकार रात्रि की रमणी का एक सुन्दर काव्यचित्र पांचवें सर्ग में देखा जा सकता है। यहां कुन्ती अपने पुत्र कर्ण को युद्ध रोकने का आग्रह करती है।

अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कुन्ती अपने मातृत्व की दुहाई देती है, नीति और स्नेह के पाठ पढ़ाती है, किन्तु कर्ण अपने दृढ़ निश्चय से टस-से मस नहीं होता। वह अत्यन्त स्पष्ट भाषा में कहता है कि वह धर्म के ऊपर न्यौछावर हो सकता है और अब उसके लिए उस सत्पथ से पीछे हटना सम्भव नहीं है। वह तो पूजा की वेदी पर चढ़ा हुआ एक फूल है, अब उस पर किसी भी अन्य का कोई अधिकार नहीं है। इसके पश्चात् कवि ने रात्रि की रमणी का एक अत्यन्त लुभावना चित्र खींचा है :

'अम्बर पर मोती गुंथे चुकुर फैला कर,
अंजन उड़ेल सारे जग को नहला कर।
साड़ी में टांके हुए अनन्त सितारे,
थी घूम रही तिमिरांचल निशा पसारे।'

कवि दिनकर ने पात्रों के चरित्र-चित्रण को निखारने के लिए भी प्रकृति का चित्रण किया है और यह निर्विवाद है कि ऐसे प्राकृतिक वर्णनों में स्वाभाविकता एवं सहजता की पूर्ण रक्षा हुई है। कर्ण अपनी दानशीलता एवं चारित्रिक दृढ़ता का परिचय देते हुए छली इन्द्र को कहता है कि :

'मांगो, मांगो दान अन्न या वसन, धाम या धन दूं ?
अपना छोटा राज्य या कि यह क्षणिक, क्षुद्र जीवन दूं।
मेघ भले लौटे उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश, पर नहीं कर्ण के घर से।'

प्रकृति-वर्णन के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति केवल कोमल एवं कमनीय सौम्यता का ही प्रतीक नहीं है। सुन्दर, सुकोमल और सुमधुर के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य रूप भी हैं। आचार्य शुक्ल ने एक स्थल पर लिखा है - "जो व्यक्ति केवल प्रकृति के सौम्य रूप पर ही रीझता है, वह सच्चा प्रकृति प्रेमी नहीं हो सकता।" संस्कृत के ही नहीं अपितु यूनान के 'इलियड' और 'ओडीसी' जैसी विश्वप्रसिद्ध कृतियों में प्रकृति के सौम्य और विकराल, दोनों रूपों का वर्णन मिलता है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में—"वस्तुतः प्रकृति के विकराल रूप जैसे प्रचण्ड आंधियां, भयानक तूफान, दावानल, बाढ़, घनघोर वृष्टि, विद्युत-पतन इत्यादि भी उतने ही हृदय को रसमग्न करने वाले हैं जितने कि बसन्त के विकसित फूलों से भरे हुए उपवन और मलय-सौरभ से मंथर वायु का स्पर्श।" अतः प्रकृति-चित्रण में प्रकृति के सौम्य और विकराल दोनों प्रकार के रूपों का वर्णन होना चाहिए। इस दृष्टि से 'रश्मिरथी' में भी प्रकृति के इन दोनों रूपों के वर्णन सुलभ हैं। प्रकृति के सुकोमल एवं सौम्य रूपों के तो कई उदाहरण ऊपर दिए जा चुके हैं। प्रकृति के विकराल रूप के वर्णन का एक उदाहरण देखिए। महाभारत के युद्ध की विभीषिका को वर्णित करने के लिए कवि दिनकर ने प्रकृति का आश्रय लिया है। इस प्रकार के वर्णनों में प्रकृति का विकराल रूप ही वर्णित हुआ है :

'रथ सजा, भेरियां धमक उठीं, गहगहा उठा अम्बर विशाल,
कूदा स्यन्दन पर गरज कर्ण, ज्यों उठे गरज क्रोधान्ध काल।

× × ×

मही डोली, सलिल-आगार डोला,
भुजा के जोर से संसार डोला।

× × ×

'अम्बर अनन्त झंकार उठा,
हिल उठे निर्जरों के विमान,
तूफान उठाये चला कर्ण,
बल से धकेल अरि दल को,
जैसे प्लावन की धार बहाये,
चले सामने के जल को।'

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'रश्मिरथी' के कवि ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का वर्णन किया है और उन विभिन्न रूपों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कवि ने ऐसे वर्णन प्रकृति की नहीं अपितु पात्रों की प्रकृति, कथाक्रम, मानवीय भावों की सफल अभिव्यंजना के लिए किया है। यही कारण है कि प्रकृति के वायवी चित्र यहां नहीं हैं। यहां तो प्रकृति, पात्रों के व्यक्तित्व को निखारती है, कथा के स्वतन्त्र धागों को एक दूसरे से जोड़ती है और सबसे बड़ी बात यह कि वह मानवीय भावों को अपेक्षित प्रेषणीयता प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि 'रश्मिरथी' में जो भी प्रकृति-वर्णन किया गया है, वह मूल कथा-क्रम में इतनी भलीभांति घुलमिल गया है कि उसे एक पृथक सत्ता नहीं स्वीकारा जा सकता। समूचे काव्य में एक भी स्थल ऐसा नहीं देखा जा सकता जहां प्रकृति के उपादान बलात् थोपे हुए दृष्टिगोचर होते हों। यही दिनकर की 'रश्मिरथी' के प्रकृति-वर्णन की अन्यतम विशेषता है। कवि ने प्रकृति का प्रयोग उसके स्निग्ध सौरभ को बिखेरने के लिए नहीं, अपितु अभिव्यक्ति को और अधिक सम्प्रेषणीय, प्रभावशील और मार्मिक बनाने के लिए किया है। प्रकृति सच्चे अर्थों में मानवीय भावों एवं पात्रों की चिरसहचरी सिद्ध हुई है।

सम्भावित प्रश्न

प्रश्न ४—"कवि ने प्रकृति का प्रयोग उसके स्निग्ध-सौरभ को बिखेरने के लिए नहीं, अपितु अभिव्यक्ति को प्रभावशील और मार्मिक बनाने के लिए किया है।" इस कथन की समीक्षा 'रश्मिरथी' के आधार पर कीजिए।

५. युग-चेतना

साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है। समाज से विमुख होकर साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में—"साहित्य में उन सारी बातों का जीवन्त विवरण होता है जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा और समझा है। जीवन के जो पहलू हमें नजदीक से और स्थायी रूप से प्रभावित करते हैं उनके विषय में मनुष्य के अनुभवों के समझने का एकमात्र साधन साहित्य है। × × × जीवन की जहां तक गति है, वहां तक साहित्य का क्षेत्र है। जीवन से दूर हटा हुआ साहित्य अपना महत्व खो देता है।" इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि साहित्य अपने बीजांकुर अनुभवों के कठोर धरातल से प्राप्त करता है अतः स्वाभाविक है कि उसमें जीवन की अभिव्यक्ति होती है तथापि साहित्य वही स्थायी होता है जिसमें युग की केवल सामयिक समस्याओं का ही विवेचन नहीं होता अपितु सुखद भविष्य के मनोरम कल्पनासूत्र भी अनुस्यूत होते हैं। मानव-जीवन केवल अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ऐतिहासिक-कालों में बांटा गया है अन्यथा वह एक अखंड इकाई है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य की मूल आवश्यकताएँ, मनोवृत्तियां, राग-विराग के रंग-बिरंगे अनुभव सदा-सदा से एक-से रहे हैं। इस प्रकार जिस साहित्य में जीवन के ये मूल तत्व गुंथे होते हैं वह साहित्य जीवन्त और सनातन होता है। इन्हीं मूल तत्वों को युग-चेतना कहा जाता है।

जहां तक 'रश्मिरथी' का सम्बन्ध है उसमें युग की कतिपय ऐसी समस्याओं का विवेचन किया गया है जो केवल उसी युग का अर्थात् महाभारत के युग की ही समस्याएं नहीं हैं अपितु वे किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान हैं। सामाजिक एवं आर्थिक आधारों पर किये गये वर्गभेदों की समस्या 'रश्मिरथी' की मूल समस्या है। कहना न होगा कि आज भी यह समस्या किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। आधुनिक युग में व्याप्त सामाजिक विषमताओं, नैतिक मूल्यों के खुले अतिक्रमणों आदि के मूल में मनुष्य की स्वार्थपरता और वैभव-विलास के संचय की मनोवृत्ति है। आज सर्वत्र हताशा, निराशा और असन्तोष ही दीखता है जोकि स्वयं में सामाजिक अन्याय का परिचायक है। आज का मनुष्य साधनों की शुद्धता को कोई महत्व नहीं देता और उसके लिए साध्य ही सर्वोपरि है। कवि दिनकर के 'रश्मिरथी' नामक खण्डकाव्य में इन सब तत्वों का विवेचन किया गया है। इसी विवेचन को साहित्यिक भाषा में युगचेतना कहा जाता है, क्योंकि युग के निर्माणक तत्व भी तो यही तत्व होते हैं।

'रश्मिरथी' में सर्वप्रथम जातिभेद की नीति की भर्त्सना की गई है। कवि ने कर्ण के चरित्र के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि जाति अथवा वंश की उच्च परम्पराएँ ही जीवन को ऊँचा नहीं उठा सकतीं। मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए केवल उच्च जाति अथवा कुल का होना ही पर्याप्त नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि मनुष्य की जाति का निर्धारण उसके कर्मों द्वारा होता है। पहले ही सर्ग में जब गुरु द्रोणाचार्य कर्ण से उसकी जाति और वंश पूछते हैं तो वह यही कहता है कि :

'पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से, और कवच-कुण्डल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझ में तेज प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।'

इन पंक्तियों में कवि कर्ण के मुख से यही कहलवा रहा है कि उच्च जाति में उत्पन्न हुए व्यक्तियों तथा उच्चता में कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता है। मनुष्य की वास्तविक जाति उसके सत्कर्म, उसका पौरुष आदि होते हैं।

दूसरे सर्ग में कवि ने युद्ध के कारणों की चर्चा करते हुए कहा है कि शासक वर्ग अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही युद्धों का आयोजन करता है। राजाओं की राज्यलिप्सा, सत्ता का मद, अहम् भाव की पूर्ति आदि के कारण ही युद्धों की स्थिति उत्पन्न होती है। इन युद्धों का उद्देश्य दीन-हीन जनता को समृद्ध करना नहीं होता बल्कि इनके मूल में शासक वर्ग की लोभी एवं पापपूर्ण मनोवृत्ति काम करती है। 'रश्मिरथी' का नायक चिन्तन में लीन है :

'रण केवल इसलिए कि राजे और सुखी हों, मानी हों,
और प्रजाएँ मिलें उन्हें, वे और अधिक अभिमानी हों।
रण केवल इसलिए कि वे कल्पित अभाव से छूट सकें।
बढ़े राज्य की सीमा जिससे अधिक जनों को लूट सकें।'

कवि की धारणा यह है कि जब इस संसार में कवियों, ज्ञानियों, विद्वानों, कलाकारों को भरा-पूरा सम्मान मिलने लगेगा, कला और संस्कृति के विकास पर किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं होगा तभी मानवता सुख और चैन की सांस ले सकेगी।

आधुनिक संसार में सर्वत्र अतृप्ति और असंतोष की अग्नि भड़की हुई है। इस अतृप्ति और असंतोष के मूल में सामाजिक एवं आर्थिक विषमताएँ ही हैं और इन विषमताओं का कारण मनुष्य की लोभी मनोवृत्ति है। सामाजिक अन्याय के मूल में यही लोभ-वृत्ति कार्य करती है। मनुष्य वैभव और विलास की दौड़ में सबसे आगे रहना चाहता है और स्वाभाविक है कि उसे ऐसा करने के लिए दूसरे को उसके अधिकारों से वंचित करना होता है। अतः साम्य ही

सर्वोपरि रह जाता है, साधनों की शुद्धता मूल्यहीन हो जाती है। कवि की स्थापना यह है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए वैभव-विलास से अधिक तप और त्याग आवश्यक हैं। यह तो ठीक है कि भौतिक सुख-समृद्धि से मनुष्य को क्षणिक सुख मिल जाता है किन्तु जीवन की पूर्णता के लिए आपदाओं और झंझावातों का परिचय भी आवश्यक है। कर्ण के ये शब्द कवि की इसी धारणा की पुष्टि करते हैं :

'चांदनी, फूल, छाया में पल, नर भले बने सुमधुर कोमल,
पर अमृत क्लेश का पिये बिना, आतप, अंधड़ में जिये बिना,
वह पुरुष नहीं कहला सकता? विघ्नों को नहीं हिला सकता।'

आधुनिक युग में व्याप्त विषमताओं के मूल में मनुष्य की स्वार्थपरक मनोवृत्ति कार्य करती है। जब तक मनुष्य केवल अपने लिए, अपने परिजनों आदि के लिए जीता है, उसका जीवन पूर्ण नहीं हो पाता। इस प्रकार का जीवन मानवता के उच्चादर्शों के अनुकूल नहीं होता। मानव-जीवन की पूर्णता इसी में है कि मनुष्य अपने लिए नहीं बल्कि औरों के लिए जिए। मानव-जीवन का सर्वोपरि आदर्श यही है कि मनुष्य का जीवन सच्चे अर्थों में सर्वजनहिताय हो। कर्ण के ये शब्द इसी मानवीय आदर्श की प्रतिष्ठा करते दीखते हैं :

'इससे बढ़कर और प्राप्ति क्या जिस पर गर्व करें हम?
पर को जीवन मिले अगर तो हंस कर क्यों न मरें हम।

× × ×

पर का दुख हरण करने में ही अपना सुख माना,
भाग्यहीन मैंने जीवन में और स्वाद क्या जाना।'

कवि ने कर्ण को जननेता के रूप में प्रतिष्ठित किया है। निराश और चिर-उपेक्षित मानव-समाज को एक नया स्वर दिया है। मृतप्राय प्राणों में नवप्राणों का संचार किया है। दीनों और असहायों को सहारा दिया है :

'मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
नीच वंश जन्मा कह कर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विषम वह्नि में चारों ओर जलेंगे,
पग-पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेंगे।

तीसरे सर्ग में पुनः युद्ध की समस्या पर कवि का चिन्तन देखने को मिलता है। अज्ञातवास की अवधि पूरी होने पर जब पांडव वापिस आए तो भगवान श्रीकृष्ण शान्ति के दूत के रूप में दुर्योधन के पास आए और पांडवों के लिए पहले तो आधा राज्य और बाद में केवल पांच गांवों की ही मांग रखी। दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण के इस सद्भावनापूर्ण प्रस्ताव का आदर नहीं

किया और स्वार्थ एवं सत्ता के मद में अन्धा होकर स्वयं भगवान को बांधने की सोचने लगा। श्रीकृष्ण ने तत्काल अपना विकराल रूप प्रकट किया और घोषणा की कि—'हे दुर्योधन,

हित वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले मैं अब जाता हूँ, अन्तिम संकल्प सुनाता हूँ।
याचना नहीं, अब रण होगा, जीवन-जय या कि मरण होगा।'

कहना न होगा कि यदि दुर्योधन पांडवों की इस न्यायोचित माँग को स्वीकार करके पांच ग्राम ही दे देता तो महाभारत का यह भीषण युद्ध सम्भवतः होता ही नहीं। उन्होंने बाद में कर्ण से स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि :

'हे वीर तुम्हीं बोलो अकाम, क्या वस्तु बड़ी थी पांच ग्राम।
वह भी कौरव को भारी है। मति गई मूढ़ की मारी है।
दुर्योधन को बोधूँ कैसे, इस रण को अवरोधूँ कैसे।'

कवि ने श्रीकृष्ण के मुख से यह कहलवाकर यही सिद्ध किया है कि कुछ सत्ताधारी स्वार्थी राज्यलिप्सा में अन्धे होकर युद्धों के लिए आधारभूमि तैयार कर देते हैं।

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने यह भी सिद्ध करन का प्रयास किया है कि दोनों में से एक पक्ष भी यदि सहानुभूति और धैर्य से काम ले तो युद्ध की विभीषिका टाली जा सकती है। महाभारत के युद्ध के मूल में केवल दुर्योधन की स्वार्थपरता और सत्ता का मद ही नहीं है बल्कि कौरवों की असहिष्णुता तथा धैर्यहीनता भी है। यह ठीक है कि पांडवों को आधा राज्य अथवा पांच गाँव मिलने ही चाहिए थे किन्तु वस्तुस्थिति तो यह है कि उनमें भी धैर्य नहीं था :

'पांडव यदि केवल पांच ग्राम, लेकर सुख से रह सकते थे,
जो विश्वशान्ति के लिए दुख, कुछ और न क्या सह सकते थे ?'

एक प्रसंग में कवि कहता है कि जिस पक्ष में सहनशीलता और धैर्य का अभाव हो वही युद्ध को न्यौता देता है और :

'फिर उसकी क्रोधाकुल पुकार, सब को बेचैन बनाती है,
नीचे कर क्षीण मनुजता को, ऊपर पशुत्व को ले जाती है।'

इस प्रकार कवि दिनकर ने जिन समस्याओं आदि पर गम्भीर चिन्तन का परिचय दिया है वे समस्याएं केवल महाभारत युग की ही समस्याएँ नहीं हैं, किसी-न-किसी रूप में आज भी विद्यमान हैं। उनके अनुसार मानव-कल्याण के लिए मनुष्य को सुख और समृद्धि का सुखद मार्ग नहीं अपितु त्याग और तपस्या का कंटक मार्ग अपनाना होता है। कवि दिनकर ने युग में शान्ति के लिए सहनशीलता और धैर्य का मार्ग बताया है। यही मानव-कल्याण का

एकमात्र मार्ग है। निस्सन्देह, कवि ने महाभारत के युग की ज्वलंत समस्याओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने का प्रयास किया है।

संभावित प्रश्न

प्रश्न—"रश्मिरथी' के कवि ने महाभारत के युग की ज्वलंत समस्याओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने का प्रयास किया है।" इस कथन की सत्यता पर प्रकाश डालिए।

६. उद्देश्य और सन्देश

साहित्य और जीवन का सम्बन्ध मनुष्य के बौद्धिक विकास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। जीवन के प्रति विमुख होकर रचा गया काव्य केवल सामयिक महत्त्व का होता है। साहित्य के उद्देश्य को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों में पर्याप्त विचार-विनिमय हुआ है। यद्यपि समय के साथ-साथ साहित्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में नई-नई अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं तथापि एक बात जो सदा-सदा से काव्य की आधारभूमि बनी रही है वह है—'काव्य कोई संकीर्ण बुद्धि-विलास नहीं है। वह मनुष्य के जीवन के सब-कुछ को लेकर बनता है। × × × मनुष्य को उसकी स्वार्थ-बुद्धि से ऊपर उठाना, उसको इहलोक की संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर सत्वगुण में प्रतिष्ठित करना, पर दुख-कातर और संवेदनशील बनाना और निखिल जगत के भीतर चिरस्तब्ध 'एक' की अनुभूति के द्वारा प्राणिमात्र के साथ आत्मीयता का अनुभव कराना ही काव्य का काम है।" अतः काव्य का एकमात्र और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य मनुष्य को उसकी स्वार्थबुद्धि से ऊपर उठाना और उसे संवेदनशील बनाना है।

मनुष्य का कोई भी क्रिया-कलाप निरुद्देश्य नहीं होता। साहित्य सृजन में भी यही सिद्धान्त लागू होता है। 'रश्मिरथी' के कवि दिनकर ने भी कुछ उद्देश्य लेकर ही इस खण्डकाव्य की रचना की है। इस खण्डकाव्य को सांगोपांग पढ़ने पर कवि के समक्ष इतिहास के चिर-उपेक्षित पात्र कर्ण के चरित्र का पुनर्मूल्यांकन करना तथा उसके माध्यम से आधुनिक युग की कतिपय ज्वलन्त समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही उद्देश्य प्रतीत होता है। कवि ने इस खण्डकाव्य में युद्ध की समस्या, जातिभेद की समस्या, धर्म के ग्राह्य स्वरूप, अतीत के सम्यक पुनर्मूल्यांकन आदि से सम्बन्धित प्रश्नों पर गम्भीर चिन्तन का परिचय दिया है। सबसे प्रमुख बात तो यह है कि अकेले कर्ण का चरित्र ही इतना प्रोज्ज्वल और आदर्श रूप में चित्रित किया गया है कि उसमें केवल हमारे प्राचीन सांस्कृतिक गौरव की रक्षा ही नहीं हुई अपितु विज्ञान और सभ्यता से विकसित आधुनिक जीवन के लिए सत्प्रेरणा, कर्मयोग, सदाचरण आदि की प्रतिष्ठा की गई है। कवि ने अतीत को नया स्वर प्रदान किया है। आधुनिक युग की ज्वलन्त समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में पौराणिक पात्रों का

पुनर्मूल्यांकन करके, जीवन को नई दिशा, नई गति प्रदान करना ही कवि दिनकर का उद्देश्य है। आद्योपान्त कवि की मानवतावादी दृष्टि बन रही है।

कर्ण महाभारत का एक अत्यन्त यशस्वी किन्तु उपेक्षित पात्र है। कवि दिनकर ने कर्ण के महत्व का प्रतिपादन करते हुए उसके व्यक्तित्व के गौरवपूर्ण स्थलों का सफल उद्घाटन किया है। हिन्दी कविता में इसी प्रकार का एक प्रयास स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत' नामक रचना है जिसमें कवि ने लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के त्याग और बलिदान को नया स्वर प्रदान किया है। वस्तुतः एक सफल कवि अपने ही युग का चितेरा नहीं होता, बल्कि वह गौरवपूर्ण अतीत को वर्तमान युग की आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में देखता और समझता है और फिर उसे भावी युग की मनोरम कल्पनाओं से युक्त करके शब्दों में बांधता है। इस प्रकार श्रेष्ठ कवि बीते हुए 'कल' को 'आज' के परिप्रेक्ष्य में आने वाले 'कल' के अनुरूप ढाल देता है। कवि दिनकर ने भी महाभारत के इस उपेक्षित पात्र के चरित्र को, आधुनिक युग की समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए एक नितान्त मौलिक और नया रूप प्रदान किया है। विशेषता यह है कि 'यह' नया रूप ऐतिहासिक तथ्यों से, प्रायशः मेल भी खाता है; दूसरे शब्दों में, कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों का आदर करते हुए अथवा ऐतिहासिकता को खण्डित किए बिना, कर्ण का एक ऐसा रूप प्रस्तुत किया है जोकि आज के व्यक्ति के लिए भी 'दिव्य प्रेरणा का अजस्र स्रोत' सिद्ध हो सकता है। कवि ने अपने इस लक्ष्य की पूर्ति करते हुए ही नये नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है और वही मूल्य कवि के उद्देश्य अथवा सन्देश कहे जा सकते हैं।

'कुल और जाति' के नाम पर पराक्रम और पौरुष की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। कवि ने कर्ण के माध्यम से 'कुल और जाति' की दर्पपूर्ण परम्पराओं की भर्त्सना करते हुए सच्चे पौरुष और वीरता की महत्ता प्रतिष्ठित की है। कर्ण को कई बार इस प्रकार की उपेक्षा और तिरस्कार के कड़वे घूंट पीने पड़े। पहले तो गुरु द्रोण ने उसकी 'जाति और कुल' की बात पूछकर उसे असह्य पीड़ा पहुंचाई, बाद में परशुराम ने भी जाति के कारण ही कर्ण को शाप दिया और इसी जाति के नाम पर कर्ण को पांडवों द्वारा किए गए खुले तिरस्कार का अभिशाप सहन करना पड़ा। कर्ण ने जातिवाद पर कठोर प्रहार करते हुए गुरु द्रोण को कहा :

'जाति-जाति रटते जिनकी पूंजी केवल पाखंड,
मैं क्या जानूं जाति ? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।"

कर्ण के माध्यम से कवि ने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की जाति उसका पौरुष, उसके सत्कर्म तथा उसका चरित्रबल होता है। कर्ण के ये शब्द कवि दिनकर की इसी अवधारणा की पुष्टि करते हैं :

'मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिये चलते हो,
पर अधमस्य शोषण के बल से सुख में पलते हो।'

वस्तुतः ऊँच-नीच का भेद, जाति और वंश की परम्पराएं केवल कायरों के लिए होती हैं। सत्कर्मों में लीन सदाचारी व्यक्ति अपने चरित्रबल से ही अपनी श्रेष्ठता प्रतिष्ठित करते हैं। दुर्योधन ने भी इन पंक्तियों में यही कहा है :

'मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का ?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।'

कर्ण आजीवन इन्हीं मनुष्य-निर्मित सामाजिक परम्पराओं से जूझता रहा है। जातिगत भेदभाव की समस्या आज के भारतीयों के लिए नितान्त अपरिचित नहीं है। निस्संदेह, इस दिशा में सरकारी तौर पर ही बहुत से ठोस उपाय किए गए हैं तो भी यह अग्नि पूरी तरह शमित नहीं हुई है।

सामाजिक अन्याय और अपमान के कारण अभिशप्त जन-समूह का प्रतिनिधित्व करने वाला कर्ण भाग्य पर नहीं, पुरुषार्थ पर भरोसा रखता है। निरन्तर सामाजिक उपेक्षा के दंश के भागी प्रपीड़ित जन-समुदाय की अन्तर्वेदना को स्वर प्रदान करते हुए कर्ण कहता है कि :

'मैं केवल आदर्श एक उनका बनने आया हूँ
जिन्हें नहीं अवलम्ब दूसरा छोड़ बाहु के बल को
धर्म छोड़ भजते न कभी जो किसी लोभ-से छल को
मैं उनका आदर्श, जिन्हें कुल का गौरव ताड़ेगा,
नीच-वंश जन्मा कहकर जिनको जग धिक्कारेगा।
जो समाज की विषम वन्हि में चारों ओर जलेंगे,
पग पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेंगे।'

× × ×

मैं उनका आदर्श कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे,
पूछेगा जग, किन्तु पिता का नाम न बोल सकेंगे।
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा,
मन में लिये उमंग जिन्हें चिरकाल कल्पना होगा।

कवि दिनकर ने कर्ण के माध्यम से पुरुषार्थ द्वारा भाग्य की रेखाओं को बदल देने के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करके कर्मयोग को पुष्ट आधार प्रदान किया है। कर्मयोग भारतीय चिन्तनधारा का आधार स्तम्भ है। गीता में भी भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मयोग की प्रतिष्ठा की है। कवि दिनकर एक पग और आगे बढ़कर कर्ण के मुख से कहलवाते हैं :

'यह करतब है यह कि शूर जो चाहे, कर सकता है ?
नियमित-भाल पर पुरुष पांव निज बल से धर सकता है।
वह करतब है यह कि शक्ति बसती न वंश या कुल में,
बसती है वह सदा वीर पुरुषों के वक्ष पृथुल में।'

कर्ण वस्तुतः पुरुषार्थ और कर्म का पक्षधर है, उसमें नियति की वक्र रेखाओं को मेट देने का अपराजेय आत्मविश्वास है। स्वयं उसी के शब्दों में :

विधि ने था क्या लिखा भाग्य में, खूब जानता हूँ मैं।
बांहों को पर कहीं भाग्य से बली मानता हूँ मैं।

मानव-जीवन में तप और त्याग का भी अपना अलग महत्व है। मनुष्य केवल अपने ही लिए नहीं जीता, उसका जीवन तो औरों के लिए होता है। समाज में उसी व्यक्ति को अधिक सम्मान और आदर मिलता है जो अपने प्राणों को भी जनहित में लगा देता है। जन-कल्याण के लिए प्राणोत्सर्ग करने की क्षमता ही मनुष्य की वरीयता की एकमात्र कसौटी है। जनसमुदाय ऐसे ही व्यक्तियों की पूजा करता है जिन्होंने क्षुद्र वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर उठ कर व्यापक जनहित के महान् उद्देश्य को सामने रखा हो। इस संसार में उन्हीं महान् व्यक्तियों को स्मरण रखा जाता है जिनके जीवन की धुरी 'मैं दे दूं सब कुछ और न लूं कुछ' नामक सिद्धान्त होता है। कर्ण भी इसी सिद्धान्त का अनुयायी रहा है। उस समूचे जीवन में तिरस्कार और उपेक्षा का व्यथा भार ढोना पड़ा है। उसे एक नहीं, कई बार अपनी सचित निधि का त्याग करना पड़ा है। तथापि, कर्ण के व्यक्तित्व की विशेषता यही है कि उसने अपने जीवन की सर्वाधिक मूल्यवान और प्रिय वस्तुओं का त्याग भी हँसते हुए किया है। कवच और कुण्डलों का दान करने पर भी उसके तेजमय मुखमण्डल पर पश्चाताप की धूमिल-सी रेखा भी नहीं दीखती। यही है उसके महान् व्यक्तित्व की महानता जो उसे महाभारत के अनेक पात्रों की पंक्ति से अलग करती है। कवच और कुण्डल का दान कर देने पर कर्ण के निम्न शब्द कर्ण के चरित्र की महानता का ही परिचय देते हैं :

'भुज को छोड़ न मुझे सहारा किसी और संबल का,
बड़ा भरोसा था लेकिन, इस कवच और कुण्डल का।
पर उनसे भी आज दूर सम्बन्ध किये लेता हूँ,
देवराज ! लीजिए, खुशी से महादान देता हूँ।'

कर्ण के व्यक्तित्व में वचन-पूर्ति का भी महत्वपूर्ण स्थान है। मनुष्य के चरित्र-बल की पहली शर्त सत्याचरण है और वचनपूर्ति भी उसका ही एक उपांग है। दिए हुए वचन को पूरा करना, कठिन एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उसकी रक्षा करना जीवन का काम होता है। व्यावहारिक जीवन में भी

वचनपूर्ति पर बल दिया जाता है। इस दृष्टि से कर्ण जैसा दृढ़-प्रतिज्ञ पात्र वस्तुतः नमस्य एवं पूज्य है। जब उसकी माता कुन्ती महाभारत आरम्भ होने से पूर्व उसके पास आती है और दुर्योधन का साथ न देने का आग्रह करती है तो कर्ण खुले शब्दों में यही कहता है कि वह दुर्योधन का साथ कभी भी नहीं छोड़ सकता। कर्ण के चरित्र की दृढ़ता देखते ही बनती है।

लेकिन यह होगा नहीं देवि ! तुम जाओ,
जैसे भी हो सुत का सौभाग्य मनाओ।
दे छोड़ भले ही कभी कृष्ण अर्जुन को,
मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।

यही नहीं, कर्ण ने अपनी माता को भी एक वचन दिया था। जब माता कुन्ती ने एक याचिका के रूप में अपने पुत्रों के जीवन की भीख मांगी तो कर्ण ने उसे यह वचन दिया कि वह 'अर्जुन' के अतिरिक्त उसके अन्य चारों पुत्रों को जीवनदान देगा। यहां कर्ण का आचरण "युद्ध में सब ठीक है" के विश्वप्रसिद्ध सिद्धान्त से कहीं ऊँचा उठा हुआ है। युद्ध में भी कर्ण ने धर्म-अधर्म का विवेक रखा है और दिए हुए वचन की रक्षा की है। उसने अर्जुन के अतिरिक्त चारों पाण्डवों को जीवनदान दिया और जब उसके सारथी शल्य को कर्ण के इस भोलेपन पर क्रोध आया तो कर्ण ने कहा :

'ये चार फूल हैं मोल किन्हीं कातर नयनों के पानी के,
ये चार फूल प्रछन्न दान हैं किसी महाबल दानी के।
ये चार फूल मेरा अदृश्य था हुआ कभी जिनका कामी,
ये चार फूल पाकर प्रसन्न हँसते होंगे अन्तर्यामी।'

कवि दिनकर ने युद्ध की समस्या का भी गम्भीर विवेचन किया है। युद्ध की समस्या आधुनिक युग में भी बराबर बनी हुई है। इस सम्बन्ध में कवि दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' में भी अत्यन्त संतुलित चिन्तन का परिचय दिया है। युद्ध के गम्भीर परिणामों का विवेचन करते हुए कवि ने यह सिद्ध किया है कि युद्ध मानवता के लिए घातक है। रणलिप्सा और स्वार्थपरता मनुष्य की चिरसंचित सभ्यता और संस्कृति के लिए गम्भीर चुनौतियां सिद्ध हो रही हैं। 'रश्मिरथी' के तीसरे सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण युद्ध की विभीषिका का परिचय देते हुए दुर्योधन से कहते हैं :

याचना नहीं, अब रण होगा, जीवन जय या कि मरण होगा।
'टकरायेंगे नक्षत्र-निकर, बरसेगी भू पर वन्हि प्रखर,
फण शेषनाग का डोलेगा, विकराल काल मुंह खोलेगा।
भाई पर भाई टूटेंगे, विष-बाण बूंद से छूटेंगे।
वायस-शृगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।'

कवि दिनकर युद्ध को रोकने के लिए धर्म और करुणा की आवश्यकता पर बल देते हैं। युद्ध अपने आप में समूची मानवता के लिए घातक होता है उसे तभी रोका जा सकता है जब लोगों में धर्म के प्रति आस्था और विश्वास हो। कहना न होगा कि इस दिशा में कवि ने पाठक की चिन्तन-शक्ति को उद्‌बुद्ध करके ही रहने दिया है।

कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' काव्य में मानवतावादी दृष्टिकोण को सर्वोपरि रखा है। मानवता का चरमोत्कर्ष मानवीय भावों के संस्कार में निहित है। मनुष्य के भीतर अच्छे और बुरे भावों का उदधि हिलोरें मारता रहता है। श्रेष्ठ कवि इन भावों का संस्कार करके इन्हें ऐसे उदात्त धरातल पर प्रतिष्ठित करता है जहां 'स्व' एवं 'पर' के भेदभाव तिरोहित हो जाते हैं। यही मानवता का वह पावन धरातल है जहां केवल जन-कल्याण की पावनी भावना का एकछत्र राज्य होता है। कवि दिनकर के विचार से श्रेष्ठ मानव वही है जिसके भीतर कठोरता और कोमलता का आदर्श सामंजस्य हो। अनीतियों और अन्याय के प्रति विध्वंसात्मक कठोरता, जन-जन के प्रति तरल भावुकता और परहित के लिए त्याग और आत्मोत्सर्ग की उत्कट लालसा—यही है मानव की पूर्णता के निर्माणक तत्व। कवि ने 'रश्मिरथी' के कर्ण को इन्हीं विशेषताओं से परिपूर्ण दिखाया है।

'तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी।'

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर इन्हीं मानवीय गुणों का अभिनन्दन करते हुए कवि कहता है :

'वीर वही है जो शत्रु पर जब भी खड्ग उठाता है,
मानवता के महागुणों की सत्ता भूल न जाता है।'

इस प्रकार निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कवि दिनकर का उद्देश्य महाभारत के यशस्वी किन्तु चिर-उपेक्षित पात्र कर्ण को उसके गौरवानुकूल स्थान का अधिकारी बनाना है। इसके साथ ही कवि ने हमारे गौरवपूर्ण अतीत को वर्तमान की विभिन्न सामाजिक एवं नैतिक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में देखने और समझने का प्रयास भी किया है। जातिभेद की समस्या, युद्ध की समस्या, नैतिक मूल्यों की रक्षा की समस्या, सांस्कृतिक परम्पराओं को युगानुरूप ढालने की समस्या आदि आधुनिक युग की ऐसी ही ज्वलन्त समस्याएं हैं। कर्ण के दृढ़ चरित्र के माध्यम से भी कवि ने इन समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास किया है। कर्ण के प्रोज्ज्वल चरित्र को कवि ने इतनी ऊँचाई पर प्रतिष्ठित किया है कि वह जन-जन के लिए एक 'प्रकाश स्तम्भ' के रूप में बन गया है। कर्ण ने आजीवन तिरस्कार और उपेक्षा का अभिशप्त जीवन बिताया किन्तु फिर भी कठिन से कठिन परिस्थिति में भी उसने अपने सिद्धान्तों की पूरी रक्षा की है। उसने प्रेय से

अधिक साधनों की पवित्रता को माना है। यही उसके व्यक्तित्व के विकास की पराकाष्ठा कही जा सकती है और यही कवि दिनकर का दिव्य संदेश है। साधनों की शुद्धता ही मनुष्य की वास्तविक उपलब्धि है। ध्येय अथवा लक्ष्य की प्राप्ति तब तक निरर्थक और मूल्यहीन है जब तक उसकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त साधन सत्याश्रित न हों। यही कारण है कि यद्यपि कर्ण अन्ततः पराजित हुआ और अर्जुन को विजयश्री प्राप्त हुई तभी कर्ण के उज्ज्वल चरित्र के प्रति भगवान श्रीकृष्ण को यह कहना ही पड़ा कि :

'न जनमा था वह पुरुष हारने को, मगर सब कुछ लुटा कर दान के हित, सुयश के हेतु, नर-कल्याण के हित, दया कर शत्रु को भी त्राण देकर, खुशी से मित्रता पर प्राण देकर, गया है कर्ण भू को दीन करके, मनुज-कुल को बहुत बलहीन करके, युधिष्ठिर! भूलिए, विकराल था वह, विपक्षी था, हमारा काल था वह, अहा! वह शील में कितना विनत था। दया में, धर्म में कैसा निरत था, समझ कर, द्रोण मन में भक्ति भरिये, पितामह की तरह सम्मान करिये, मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत से ज्योति का जेता उठा है,

संभावित प्रश्न

प्रश्न—'रश्मिरथी' के लेखन में दिनकरजी का क्या उद्देश्य निहित था और इसमें उन्हें कहाँ तक सफलता मिली? स्पष्ट कीजिए। अथवा

" 'रश्मिरथी' एक मानवतावादी रचना है"—इस तथ्य को ध्यान में रखकर 'रश्मिरथी' के सन्देश पर प्रकाश डालिए। अथवा

" 'रश्मिरथी' में दिनकरजी का उद्देश्य महाभारत के यशस्वी किंतु चिर-उपेक्षित पात्र कर्ण को उसके गौरव के अनुकूल स्थान का अधिकारी बनाना है—इस कथन की विवेचना कीजिए।

काव्य रूप

'रश्मिरथी' के काव्य रूप के सम्बन्ध में कोई विवाद की-सी स्थिति नहीं है। हिन्दी के प्रवर आलोचकों ने इसे खण्डकाव्य माना है। महाकाव्योचित आकार तथा महाकाव्य के शास्त्रीयतत्व 'रश्मिरथी' पर पूरे नहीं उतरते, अतः इसे खण्ड-काव्य समझा गया है। हमारे काव्यशास्त्रियों में खण्डकाव्य की चर्चा सर्वप्रथम रुद्रट ने की थी और वह भी खण्डकाव्य के नाम से नहीं। उन्होंने दो प्रकार के काव्य गिनाये थे महान काव्य (महाकाव्य) और लघु काव्य (खण्डकाव्य)। इसके पश्चात् और भी काव्यशास्त्रियों ने खण्डकाव्य का विवेचन किया। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रबन्धकाव्य के तीन भेद माने हैं—'महाकाव्य, एकार्थ-काव्य तथा खण्ड-काव्य। उनके अनुसार—"महाकाव्य के ही ढंग पर जिस काव्य की रचना होती है पर जिसमें पूर्ण जीवन न ग्रहण

करके खण्ड जीवन ही ग्रहण किया जाता है उसे खण्डकाव्य कहते हैं। यह खण्डजीवन इस प्रकार व्यक्त किया जाता है जिससे वह प्रस्तुत रचना के रूप में स्वतः पूर्ण प्रतीत होता है।" तथापि भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार खण्डकाव्य की कतिपय विशेषताएँ निर्धारित की गई हैं जो इस प्रकार हैं—
(१) खण्डकाव्य एक ऐसी पद्यबद्ध काव्यकृति होती है जिसके कथानक में इस प्रकार की एकात्मक अन्विति हो कि उसमें अप्रासंगिक कथाएँ सामान्यतः अन्तर्मुक्त न हो सकें, कथा में एकांगिता हो। (२) कथानक पौराणिक, ऐतिहासिक, कल्पित—किसी भी प्रकार का हो सकता है। (३) कथा विन्यास में नाटकीयता खण्डकाव्य के आकर्षण को बढ़ा देती है। खण्डकाव्य में वर्णन विस्तार नहीं होता। (४) खण्डकाव्य का नायक महाकाव्य के नायक की भांति ही उदात्त होना चाहिये। (५) सर्गों का संख्या के बारे में कोई कठोर नियम नहीं होता। (६) खण्डकाव्य में साधारणतः एक ही छन्द का प्रयोग होता है किन्तु इसके भी कई अपवाद हैं। (७) खण्डकाव्य की वस्तु भावात्मक अधिक होती हैं। (८) उदात्त चरित्र के साथ उदात्त विचारों की प्रतिष्ठा। (९) प्रकृति चित्रण।

जहाँ तक 'रश्मिरथी' काव्य का प्रश्न है उसमें यह सभी तत्व देखे जा सकते हैं। 'रश्मिरथी' की कथावस्तु का सम्बन्ध महाभारत युग से है और इस प्रकार यह कथावस्तु पौराणिकता का आधार लिए हुए है। कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों में मूलभूत फेर-बदल नहीं किए हैं, यहाँ तक कि पात्रों के नाम, मूल ऐतिहासिक तत्व आदि की पूरी तरह रक्षा की गई है। इतना अवश्य है कि कवि ने पुरानी कथा के सूत्रों को आधुनिकता का संस्पर्श दिया है। दूसरे शब्दों में, कवि ने एक पौराणिक कथा को नये आयामों में बाँधा है और यह सिद्ध है कि कवि को ऐसा करने में पूर्ण सफलता भी मिली है।

खण्डकाव्य की कथावस्तु में नाटकीयता का निर्वाह भी आवश्यक होता है। कवि ने 'रश्मिरथी' की कथावस्तु में नाटकीयता का पूरा निर्वाह किया है और यही कारण है कि सहस्रों वर्ष पुरानी कथा में रोचकता और आकर्षण का अभाव नाममात्र को भी नहीं खलता। 'रश्मिरथी' के पहले सर्ग में ही कर्ण ने अत्यन्त नाटकीय ढंग से अपना परिचय दिया है। रंगभूमि में गुरु द्रोण धनुर्विद्या सिखला रहे हैं और उनका सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन नाना प्रकार के करतब दिखलाकर वहाँ उपस्थित जनसमूह को मंत्रमुग्ध किए हुए है। तभी अकस्मात् विद्युत की कौंध की तरह कर्ण प्रवेश करता है। कवि ने इस दृष्य का वर्णन इस प्रकार किया है :

> 'रंगभूमि में अर्जुन था जब समां अनोखा बांधे,
> बढ़ा भीड़-भीतर से सहसा कर्ण शरासन साधे।

कहता हुआ—'तालियों से क्या रहा गर्व में फूल ?
अर्जुन तेरा सुयश अभी क्षण में होता है धूल।'

इसी प्रकार जब गुरु द्रोण यह शर्त लगाते हैं कि अर्जुन एक राजपुत्र है और इसलिए अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करने का अधिकर केवल राजपुत्र एक को ही हो सकता है, तब दुर्योधन भी बड़े नाटकीय ढंग से कर्ण का राज्याभिषेक करता है। दुर्योधन की यह घोषणा निस्सन्देह अत्यन्त नाटकीय बन पड़ी है :

'बिना राज्य यदि नहीं वीरता का इसको अधिकार,
तो मेरी यह खुली घोषणा सुने सकल संसार।
अंगदेश का मुकुट कर्ण के मस्तक पर धरता हूँ।
एक राज्य इस महावीर के हित अर्पित करता हूँ।'

काव्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार खण्डकाव्य की कथा में वर्णन विस्तार नहीं होता। 'रश्मिरथी' की कथावस्तु भी बहुत अधिक विस्तृत नहीं हुई है। 'रश्मिरथी' की कथावस्तु का विकास वर्णनात्मक ढंग का नहीं है अपितु उसमें भावात्मक विकास के ही अधिक दर्शन होते हैं अर्थात् 'रश्मिरथी' की कथा-वस्तु में घटनाओं की विविधता के ब्यौरे आदि को विस्तार नहीं दिया गया है। घटनाओं का विस्तार अधिकांशतः भावात्मक बन पड़ा है और यही कारण है कि महाभारत युग की-सी पुरानी कथावस्तु भी 'रश्मिरथी' में आकर अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक बन पड़ी है। खण्डकाव्य की कथावस्तु की एक अन्य विशेषता उसकी एकांगिता है। इसकी कथावस्तु में ऐसी एकात्मक अन्विति बनी रहती है कि उसमें अप्रासंगिक कथाओं के लिए अवकाश नहीं होता। 'रश्मिरथी' की कथावस्तु में यह विशेषता पूर्णतया चरितार्थ होती है। इसमें कहीं भी अनावश्यक प्रासंगिक कथाओं की भरमार नहीं है। केवल वही प्रासंगिक कथाएँ वर्णित की गई हैं जो मूल कथावस्तु को गति देती हैं। यद्यपि 'रश्मिरथी' में कर्ण-परशुराम, कर्ण-इन्द्र, कर्ण-कुन्ती आदि के मध्य हुई महत्व-पूर्ण वार्ताएँ अपने आपमें प्रासंगिक कथाएँ ही हैं तथापि इनमें से कोई भी कथा अनावश्यक नहीं हैं।

खण्डकाव्य का नायक महाकाव्य के नायक की भांति ही एक उदात्त चरित्र होना चाहिए। 'रश्मिरथी' का नायक कर्ण निस्सन्देह एक उदात्त चरित्र है और उसने आद्योपान्त एक उदात्त उद्देश्य का निर्वाह किया है। वह पददलितों के जननेता के रूप में वर्णित है। उसके उदात्त व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेष-ताओं में उसकी शूरवीरता, दानशीलता, वचनप्रियता, साधना की शुद्धता के प्रति गहन आस्था आदि को परिगणित किया जा सकता है। कर्ण के उदात्त व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

'तन से समरशूर, मन से भावुक, स्वभाव से दानी,
जाति गोत्र का नहीं, शील का, पौरुष का अभिमानी।'

कर्ण स्वयं अपने आपको निर्दलितों और प्रताड़ितों का नेता मानते हुए कहता है :

'जग में जो भी निर्दलित, प्रताड़ित जन हैं,
जो भी निहीन हैं, निन्दित हैं, निर्धन हैं,
यह कर्ण उन्हीं का सखा, बन्धु, सहचर है,
विधि के विरुद्ध ही उसका रहा समर है।'

खण्डकाव्य की एक अन्य विशेषता यह भी होती है कि उसमें उदात्त चरित्र के साथ उदात्त विचारों एवं भावों की भी प्रतिष्ठा की जाती है। 'रश्मिरथी' काव्य में कवि ने कर्ण के उदात्त चरित्र के माध्यम से अनेक उदात्त भावों एवं विचारों की सफल प्रतिष्ठा की है। इस प्रकार कवि ने केवल कर्ण के उदात्त चरित्र का ही उद्‌घाटन नही किया है अपितु युगीन समस्याओं के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन का परिचय भी दिया है। 'रश्मिरथी' के कतिपय महात्वपूर्ण विचार एवं भाव इस प्रकार हैं :

पहले सर्ग में ही कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनुष्य की मूल गुणवत्ता उसकी जाति और वंश की उच्च परम्पराओं में नहीं अपितु उसके शौर्य में, सद्‌गुणों और सत्कर्मों आदि में निहित होती है, मनुष्य के कर्मों और उसकी जाति के मध्य कोई अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता। कवि ने इस जात और कुल की उच्च परम्पराओं का खोखलापन इस प्रकार वर्णित किया है। दूसरे सर्ग में कर्ण चिन्तन में लीन :

'मैं कहता हूँ अगर विधाता नर को मुट्ठी में भर कर,
कहीं छींट दे ब्रह्मलोक से ही नीचे भूमण्डल पर।
तो भी विविध जातियों में ही मनुज यहाँ आ सकता है,
नीचे हैं क्यारियाँ बनीं, तो बीज कहाँ जा सकता है।
कौन जन्म लेता किस कुल में? आकस्मिक ही है यह बात,
छोटे कुल पर किन्तु, यहाँ होते तब भी कितने आघात।'

चौथे सर्ग में कर्ण की दानशीलता की पराकाष्ठा के दर्शन किए जा सकते हैं। देवराज इन्द्र द्वारा छल से कर्ण के कवच-कुण्डलों का दान माँगे जाने पर भी कर्ण अपने सत्पथ से डोलता नहीं है। कर्ण की यह घोषणा उसकी दानशीलता की पराकाष्ठा ही है :

'मेघ भले लौटें उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।'

साध्य से अधिक साधनों की शुद्धता भी मानव-जीवन का एक अत्यन्त उदात्त गुण होता है। गीता में भी जिस कर्मयोग की प्रतिष्ठा की बात की गई है वह भी अन्ततः इसी सिद्धान्त की परिणति कही जा सकती है। कवि ने कर्ण

के उदात्त चरित्र में साधनों की शुद्धता का सर्वोपरि स्थान दिया है। कवि के निम्न शब्दों में इसी उदात्त गुण की प्रतिष्ठा की गई है :

'इसलिए, ध्येय में नहीं, धर्म तो सदा निहित साधन में है।

× × ×

यदि कहें विजय, तो विजय प्राप्त हो जाती पर-तापी को भी,
सत्य ही, पुत्र, दारा, धन, जन मिल जाते हैं पापी को भी।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने 'रश्मिरथी' में कर्ण से उदात्त पात्र के चरित्र में ही बहुत से उदात्त भावों एवं विचारों को संजो दिया है।

खण्डकाव्य की एक अन्य विशेषता प्रकृति चित्रण भी होती है। कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' में प्रकृति का प्रयोग दो रूपों में किया है---एक तो उपयुक्त वातावरण अथवा पृष्ठभूमि का निर्माण करने में और दूसरे मानवीय भावों की अभिव्यंजना करने में। 'रश्मिरथी' में प्रकृति के सुरम्य चित्रों की भरमार तो नहीं है किन्तु इतना अवश्य है कि कवि ने आवश्यकतानुसार वातावरण निर्माण अथवा भाव-सम्प्रेषण के लिए प्रकृति के उपादानों का आश्रय लिया है। दूसरे सर्ग में महेन्द्रगिरि पर्वत स्थित परशुराम की कुटिया और उसके आसपास की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करके कवि ने परशुराम के स्वभाव के अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण किया है :

'शीतल विरल एक कानन, शोभित अधित्यका के ऊपर,
कहीं उत्स-प्रस्रवण चमकते, झरते कहीं शुभ्र निर्झर।'

× × ×

कुछ तन्द्रिल, अलसित बैठे हैं, कुछ करते शिशु का लेहन,
कुछ खाते शाकल्य, दीखते बड़े तुष्ट सारे गोधन।'

पांचवें सर्ग में पुनः मानवीय भावों की अभिव्यंजना के लिए प्रकृति के उपादानों का आश्रय लिया गया है। जब कुन्ती अपने पुत्र के द्वार पर से निराश लौट जाती है तो उस समय का शोकाकुल वातावरण प्रेक्षणीय है :—

'थी दिशा स्तब्ध, नीरव समस्त अगजग था,
कुंजों में अब बोलता न कोई खग था।
झिल्ली अपना स्वर कभी कभी भरती थी।
जल में अब तक मछली छप छप करती थी।'

जब माता कुन्ती ने कर्ण को आखिरी बार आलिंगन करने की इच्छा प्रकट की तो उस समय कर्ण को संजीवनी-सी छा गई थी। माता के अंक में भरने के बाद का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

'पहली वर्षा में मही भीगती जैसे,
'भीगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।'

'रश्मिरथी' में सात सर्ग हैं। छन्दों के प्रयोग में भी वैविध्य है जोकि काव्यशास्त्रीय तत्वों के अनुकूल नहीं है। तथापि, खण्डकाव्य की यह कोई अनिवार्य विशेषता नहीं है। मूल बात यह है कि 'रश्मिरथी' में काव्यशास्त्र में निर्धारित खण्डकाव्य की अधिकांश विशेषताएं पूरी तरह चरितार्थ होती हैं। समग्रत: 'रश्मिरथी' एक सफल खण्डकाव्य बन पड़ा है। भाव तथा कलापक्ष का ऐसा अद्भुत मिलन विरला ही होता है।

संभावित प्रश्न

प्रश्न—"'रश्मिरथी' एक सफल खण्डकाव्य है।" खण्डकाव्य की विशेषताएं बताते हुए इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

८. काव्य सौन्दर्य

किसी भी काव्य के दो पक्ष होते हैं—भावपक्ष तथा कलापक्ष। भावपक्ष का आशय मानवीय भावों से होता है और कलापक्ष का सम्बन्ध काव्य के कलात्मक सौंदर्य से होता है। श्रेष्ठ अथवा सफल काव्य के लिए इन दोनों पक्षों का मधुर सामंजस्य आवश्यक है। जिस कविता में केवल भावों का सौन्दर्य होता है किन्तु उनकी अभिव्यक्ति कलापूर्ण नहीं होती, वह काव्य भावों के उत्कर्ष का कारण होते हुए भी श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी में परिगणित नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार लच्छेदार भाषा, अलंकारों का बाहुल्य, छन्दों की छटा—ये सभी तत्व मिलकर भी तब तक किसी उच्चकोटि के काव्य का निर्माण नहीं कर सकते जब तक कि उनमें 'कुछ' कहा न गया हो। अत: आवश्यकता इस बात की है कि सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति भी मधुर एवं कलात्मक हो। कलापक्ष और भावपक्ष दोनों ही असंपृक्त रूप से जुड़े होते हैं और उन्हें अलग-अलग करके देखना और समझना भ्रामक हो सकता है। कवि दिनकर ने एक अन्य स्थल पर इसी तथ्य को किंचित स्थूल शब्दों में इस प्रकार कहा है—"साहित्य के कारखाने में अब तक वह आरी नहीं बनी जिसमें कविता का भाव-पक्ष उसके शैलीपक्ष से चीरकर अलग किया जा सके और आगे भी ऐसी आरी बनने की सम्भावना नहीं है।"

भाषा कलापक्ष का सबसे पहला और महत्वपूर्ण विषय भाषा होती है क्योंकि अभिव्यंजना के अन्तर्गत भाषा के समस्त रूपगत और अर्थगत सौन्दर्य समाहित होते हैं। भाषा की प्रमुख विशेषता यह होती है कि वह एक सुशीला नारी की तरह भावों की अनुगामिनी बनी रहे। जहां तक 'रश्मिरथी' काव्य का प्रश्न है इसमें अधिकांशत: वीर और रौद्र रस की अभिव्यंजना हुई है। कवि ने इन दोनों रसों की अभिव्यंजना के लिए ओज और पौरुष गुणों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। पहले सर्ग में जब गुरु द्रोण कर्ण से उसकी जाति और वंश

के बारे में पूछते हैं तो कर्ण तिलमिला उठता है। रौद्र रस के अनुरूप ओजपूर्ण भाषा में उसके निम्न शब्द द्रष्टव्य हैं:

'पूछो मेरी जाति शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि समान दीपित ललाट से और कवच-कुण्डल से।
+ + +
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर कमान,
अपनी महाजाति की दूंगा मैं तुमको पहचान।'

इसी प्रकार महाभारत के युद्ध का वर्णन भावानुकूल भाषा के रूप में किया गया है। कवि दिनकर अन्यथा भी अपनी परुष भाषा के लिए प्रसिद्ध हैं और इसलिए वीरता, युद्ध आदि के प्रसंगों में उन्हें अत्यधिक सफलता मिली है। महाभारत के युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कवि कहता है:

'हो शस्त्रों का झनझन निनाद, दन्तावल हों चिग्घार रहे,
रण को कराल घोषित करते हों समशूकर हुंकार रहे।
+ + +
ले चलो जहां फट रहा व्योम मच रहा जहां पर घमासान,
साकार ध्वंस के बीच पैठ छोड़ना मुझे है आज प्राण।'

तथापि कोमल भावों के लिए कवि ने अत्यन्त कोमल और मधुर भाषा का प्रयोग किया है। निस्सन्देह, कवि का अपनी भाषा पर असाधारण अधिकार है। पांचवें सर्ग में मां की ममता को साकार करते हुए कवि कहता है:

'मां ने बढ़ कर जैसे ही कंठ लगाया,
हो उठी कंटकित पुलक कर्ण की काया।
पहली वर्षा में मही भींगती जैसे,
भींगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।'

'रश्मिरथी' की भाषा में ओज गुण का ही बाहुल्य है। तथापि और माधुर्य गुण के भी कई उदाहरण देखे जा सकते हैं। वस्तुतः यह समूचा काव्य ही एक पराक्रमी वीर की यश-गाथा है, अतः इसमें ओजगुण का अधिकाधिक प्रयोग होना स्वाभाविक भी है। यहां ओज गुण का एक उदाहरण प्रस्तुत है:

'रथ सजा भेरियां धमक उठीं, गहगहा उठा अम्बर विशाल,
कूदा स्यन्दन पर गरज कर्ण, उठे गरज क्रोधान्ध काल।
बज उठे रोर कर पटह कम्बु, उल्लसित वीर कर उठे हूह,
उच्छल सागर सा चला कर्ण को लिए क्षुब्ध सैनिक समूह।

शब्द शक्तियां 'रश्मिरथी' की भाषा में लक्षणा तथा व्यंजना शब्द-शक्तियों का भी भरापूरा प्रयोग मिलता है। कवि दिनकर भाषा के जादूगर हैं

अतः उनकी अभिव्यंजना शक्ति उनकी अनुभूति की ही भांति अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी है। लक्षणा शक्ति के प्रयोग के कुछ उदाहरण देखिए :

'उड़ते जो झंझावातों में, पीते जो वारि प्रपातों में,
सारा आकाश अयन जिनका, विषधर भुजंग भोजन जिनका।
वे ही फणिबन्ध छुड़ाते हैं, धरती का हृदय जुड़ाते हैं।'

यहां प्रथम पंक्ति का आशय ऐसे व्यक्तियों से हैं जो विपत्तियों और कठिनाइयों में पलते हैं अर्थात् जिनका जीवन निरापद नहीं होता।

व्यंजना-शक्ति—'रश्मिरथी' में कवि ने कई स्थलों पर व्यंजना-शक्ति का भी सशक्त प्रयोग किया है। एक उदाहरण देखिए :

'और पार्थ यदि बिना लड़े ही जय के लिए विकल है,
तो कहता हूँ, उस जय का भी एक उपाय सरल है।
कहिये उसे, मोम की मेरी एक मूर्ति बनवाये,
और काट कर उसे, जगत में कर्ण-विजयी कहलाये।'

भाषा में मुहावरों आदि का भी बहुत महत्व होता है। कवि दिनकर ने 'रश्मिरथी' की भाषा में आवश्यकतानुसार मुहावरों का भी अत्यन्त सफल प्रयोग किया है और कहना न होगा कि इस प्रकार के प्रयोग से भाषा और उसकी सम्प्रेषणीयता अत्यधिक प्रभावशाली बन गई है। 'रश्मिरथी' में प्रयुक्त कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं :

(१) पर राधा ने जिस दिन मुझको पाया था,
कहते हैं, उसको दूध उतर आया था।
(२) धूलों में था मैं पड़ा हुआ, किसका स्नेह पा बड़ा हुआ।
(३) भीतर जब टूट चुका था मन, आ गया अचानक दुर्योधन।

'रश्मिरथी' की भाषा में मुहावरों के अतिरिक्त सूक्तियों का भी सफल प्रयोग किया गया है। कहना न होगा कि मुहावरों और सूक्तियों के प्रयोग से 'रश्मिरथी' की भाषा और भी अधिक प्रभावशाली बन पड़ी है। कवि दिनकर की अभिव्यजना-शक्ति सूक्तियों आदि के प्रयोग से और भी अधिक सजीव बन गई है। 'रश्मिरथी' में प्रयुक्त कतिपय 'सूक्तियों' के उदाहरण निम्नानुसार हैं :

(१) तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं, जग से प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
(२) नहीं फूलते कुसुम मात्र राजाओं के उपवन में,
अमित बार खिलते वे पुर से दूर कुंज-कानन में।

'रश्मिरथी' की भाषा की अन्य विशेषता यह भी है कि कवि ने भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए आवश्यकतानुसार उर्दू, फारसी के शब्दों को

अपनाने में भी संकोच नहीं किया है। कुछ शब्द हैं : आदमी, फकत, तलवार, बेहोश, बदनाम, किस्मत, खुद, दुश्मन, लाशों, मुसीबत।

अलंकार योजना—काव्य में भावोत्कर्ष के लिए अलंकारों की स्थिति भी आवश्यक मानी गई है। तथापि अलंकारों के प्रयोग के लिए असाधारण सूझ-बूझ की आवश्यकता होती है। कवि दिनकर ने अलंकारों के प्रयोग में पूर्ण कौशल का परिचय दिया है, और इस प्रकार 'रश्मिरथी' में प्रयुक्त अलकार वस्तुत: 'अलंकरण' के साधन बन सके हैं। कतिपय महत्वपूर्ण अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं :

उत्प्रेक्षा— एक ओर टंगे हैं धनुष, तूणीर तीर बरछे भीषण।
चमक रहा तृण-कुटी-द्वार पर एक परशु आभाशाली,
लौह दंड पर जड़ित पड़ा हो, मानो अर्ध अंशुमाली।

संदेह— हवनकुण्ड जिसका यह उसके ही क्या है ये धनुष कुठार ?
जिस मुनि की यह स्रुवा उसी की कैसे हो सकती तलवार ?
आई है वीरता तपोवन में क्या पुण्य कमाने को ?
या संन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को ?

उपमा— धूम धूम चर्चित लगते हैं तरु के श्याम छवन कैसे,
झपक रहे हों शिशु के अलसित कजरारे लोचन जैसे।

स्वभावोक्ति— अजिन दर्भ पालाश कमंडलु एक ओर तप के साधन,
एक ओर हैं टंगे धनुष, तूणीर तीर बरछे भीषण।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि 'रश्मिरथी' में भावों के उत्कर्ष के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य भी देखते ही बनता है। सीधी सरल भाषा में कवि ने मानवीय भावों की अत्यन्त प्रभावशाली अभिव्यक्ति की है। पौरुष और शौर्य के प्रतीक कर्ण के चरित्र को दिनकर की लेखनी ने साकार कर दिया है। कलापक्ष के सभी अंगों का प्रयोग आवश्यकतानुसार किया गया है। कवि का मूल उद्देश्य यही रहा है कि महाभारत के चिरउपेक्षित किन्तु अमित पराक्रम और शौर्यधारी कर्ण के चरित्र की बारीक-से-बारीक रेखाएं उभारी जाएं और उसके उदात्त चरित्र एवं उदात्त भाव-विचारों को कलात्मक सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त किया जाय। कहना न होगा कि इस दृष्टि से कवि दिनकर अत्यधिक सफल रहे हैं।

संभावित प्रश्न

प्रश्न—"रश्मिरथी में भावों के उत्कर्ष के साथ-साथ कलात्मक सौन्दर्य भी देखते ही बनता है।" उपयुक्त उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

६. शीर्षक की सार्थकता

किसी भी साहित्यिक कृति के शीर्षक के चयन के सिद्धान्त कुछ भी हो सकते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में आधारभूत बात यह है कि शीर्षक ऐसा होना चाहिए जिसके उच्चारण मात्र से उस कृति की अन्तर्वस्तु का परिचय मिल सके। दूसरे शब्दों में, कृति का नामकरण, घटना अथवा चरित्र अथवा संयुक्त रूप से दोनों के आधार पर किया जा सकता है किन्तु उसकी सार्थकता तभी है जबकि कृति के नाम लेने पर ही उस कृति की विषयवस्तु का कुछ परिचय प्राप्त हो सके। तथापि, साहित्यिक कृतियों के नामकरण के कतिपय महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की चर्चा प्रसंगानुकूल होगी।

साहित्यिक कृतियों के नामकरण मुख्यतः तीन प्रकार से किए जाते हैं—

(१) प्रधान घटना के आधार पर,

(२) प्रधान चरित्र के आधार पर तथा

(३) कृति में अन्तर्निहित लक्ष्य के आधार पर।

पहली प्रकार की कृतियों के नामों में 'जयद्रथवध', 'हल्दी घाटी,' 'वैदेही बनवास' आदि काव्यों को परिगणित किया जा सकता है। दूसरी कोटि की कृतियों में 'रामचरित मानस', 'मृगनयनी' (उपन्यास) आदि आ सकते हैं। तीसरी कोटि में कृतियों की अपेक्षयता अधिक बड़ी संख्या आती है क्योंकि इस प्रकार की कृतियों में नामकरण का आधार न तो पात्र होता है और न घटना, अपितु कृति में अन्तर्निहित लक्ष्य के आधार पर ही ऐसी कृतियों का नाम निर्धारित कर दिया जाता है। अधिकांश चिन्तन-प्रधान अथवा भाव-प्रधान कृतियाँ इसी श्रेणी में आती हैं। निस्सन्देह, इस प्रकार की कृतियों के नामकरण में कृतिकार अधिक स्वतन्त्र होता है तो भी ऐसे नामों का आकर्षक और सुमधुर होना आवश्यक है। कृति के नाम का आकर्षक होना एक महत्व-पूर्ण शर्त है। मनमाने ढंग से उद्देश्यहीन नामकरण न तो किए जा सकते हैं और न उन्हें जन-स्वीकृति ही मिल सकेगी। कहना न होगा कि कृतियों के नामों से उनके कृतिकारों की बौद्धिक अभिरुचियों का भी परिचय प्राप्त होता है। इस दृष्टि से छायावादी कवियों की अधिकांश कृतियों के नाम अत्यन्त आकर्षक और सोद्देश्य होने के साथ-साथ कृतिकारों के भावात्मक गठन और बौद्धिक अभिरुचियों के द्योतक भी होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ छायावादी रचनाओं के नाम देखिए कामायनी, झरना, आंसू, परिमल, अनामिका, गीतिका, अपरा, बेला, नये पत्ते, रश्मिबंध, उत्तरा, रजत शिखर, स्वर्ण धूलि, दीपशिखा, नीरजा, सांध्य गीत। अतः कृतियों के नामकरण के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शर्त यह है कि नाम आकर्षक और सुमधुर होने के साथ-साथ सोद्देश्य भी होना चाहिए।

जहां तक 'रश्मिरथी' नामक खण्डकाव्य के नामकरण का प्रश्न है इतना निर्विवाद है कि इस काव्य का नाम इसके प्रमुख पात्र पर रखा गया है। 'रश्मिरथी' में महाभारत के पराक्रमी वीर और दानवीर कर्ण की कथा वर्णित है। कवि दिनकर ने कर्ण को ही 'रश्मिरथी' के नाम से अभिहित किया है। 'रश्मि' का शाब्दिक अर्थ सूर्य की किरण होता है और 'रथी' का अर्थ पुण्य के रथ वाला होता है। इस प्रकार 'रश्मिरथी' का अर्थ ऐसे व्यक्ति (अर्थात् कर्ण) से है जिसका 'रथ' किरणों का हो। काव्य के अन्तिम सर्ग में 'रश्मिरथी' का अर्थ और भी अधिक मुखरित और सुस्पष्ट हो जाता है जबकि अपनी मृत्यु समीप देखकर कर्ण कह उठता है :

'महानिर्वाण का क्षण आ रहा है, नया आलोक-स्यन्दन आ रहा है,
तपस्या से बने हैं यन्त्र जिसके, कसे तप-त्याग से हैं तन्त्र जिसके।'

यहाँ दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'आलोक-स्यन्दन' इसी आलोकमय रश्मिरथी का पर्यायवाची है। इसी सर्ग में आगे चल कर कर्ण यह भी कहता है :

'प्रभा-मंडल ! भरो झंकार ! बोलो !
जगत की ज्योतियो ! निज द्वार खोलो।
तपस्या रोचिभूषित ला रहा हूं,
चढ़ा मैं रश्मिरथ पर आ रहा हूं।'

इस प्रकार कवि ने अन्तिम सर्ग में काव्य के नामकरण का आधार सुस्पष्ट कर दिया है। तथापि इस काव्य के नामकरण के औचित्य के पक्ष में और भी तर्क दिए जा सकते हैं।

सर्वप्रथम तो कर्ण को 'रश्मिरथी' कहना इसलिए सार्थक है क्योंकि वह सूर्य की सन्तान है और रश्मि (अर्थात् किरण) सूर्य का ही अंश होती है। सूर्य के प्रायशः सभी गुण और विशेषताएं कर्ण में देखी जा सकती हैं। 'सूर्य' अग्नि का एक विशाल पिण्ड कहा जाता है और 'अग्नि' तेज, शौर्य, वीरता की द्योतक होती है। कवि दिनकार ने 'रश्मिरथी' काव्य के प्रथम सर्ग के पहले दो-तीन पदों में अग्नि का यही अर्थ ग्रहण किया है :

'जय हो' जग में जले जहां भी, नमन पुनीत अनल को,
जिस नर में भी बसे, हमारा नमन तेज को, बल को।

× × ×

क्षत्रिय वही, भरी हो जिसमें निर्भयता की आग।'

कहना न होगा कि इस काव्य के प्रमुख पात्र कर्ण में तेज और शौर्य का अक्षय कोष भरा हुआ है। उसके तेजमय मुखमण्डल से पौरुष और पराक्रम की 'आग' फूट रही थी। उसके रोम-रोम में शक्ति और तपोबल की ऊष्णता विराजी थी। स्वयं गुरु द्रोण उसके पराक्रम और पौरुष की पहली अग्नि का परिचय पाकर सहम गये थे :

'मगर आज जो कुछ देखा उससे धीरज हिलता है।
मुझे कर्ण में चरमवीरता का लक्षण मिलता है।

× × ×

सोच रहा हूँ, क्या उपाय मैं इसके साथ करूंगा,
इस प्रचंडतम धूमकेतु का कैसे तेज हरूंगा।'

स्वयं गुरु द्रोण इस पराक्रमी को 'प्रचण्डतम धूमकेतु' (अर्थात् प्रचण्डतम अग्नि) से विशेषित करते हैं।

सूर्य की एक अन्य विशेषता उसका निष्कलंक स्वरूप है अर्थात् सूर्य का प्रकाश और उसकी शुभ्र किरणें पवित्रता की परिचायक होती हैं। कर्ण का चरित्र भी आद्योपान्त सूर्य की किरणों की भांति निष्कलंक और स्वर्णिम प्रकाश से प्रोज्ज्वल दीखता है। उसके चरित्र में कहीं भी छल-कपट, मिथ्याभिमान, द्वेषपूर्ण ईर्ष्या अथवा अनुचित साधनों के लिए स्थान नहीं है। महाभारत में ऐसा उज्ज्वल चरित्र, जो आद्योपान्त अपने सिद्धान्तों की रक्षा में निरत रहता है और जय- पराजय से अधिक साधनों की पवित्रता पर बल देता है, सम्भवत: अपने आप में अकेला ही कहा जा सकता है। देवराज इन्द्र के छलपूर्ण व्यवहार का पूरा परिचय उस समय मिल जाता है जबकि वे अपने पुत्र अर्जुन को जयी देखने के लिए ब्राह्मण-याचक का रूप धारण करके कर्ण से, उसके कवच-कुण्डलों का दान ले लेते हैं। यही नहीं, काव्य के अन्तिम सर्ग में भगवान श्रीकृष्ण भी युद्ध-धर्म से विमुख हो गए। इसी प्रकार गुरु द्रोणाचार्य की चारित्रिक दुर्बलता उस समय स्पष्ट हो जाती है जबकि वे कर्ण के शस्त्रज्ञान को देखकर चकित रह जाते हैं और अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं :

'सबसे अलग चले अर्जुन को लिए हुए गुरु द्रोण,
कहते हुए—'पार्थ ! पहुँचा यह राहु नया फिर कौन।
जनमें नहीं जगत में अर्जुन ! कोई प्रतिबल तेरा,

टंगा रहा है, एक इसी पर ध्यान आज तक मेरा।
एकलव्य से लिया अंगूठा, कढ़ी न मुख से आह।
रखा चाहता हूँ निष्कंटक बेटा ! तेरी राह।'

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि महाभारत के प्रायश: सभी बड़े-बड़े पात्र चारित्रिक ईमानदारी की दृष्टि से कर्ण के समक्ष फीके और निस्तेज लगते हैं और कर्ण का ही एकमात्र चरित्र ऐसा है जो सूर्य की किरणों की तरह निष्कलंक और स्वर्णिम आलोक से परिपूर्ण है। उसके चरित्र में कहीं कोई भी धब्बा नहीं दिखाई देता।

सूर्य की एक अन्यतम विशेषता उसकी अपार दानशीलता है। वह सभी को (बिना किसी भेदभाव के) प्रकाश और धूप का दान देता है। उसके समक्ष कुपात्र अथवा सुपात्र का कोई प्रश्न नहीं होता। निर्जन वन-प्रदेश में स्वत: खिलने वाले और लगन एवं श्रम से काट-छाँट कर बनाई गई क्यारियों में विकसित होने वाले, दोनों प्रकार के फूलों के लिए सूर्य एक-सा प्रकाश और एक-सी धूप बिखेरता है। कर्ण के व्यक्तित्व में भी यह दानशीलता देखी जा सकती है बल्कि सच तो यह है कि कर्ण शूरवीर की अपेक्षा दानवीर के रूप में अधिक विख्यात है। जन-साधारण के समक्ष कर्ण की दानशीलता ही अधिक मुखरित हो सकी है। स्वयं कर्ण अपने को शिवि-दधीचि की पंक्ति में देखने के लिए कटिबद्ध है। जब देवराज इन्द्र छलपूर्वक उसके कवच-कुण्डल का दान ले लेते हैं तब कर्ण के ये शब्द उसकी अभूतपूर्व दानशीलता के ही परिचायक दीखते हैं :

'अत: आपने जो माँगा है, दान वही मैं दूँगा,
शिवि-दधीचि की पंक्ति छोड़कर जग में अयश न लूँगा।'

कर्ण के व्यक्तित्व में सूर्य की-सी दृढ़ता भी सहज सुलभ है। कर्ण के व्यक्तित्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषताओं में उसकी चारित्रिक दृढ़ता का महत्व भी आद्योपान्त अक्षुण्ण बना रहा है। कर्ण को उसके सत्पथ से डिगाने के लिए नाना प्रकार के व्यूहों की रचना की गई, कई प्रकार के प्रलोभनों का जाल बिछाया गया किन्तु इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते कि कर्ण की-सी चारित्रिक दृढ़ता महाभारत के किसी भी अन्य पात्र में ढूँढने पर भी सम्भवत: न मिल सके। उसके जीवन के कुछ सिद्धान्त थे, कुछ नियम थे और उसने जीवन भर उन्हीं सिद्धान्तों एवं नियमों का निर्वाह किया। उन्हीं सिद्धान्तों की

रक्षा में उसने अपने प्राणों की आहुति दे दी। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि यदि कर्ण ने भी देवराज इन्द्र अथवा भगवान श्रीकृष्ण की भांति चारित्रिक ईमानदारी की खुली उपेक्षा की होती तो महाभारत वह नहीं होता जोकि हुआ। सम्भवत: उसकी रचना किसी विपरीत क्रम से होती। कर्ण की पराजय वस्तुत: उसके दृढ़ चारित्रिक बल की विजय थी। स्वयं श्रीकृष्ण ने कर्ण की इस अपराजेय निष्ठा और चारित्रिक दृढ़ता की उन्मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। कर्ण की मृत्यु हो जाने पर युधिष्ठिर अत्यन्त हर्षित हो जाते हैं तो श्रीकृष्ण उन्हें बताते हैं कि :

'मगर, जो हो, मनुज सुवारुठ था वह, धनुर्धर ही नहीं, धर्मिष्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था, बड़ा ब्राह्मण था, मन से यती था।

× × ×

युधिष्ठिर ! भूलिए, विकराल था वह, विपक्षी था, हमारा काल था वह।
अहा ! वह शील में कितना विनत था, दया में, धर्म में कैसा विनत था।'

नियति के क्रूर थपेड़ों और दुर्भाग्य के अंक में पलने वाले कर्ण की चारित्रिक दृढ़ता सूर्य की दृढ़ता, एक स्थिरता और अडिगता से सहज ही तुलनीय है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कर्ण को 'रश्मिरथी' के रूप में चित्रित करना सर्वथा सार्थक और समीचीन है। 'रश्मिरथी' का आशय ऐसे व्यक्ति से है जिसका रथ किरणों का हो। हम पीछे देख आए हैं कि कर्ण के चरित्र में सूर्य की-सी दृढ़ता, दानशीलता, साम्यभावना, उदारता, वीरता और शुभ्रता सहज ही सुलभ है। सूर्य के अंश (कर्ण) में सूर्य के गुणों का होना नितान्त स्वाभाविक है। इसीलिए कर्ण को सूर्य-पुत्र भी कहते हैं। इन सभी कारणों से इस खण्डकाव्य का नामकरण जोकि इसके प्रमुख पात्र कर्ण के नाम पर किया गया है, सर्वथा सार्थक और समीचीन है।

संभावित प्रश्न

प्रश्न—'रश्मिरथी' काव्य के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

व्याख्या भाग : प्रथम सर्ग

कथावस्तु—इस काव्य का आरम्भ अग्नि की वन्दना से होता है। कवि दिनकर ने प्रथम सर्ग में ही पवित्र अग्नि की जय-जयकार की है। इसके पश्चात् की पंक्तियों में कवि ने जाति, वर्ग और रंग-भेदादि के ऊपर मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा की है और निस्सन्देह कवि ने इस प्रकार के वर्णन से काव्य के नायक कर्ण की कथा के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार की है। सूर्य-पुत्र होते हुए भी कर्ण को यथोचित सम्मान प्राप्त नहीं हो सका था और इसका कारण यह था कि कर्ण की माता कुन्ती ने अविवाहित कन्या रहकर पुत्र कर्ण को जन्म दिया था। लोकलाजवश वह अपने पुत्र का पालन-पोषण अपने यहाँ नहीं कर सकी और उसने कर्ण को एक मंजूषा में रखकर नदी में बहा दिया। कौरवों के सूत अधिरथ को यह मंजूषा मिल गई और इस प्रकार सूर्यपुत्र कर्ण का लालन-पालन अधिरथ और उनकी पत्नी राधा ने किया। तथापि कर्ण में महान् वीरों का-सा शौर्य और पराक्रम विद्यमान था। प्रस्तुत सर्ग में गुरु द्रोणाचार्य के समक्ष कौरव और पांडव कुमारों का शस्त्रास्त्र प्रदर्शन हो रहा था। सभी राजकुमार अपने-अपने करतब दिखा रहे थे और अर्जुन के शस्त्र-चालन को देखकर दर्शकगण मंत्रमुग्ध हो रहे थे। इसी बीच कर्ण वहां उपस्थित हो गया। उसने जब अपने शस्त्र-चालन के अनोखे करतब दिखलाए तो अर्जुन अपने को कुछ हीन समझने लगा। कर्ण ने अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिए आमन्त्रित किया किन्तु गुरु द्रोणाचार्य ने स्थिति को समझा और बहुत समझदारी और विवेक के साथ कार्य किया। उन्होंने कहा कि अर्जुन राजपुत्र है अतः उसके साथ द्वन्द्व-युद्ध करने वाला व्यक्ति भी राजपुत्र होना चाहिए। इस अप्रत्याशित हस्तक्षेप के कारण कर्ण निरुत्तर हो गया। गुरु कृपाचार्य ने कर्ण से उसकी जाति और कुल सम्बन्धी प्रश्न पूछे। कर्ण का अन्तर्मन कराह उठा और फिर उसने कृपाचार्य को कहा कि—"हे गुरु कृपाचार्य, कुल और जाति के आधार पर व्यक्ति का मूल्य आंकना उसके प्रति अन्याय करना होता है। चरित्र बल ही सबसे बड़ा बल है।" स्वयं कर्ण के ही शब्दों में :

"पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समान दीपित ललाट से, और कवच-कुण्डल से
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।"

× × ×

अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है तो आगे वह आये
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।

अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर-कमान,
अपनी महाजाति की दूंगा मैं तुमको पहचान।"

किन्तु इस सबका कृपाचार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने अपने इस निर्णय को दोहराया कि अर्जुन से लड़ने के लिए कर्ण का राजपुत्र होना आवश्यक है।

दुर्योधन और पाण्डवों में शत्रुता थी। अतः उसने इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए कर्ण को तत्काल अंग देश का राजा बना दिया और दुर्योधन के इस कृपापूर्ण व्यवहार को कर्ण आजीवन नहीं भुला सका। सभी उपस्थित जन-समूह पराक्रमी कर्ण की जय-जयकार कर उठा। सभा विसर्जित हो गई और गुरु द्रोण के मन में कर्ण की वीरता और पराक्रम की गहरी छाप पड़ गई, किन्तु वे किसी भी स्थिति में अर्जुन की पराजय नहीं देखना चाहते थे। कौरव राजपुत्र कर्ण के सम्मानहित शंखवादन करते हुए चले गए। उधर भगवान् सूर्य अपने इस पुत्र के गौरव और मान-प्रतिष्ठा को चाव से निहार रहे थे। तब रनिवास की महिलाएं भी राजभवन को वापिस चल दीं। कर्ण की माता कुन्ती भी इन्हीं महिलाओं में से एक थी। उसके समक्ष 'दांव हार जाने' की-सी व्यथा उपस्थित थी क्योंकि कर्ण और अर्जुन की परस्पर प्रति-द्वन्द्विता अब स्वतः स्पष्ट हो चुकी थी। एक अंधकारपूर्ण भविष्य को देखकर कुन्ती स्वयं अपनी ही व्यथा के भार से दबी हुई चल रही थी। कवि दिनकर ने इस करुण दृश्य का अत्यन्त मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है :

'और, हाय, रनिवास चला वापस जब राजभवन को,
सबके पीछे चली एक विकला मसोसती मन को।
उजड़ गये हों स्वप्न कि जैसे हार गयी हो दांव,
नहीं उठाये भी उठ पाते थे कुन्ती के पांव।'

जय हो .... शक्ति का मूल।

शब्दार्थ – पुनीत = पवित्र। अनल = अग्नि। वृन्त = डाली। विपिन = जंगल। नमस्य = पूजा करने योग्य। सुधी = विवेकशील।

व्याख्या – यह पद इस खण्डकाव्य के मंगलाचरण के रूप में समझा जा सकता है। पवित्र अग्नि की वन्दना करते हुए कवि कहता है कि संसार में जहां कहीं भी अग्नि जलती हो, उसकी मैं वन्दना करता हूं। ठीक उसी प्रकार तेज और बल किसी भी व्यक्ति में हो, नमस्य और वन्दनीय है। कवि यही सिद्ध करने को आतुर है कि तेज और बल जिस व्यक्ति में भी हो, वन्दनीय है। कवि कहता है कि फूल चाहे किसी भी डाली पर खिले, किन्तु वह सदैव नमस्य होता है। कवि कहता है कि विवेकशील व्यक्ति, व्यक्ति की नहीं, उसके गुणों की वन्दना करता है। वह तो केवल गुणों का ग्राहक होता है, गुणों के मूल अथवा शक्ति के उद्गम से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता।

विशेष—(१) इस पद में मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह किया गया है जोकि शास्त्रसम्मत है। तेज और अग्नि की वन्दना करके ही कवि ने नायक कर्ण की वन्दना की है।

(२) जाति, कुल और गोत्र आदि के भेदों-उपभेदों पर कवि ने मानवीय गुणों की सफल प्रतिष्ठा की है।

(३) कवि ने 'अनल' को तेज का, 'वृन्त' को वंश अथवा कुल का और 'फूल' को कर्ण के रूप में अभिव्यक्त किया है।

ऊंच-नीच का भेद........................हो जिसमें तप-त्याग।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने ऊंच-नीच आदि भेदों की भर्त्सना करते हुए दया और धर्म को मानव का श्रेय सिद्ध किया है। कवि कहता है कि इस संसार में सर्वाधिक ज्ञानी व्यक्ति वही होता है जोकि ऊंच-नीच के भेदों को स्वीकार नहीं करता। वस्तुतः वही व्यक्ति पूज्य है जिसमें दया और धर्म का वास हो। मनुष्य के व्यक्तित्व की एकमात्र कसौटी उसके भीतर व्याप्त दया और धर्म की उदात्त भावनाएं होती हैं। प्रत्यक्षतः दीखने वाले ऊंच-नीच के भेद मिथ्या हैं। दूसरे शब्दों में मनुष्य की जाति का निर्धारण उसके गुण-कर्म के अनुसार होना चाहिए, उसके जन्म अथवा वंश परम्परा के अनुसार नहीं। कवि अपनी इसी धारण को प्रतिष्ठित करते हुए कहता है कि क्षत्रिय वही होता है जिसके भीतर निर्भीकता और साहस की पवित्र अग्नि उद्‌भासित होती हो। इसी प्रकार वास्तविक ब्राह्मण वह नहीं होता जो ब्राह्मण वंश में जन्म ले लेता है बल्कि सही अर्थों में ब्राह्मण वह होता है जिसमें ब्राह्मणोचित गुण-कर्म होते हैं, जिसमें तप और त्याग की पावनी सरिता प्रवाहमान हो। कवि ने इस पद में ब्राह्मणों और क्षत्रियों की नितान्त नई परिभाषा प्रस्तुत की है जोकि बदलते हुए सामाजिक और नैतिक मूल्यों के सर्वथा अनुकूल बन पड़ी है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने एक नितान्त नई मानवतावादी दृष्टि का परिचय देते हुए हिन्दू जाति में व्याप्त जाति और वर्गगत भेदों, ऊंच-नीच की संकुचित भावनाओं पर करारी चोट की है।

तेजस्वी सम्मान खोजते..................इतिहासों में लीक।

शब्दार्थ—प्रशस्ति=सम्मान। हीन=निकृष्ट। मूल=वंश।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि दिनकर पुनः अपनी इसी धारणा की पुनरावृत्ति करते हैं कि मनुष्य की वास्तविक जाति उसके कर्म तथा गुण होते हैं। कवि कहता है कि जो वस्तुतः तेजस्वी और पराक्रमी होता है उसके लिए अपना गोत्र और वंश बताना आवश्यक नहीं होता है। उसका वास्तविक गोत्र, उसकी जाति उसका पराक्रम और शौर्य होता है और यही कारण है कि संसार

में उन्हें जो प्रशस्ति मिलती है, वह उनके गोत्र-कुल के आधार पर नहीं बल्कि उनके तेज-बलयुक्त पराक्रम के आधार पर मिलती है। उनके कार्य ही उनकी प्रशस्ति का कारण होते हैं। कवि कहता है कि संसार में कुछ ऐसे वीर, पराक्रमी भी हुए हैं जिनका जन्म किसी नीच वंश में हुआ था किन्तु उन्होंने अपनी वीरता के बल पर देश के इतिहास में कुछ नये पृष्ठ अवश्य जोड़े हैं और यही कारण है कि आज भी इतिहास में उनका महत्व अक्षुण्ण बना हुआ है। संसार ने भले ही उन्हें अच्छा या बुरा कहकर पुकारा हो किन्तु इतिहास में उन्हें सदैव वीरोचित सम्मान और आदर प्राप्त होता रहेगा।

जिसके पिता सूर्य थे.........................तब भी अद्भुत वीर।

शब्दार्थ—पलना=पालना। क्षीर=दूध।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने यही सिद्ध किया है कि जन्म के वंश और कर्मों के मध्य अनिवार्यतः कोई सामंजस्य नहीं होता। मनुष्य उच्च-कुलोत्पन्न होकर भी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण दुर्भाग्य का अधिकारी होता है। बालक कर्ण भी सूर्य-वंश में जन्मा था और जन्म देने वाली मां कुन्ती ने एक कुमारी होते हुए उसे जन्म दिया था और लोकलाज के भय के कारण सूर्य-वंश का यह बालक कर्ण अपनी मां की ममता और स्नेह से वंचित रहा। मां ने इस अवांछित बालक को एक मंजूषा में बन्द करके नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया। अतः इस भाग्यहीन बालक का पालना बहती धारा में प्रवाहित की गई वही मंजूषा सिद्ध हुई। कहते हैं कि बाद में अधिरथ नामक एक सूत ने वह मंजूषा निकाल ली और इस निरीह बालक को अपने घर ले गया। बालक कर्ण का लालन-पालन सूत वंश में हुआ। उसके दुर्भाग्य की चरम सीमा यह थी कि कुन्ती का पुत्र होते हुए भी वह अपनी मां के दूध का पान नहीं कर सका। इस सबके होते हुए भी यह एक सिद्ध तथ्य है कि कर्ण अपने समकालीन सभी युवकों में सर्वाधिक पराक्रमी और वीर सिद्ध हुआ। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी कर्ण का तेज और पराक्रम खण्डित नहीं हुआ।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के जन्म की दुःखद कथा का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

(२) व्यक्तित्व-निर्माण में परिस्थितियों का भी भरा-पूरा हाथ होता है—कवि ने यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

तन से समरशूर.........................आप स्वयं सुविकास।

शब्दार्थ— समर शूर =योद्धा। सम्यक्=पूर्णरूपेण।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के व्यक्तित्व की कतिपय महत्वपूर्ण रेखाएं उद्‌घाटित की हैं। कर्ण के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसने नितान्त प्रतिकूल परिस्थितियों में अपने व्यक्तित्व का समुचित

विकास किया । निस्संदेह यह बात उसके कर्मठ और दृढ़ चरित्र की परिचायक है । कर्ण के व्यक्तित्व का परिचय देते हुए कवि कहता है कि वह शरीर से एक महान् योद्धा, मन से अत्यन्त भावुक और स्वभाव से एक महान् दानी था । यह सच है कि उसके पास गोत्र और जाति को लेकर गौरव अथवा मान करने को कुछ भी तो नहीं था किन्तु उसके पास शील और पौरुष का अमित कोष अवश्य था और वह अपनी इस पूंजी का अभिमान करता था । कर्ण ने अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वयं अपने हाथों किया था और यही कारण है कि उसके भीतर शील और पौरुष के उदात्त भाव सदा हिलोरें मारते थे । इतनी प्रतिकूल परिस्थितियों में कर्ण ने स्वयं ही शास्त्रों और शस्त्रों का सर्वांगीण अभ्यास किया । उसने स्वयं ही अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए नए-नए सोपानों का परिचय दिया ।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के दृढ़चेता चरित्र का भरा-पूरा परिचय प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि पौरुष और पराक्रम प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उद्घाटित हुए बिना नहीं रहते । बल्कि सच तो यह है कि मनुष्य के भीतर प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी राह बनाने के दृढ़ संकल्प के कारण उसके व्यक्तित्व में अन्य सद्गुणों के साथ-साथ अपूर्व आत्मविश्वास का भी उदय होता है । कर्ण के व्यक्तित्व में अपराजेय आत्मविश्वास आद्योपान्त छलकता है ।

अलग नगर.................................आंखों से दूर ।

शब्दार्थ—पुरी=नगर । पुरजन=नगरवासी । निरत=लीन । वन्य-कुसुम=जंगल का फूल ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण की एकान्त साधना का परिचय दिया है । कवि कहता है कि उद्योगी और कठिन साधक कर्ण, नगर और नगरवासियों की हलचल से बहुत दूर अपने तन और मन को साध रहा था । अत्यन्त उद्यमशील कर्ण कठिन साधना में लीन होकर शरीर को साध रहा था और मन को संयम का पाठ सिखला रहा था । वह तो कठिन समाधि में लीन होकर सदैव कर्मठता में खोया रहता था । जंगल के पुष्प की भांति ही कर्ण, किसी भी गुरु अथवा संरक्षक के बिना ही प्रगति के कठिन पथ पर चलता रहा । संसार के कोलाहल से बहुत दूर रहकर कर्ण ने अपने व्यक्तित्व का विकास किया ।

नहीं फूलते कुसुम.................................बड़े कीमती लाल ।

शब्दार्थ—अमित=असंख्य । कुंज-कानन=जंगल ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति के एक गहन रहस्य की ओर संकेत करते हुए नायक कर्ण के चरित्र विकास की आधार-भूमि भी तैयार की है । कवि कहता है कि प्रकृति के कुसुम केवल राजाओं की उन

वाटिकाओं-उपवनों में ही नहीं खिलते जहां बहुविध देखभाल होती है बल्कि नगर के कोलाहल से बहुत दूर जंगलों में भी (जहां देखभाल के नाम पर केवल प्रकृति ही होती है) कई-कई बार पुष्प खिलते हैं। प्रकृति की यह गहन गुत्थी कौन समझ सकता है? यह प्रकृति का गहन रहस्य ही तो है कि कई बार गुदड़ी में बहुमूल्य लाल छिपे दीखते हैं। इन पंक्तियों में कवि नायक कर्ण के व्यक्तित्व के विकास की ओर भी संकेत करता है. क्योंकि कर्ण के चरित्र का विकास भी राजाओं के ऐश्वर्य और सुख-सुविधासम्पन्न महलों में नहीं अपितु नगरों से बहुत दूर कठिन साधना, तप और त्याग की अग्नि में तपकर हुआ है। इसलिए कवि ने कर्ण को परोक्षतः 'गुदड़ी के लाल' विशेषण से विभूषित किया है क्योंकि कर्ण समुचित सुविधाओं के अभाव में भी एक अत्यधिक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व का विकास करने में सफल हो सका था।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति के एक गहन रहस्य का उल्लेख करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रतिभा का विकास केवल राजभवनों में ही नहीं अपितु दूर निर्जन प्रदेश में (जहां सामान्य सुख-सुविधाओं का भी पूर्ण अभाव होता है) भी होता है। प्रतिभा की चमक दबाए नहीं दबती।

(२) 'गुदड़ी के लाल' मुहावरे का प्रयोग करके कवि ने कर्ण के व्यक्तित्व को अभीष्ट सम्मान का पात्र बनाया है और उसके चरित्र-विकास के लिए उपयुक्त आधार-भूमि भी तैयार कर दी है।

जलद पटल में.................................पौरुष की पहली आग।

शब्दार्थ जलद-पटल = बादलों का घेरा। शूरमा = वीर। समक्ष = सामने।

व्याख्या—इन पंक्तियों के साथ कवि ने 'रश्मिरथी' नामक काव्य की कथावस्तु का समारम्भ किया है। कवि कहता है कि वास्तविक पौरुष और प्रतिभा कृत्रिम आवरणों से सदा-सदा के लिए आच्छादित नहीं रखे जा सकते। सूर्य भी कुछ समय के लिए तो बादलों की ओट में छिपा रह सकता है किन्तु अन्ततः बादलों की वज्र-परिधि भी उसकी चमक एवं चकाचौंध के समक्ष नतमस्तक हो जाती है। अन्ततः बादलों की ओट छिपा सूर्य बाहर निकल आता है। इसी प्रकार कोई भी वीर कब तक संसार की अवहेलनापूर्ण दृष्टि को सहन कर सकता है। कवि का संकेत स्पष्टतः महापराक्रमी वीर कर्ण की ओर है। कवि कहता है कि यह तो ठीक है कि संसार और समाज ने मिलकर कर्ण की प्रतिभा और पौरुष को उद्घटित होने से रोके रखा किन्तु ऐसा अनन्त-काल तक सम्भव नहीं हो सकता था। उपयुक्त अवसर पाते ही एक दिन कर्ण का स्वाभिमान जाग उठा, सोई हुई जवानी उबाल ले उठी और इस प्रकार सबके समक्ष महावीर पराक्रमी कर्ण का पौरुष

और प्रतिभा साकार हो गए। कर्ण ने पहली बार ही अपने महान् पौरुष का परिचय दिया था।

रंगभूमि में अर्जुन..........................क्षण में होता है धूल।

शब्दार्थ—समां =दृश्य। सुयस =सम्मान।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कथावस्तु और आगे बढ़ती है। गुरु द्रोणाचार्य रंगभूमि में कौरवों एवं पांडवों को शस्त्र-शिक्षा दे रहे हैं और सभी दर्शक अर्जुन के शस्त्र-कौशल प्रदर्शन को देखकर मंत्रमुग्ध हुए जा रहे हैं। उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस समय रंगभूमि में अर्जुन खूब चमक रहा था। उसी घड़ी कर्ण अपना धनुष साधे हुए रंगभूमि में आ गया और बोला, "हे अर्जुन, तू इस जनसमूह के साधुवाद के कारण गर्व में मत फूल। अभी एक क्षण में ही मैं तेरा सारा सम्मान धूल में मिला सकता हूं।"

तूने जो जो किया..........................नर को धिक्कार।

शब्दार्थ—सुयस =सम्मान।

व्याख्या—कर्ण अपना कथन पूरा करते हुए कहता है कि "हे अर्जुन, शस्त्र-चालन के जो-जो करतब तुमने दिखलाये हैं, वे तो मैं दिखला ही सकता हूं, उसके अतिरिक्त भी मैं कुछ नई कलाएं दिखा सकता हूं। हे अर्जुन, अब तू मेरे हाथों का कमाल देख। सस्ते सम्मान के सहारे जीने वाले व्यक्ति को धिक्कार है।" इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के अपराजेय आत्मविश्वास से युक्त व्यक्तित्व का परिचय दिया है। कवि ने इन पंक्तियों में कर्ण के चरित्र को विकासोन्मुखी दिशा प्रदान की है और सस्ते यश के बल पर जीने वाले अर्जुन को ललकारा है।

इस प्रकार कह लगा..........................धन्वा की टंकार।

शब्दार्थ—चतुर्दिक =चारों दिशाएं। मात्र =केवल। धन्वा =धनुष।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि महावीर कर्ण के शस्त्र-ज्ञान का परिचय देते हुए कहता है कि जब कर्ण रंगभूमि में नाना प्रकार की युद्ध-कलाएं दिखाने लगा, तो वहां उपस्थित सारा जन-समूह स्तब्ध रह गया और एकटक कर्ण के करतब देखने लगा। सारे दर्शकों का समूह मंत्रमुग्ध हो गया और चारों ओर मौन छा गया। सर्वत्र मौन छाया हुआ था। केवल कर्ण के धनुष की टंकार की ध्वनि सुनाई दे रही थी।

फिरा कर्ण..........................वीर शाबाश।

शब्दार्थ—साधु-साधु =वाह-वाह। सकल =सभी।

व्याख्या—कर्ण के रण-कौशल के प्रदर्शन का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब कर्ण अपने इस कौशल का प्रदर्शन करते हुए मुड़ा, सभी नर-नारी वाह-वाह कर उठे। दर्शकों ने मुक्तकण्ठ से कर्ण के युद्ध-कौशल-प्रदर्शन की

प्रशंसा की और इसका परिणाम यह हुआ कि रंगभूमि में उपस्थित राजबंश के नेताओं में खलबली मच गई। राजवंश के महारथियों में उदासी छा गई। गुरु द्रोणाचार्य सहित, भीष्म, अर्जुन आदि सभी चिन्तित हो गये। केवल दुर्योधन ने आगे बढ़कर मुक्तकण्ठ से कर्ण की वीरता की सराहना की।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने दुर्योधन के चरित्र का उद्घाटन करके उसके भावी रूप के लिए उपयुक्त आधारभूमि तैयार की है। इस प्रकार कर्ण के रण-कौशल की प्रशंसा करके कर्ण और दुर्योधन के मध्य एक कभी न समाप्त होने वाली मैत्री का समारम्भ देखा जा सकता है।

द्वन्द्व युद्ध के लिए ....अर्जुन है सन्तान।

शब्दार्थ—द्वन्द्व-युद्ध = बिना हथियारों की लड़ाई। पार्थ = अर्जुन।

व्याख्या—दर्शकों के साधुवाद से उत्साहित होकर कर्ण ने अर्जुन को द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा किन्तु इसी समय कृपाचार्य ने अर्जुन को मौन रहने का संकेत किया। कृपाचार्य ने कर्ण को टोकते हुए कहा कि, "हे वीर अपरिचित युवक, मेरी बात सुनो। यह अर्जुन भरतवंश के आर्य पाण्डु की सन्तान है।"

क्षत्रिय है ....तुम जाति हो कौन।

शब्दार्थ—राजपुत्र = राजकुमार। नाम धाम = नाम-ठिकाना।

व्याख्या—गुरु कृपाचार्य अपने कथन को पूरा करते हुए कहते हैं कि, "यह अर्जुन क्षत्रिय वंश का राजपुत्र है इसलिए यह हर व्यक्ति के साथ द्वन्द्व-युद्ध नहीं कर सकता। हे कर्ण, यदि तुमने वास्तव में अर्जुन से द्वन्द्व-युद्ध करना ही है तो आप अपना मौन भंग करो, अपना नाम-धाम तथा अपनी जाति बताओ।" दूसरे शब्दों, में कृपाचार्य के अनुसार अर्जुन के साथ वही व्यक्ति द्वन्द्व-युद्ध कर सकता था जोकि राजवंश का और क्षत्रिय जाति का हो।

जाति ! हाय री जाति ....ये मेरे भुजदण्ड।

शब्दार्थ—कुपित = क्रोध में। पाषंड = पाखंड। भुजदण्ड = भुजाएं।

व्याख्या—जाति के प्रश्न पर कर्ण का हृदय क्षुब्ध हो उठा। उसका अन्तर्मन चीख उठा, क्योंकि इस दृष्टि से उसका पक्ष अत्यन्त दुर्बल था। कर्ण ने क्रोध के साथ सूर्य को देखा (क्योंकि वस्तुतः कर्ण सूर्य की ही सन्तान थी।) और बोला—"जाति की दुहाई तो वे लोग देते हैं जिनकी एकमात्र पूंजी पाखण्ड होती है।" कर्ण कहता है कि—"मैं जाति-पांति कुछ नहीं जानता, मेरी जाति तो मेरी ये भुजाएं हैं।"

विशेष (१) इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के जन्म की ओर भी संकेत कर दिया है।

(२) "वीरों की जाति उनकी वीरता एवं पराक्रम होता है"—इन पंक्तियों में इसी सिद्धांत की पुष्टि होती है।

ऊपर सिर पर .... जाओ मत मौन।

शब्दार्थ—कनकछत्र = सोने का छत्र।

व्याख्या—कर्ण अपनी बात पूरी करते हुए कहता है कि—"जाति की बात वही लोग पूछते हैं जिनके सिर पर राजस्व का प्रतीक स्वर्ण-मुकुट विद्यमान होता है।" कर्ण कहता है कि "इस प्रकार का स्वर्ण-मुकुट धारण करने वाले राजा-गण मन से अत्यन्त कुटिल और काले होते हैं। उन्हें अपने कुकृत्यों एवं अन्याय पर किसी प्रकार की लज्जा की अनुभूति नहीं होती। ऐसे लोग ही दूसरों की जाति पूछते हैं।" कर्ण अपनी जाति का परिचय देते हुए कहता है कि—"मैं तो सूतपुत्र हूं, किन्तु यह तो बताइये कि अर्जुन के पिता कौन थे। यदि साहस हो तो मेरे प्रश्न का उत्तर दो और ग्लानि से चुप मत रहो।" यहां कर्ण का प्रश्न बहुत कुछ प्रतिक्रियात्मक ढंग का है।

मस्तक ऊंचा किये .... अंगूठे का दान।

शब्दार्थ—अधम = नीच। छल-से = धोखे से। अंगूठे का दान = यह एक प्रासंगिक कथा है जो इस प्रकार है—कहते हैं जंगली जाति का एकलव्य नामक युवक धनुर्विद्या सीखने के लिए गुरु द्रोणाचार्य की सेवा में गया। गुरुजी ने, एकलव्य के जंगली जाति का युवक होने के कारण शिक्षा देने से मना कर दिया। निराश होकर एकलव्य ने जंगल में गुरुजी की मूर्ति स्थापित की और धनुर्विद्या सीखने लगा। धीरे-धीरे वह धनुर्विद्या में पूर्ण निष्णात हो गया। एक दिन गुरु द्रोणाचार्य अपने शिष्यों सहित उसी जंगल में आ पहुंचे। उनके साथ एक कुत्ता भी था। वह कुत्ता एकलव्य के पास जा पहुंचा और जोर-जोर से भौंकने लगा। एकलव्य ने ऐसे बाण मारे कि कुत्ते के मुख में घुस गये और निरन्तर बाणों के आक्रमण से कुत्ते की बोली बन्द हो गई। गुरु द्रोण चकित हो गए और उन्होंने इस विचित्र धनुर्धारी की खोज की। जब उन्हें पता लगा कि एकलव्य ही वह धनुर्धारी है तो उनका मुखमण्डल मलीन हो गया क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि धनुर्विद्या में कोई भी व्यक्ति अर्जुन को पराजित कर सके। गुरु द्रोण एकलव्य के पास पहुंचे तो एकलव्य ने सारी कथा वर्णित की और गुरुदक्षिणा देनी चाही। गुरुजी ने अपने कुत्सित लक्ष्य की पूर्ति के लिए एकलव्य के हाथ का अंगूठा मांग लिया जो उसने सहर्ष दे दिया। इन पंक्तियों में इसी कथा की ओर संकेत किया गया है।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण, कृपाचार्य आदि पर व्यंग्य-बाणों की बौछार करते हुए कहता है कि—"आप लोग अपनी उच्च जाति के गौरव के कारण मस्तक ऊंचा किए घूमते हो, अपनी ऊंची जाति का अभिमान करते हो किन्तु वास्तविकता यह है कि आपके जीवन का एकमात्र आधार अधर्ममय शोषण की प्रवृत्ति है। तुम्हारे भीतर वास्तविक पौरुष और पराक्रम नहीं है।

केवल उच्चकुल के वंशज होने के कारण ही तुम अपना मस्तक ऊंचा किए हुए हो। नीची जातियों के पराक्रम और शौर्य से तुम थर-थर कांपते हो।" यहां कर्ण का संकेत जंगली जाति के युवा एकलव्य की ओर है जिनकी धनुर्विद्या के प्रदर्शन से गुरु द्रोणाचार्य भयग्रस्त हो गए थे और गुरु-दक्षिणा में उसके हाथ का अंगूठा लेकर अपने कुत्सित लक्ष्यों की पूर्ति की थी। कर्ण कहता है— "उन्हीं के भय के कारण तुम्हारे प्राण थर-थर कांपते हैं, तभी तो तुमने उसके हाथ के अंगूठे का दान ले लिया था।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के मुख से कटु यथार्थ का वर्णन करवाया है और यह बताया है कि उच्चकुलोत्पन्न तथा कथित महान् कहलाने वाले व्यक्ति भी अपने कुत्सित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अन्याय करने में नहीं हिचकते।

पूछो मेरी जाति ....है मेरा इतिहास।

शब्दार्थ—दीपित=चमकते हुए। ललाट=मस्तक।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कर्ण अपना कथन जारी रखते हुए कहता है कि—"यदि आपको मेरी जाति और वंश का परिचय प्राप्त करना है तो मेरे भुजबल से पूछो। यदि तुममें शक्ति है तो मेरी जाति के सम्बन्ध में मेरे सूर्य की तरह चमकते हुए मस्तक और मेरे इन कवच कुण्डलों से मेरी जाति के बारे में पूछो। यदि तुममें शक्ति है तो मेरे भीतर जो तेज और पराक्रम का प्रकाश झलक रहा है, उससे मेरा परिचय प्राप्त करो। मेरा इतिहास तो मेरे रोम-रोम में लिखा हुआ है किन्तु उसे पढ़ने के लिए वास्तविक पौरुष और वीरता की अपेक्षा है।" इन पंक्तियों में कवि ने अपनी उसी धारणा की पुनः प्रतिष्ठा की है कि व्यक्ति का परिचय उसका बल और पराक्रम होता है। उसकी जाति, वंश और गोत्र—ये सभी बातें गौण हैं, कितनी शारीरिक क्षमता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने पुनः यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि जाति और वंश की परम्परा का अभिमान मिथ्या है। कृपाचार्य के ऊपर कर्ण के व्यंग्य-बाणों की बौछार इसी तथ्य का प्रतीक है कि शक्ति और पराक्रम किसी ऊंचे वंश की ही धरोहर नहीं होते।

अर्जुन बड़ा वीर.............................मैं तुमको पहचान।

शब्दार्थ—महाजाति=महान् अर्थात् वीरों की जाति।

व्याख्या—अर्जुन को ललकारते हुए कर्ण पुनः कहता है कि यदि अर्जुन वस्तुतः क्षत्रिय वीर है तो उसे सामने आकर अपने क्षत्रियत्व का परिचय देना चाहिए। कर्ण कहता है कि—"मैं अभी इस राजपुत्र अर्जुन के हाथ से तीर-कमान छीनकर अपनी महान् जाति अर्थात् वीरों और पौरुषवान व्यक्तियों की जाति का परिचय दे दूंगा।" कर्ण का आशय यह है कि वह एक क्षण में

ही अपने वीरत्व का परिचय दे सकता है और अर्जुन के थोथे अभिमान को खंडित कर सकता है।

कृपाचार्य ने कहा.............................पहले कोई राज।

शब्दार्थ—वृथा = बिना कारण। अकाज = बुरा। अर्जित करना = प्राप्त करना।

कर्ण हतप्रभ.............................सचमुच सूर्य के समान।

व्याख्या—कर्ण और अर्जुन के मध्य इस अप्रिय वाग्युद्ध को शान्त करने की दृष्टि से कृपाचार्य ने कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहा—"कर्ण, जाति विषयक पूछने पर, तुम व्यर्थ ही क्रुद्ध हुए जाते हो। एक साधारण-सी बात भी तुम नहीं समझ रहे हो। यदि तुम वस्तुतः राजपुत्र अर्जुन से लड़ने के इच्छुक हो तो तुम्हें भी किसी प्रदेश का राजा होना चाहिए अर्थात् राजपुत्र के साथ राजपुत्र ही लड़ सकता है।"

शब्दार्थ—हतप्रभ = निस्तेज, कान्तिहीन। दीप = चमक।

व्याख्या—अर्जुन के साथ लड़ने के लिए कृपाचार्य द्वारा बताई गई शर्त सुनकर कर्ण निस्तेज हो गया, क्योंकि वह तो राजपुत्र था नहीं और न तत्क्षण राजपुत्र हो जाने की आशा ही की जा सकती थी। इसी घड़ी दुर्योधन सामने आता है। उससे पाण्डवों का यह अन्याय सहन नहीं हुआ और वह आगे बढ़कर बोला कि सूर्य की दीप्ति की तरह चमकने वाले वीर पुरुष कर्ण का इस प्रकार अपमान करना पाप-तुल्य है।

मूल जानना.............................कायर क्रूर।

शब्दार्थ—मूल = वंश। भूतल = पृथ्वी।

व्याख्या कर्ण की बहुमुखी प्रतिभा के पक्ष में अपनी बात पूरी करते हुए दुर्योधन कहता है कि—"नदियों और वीरों का वंश अथवा जन्म नहीं ढूंढा जा सकता। जो वस्तुतः वीर और पराक्रमी होते हैं उनका एकमात्र गोत्र उनकी वीरता का द्योतक उनका धनुष-बाण होता है। वही उनकी जाति और वही उनका वंश होता है। जो लोग वस्तुतः पराक्रमी और शौर्यवान होते हैं वे अपने तपोबल के कारण ही पृथ्वी पर सम्मान और यश पाते हैं। इसके विपरीत जो कायर और निर्बल होते हैं, वे केवल अपनी उच्च वंश-परम्पराओं की ही दुहाई दिया करते हैं क्योंकि उनकी एकमात्र पूंजी उनकी उच्चवंश-परम्परा होती है।"

किसने देखा नहीं.............................हैं सारे राजकुमार।

शब्दार्थ – अनायास = अचानक। आतंक = भय।

व्याख्या—दुर्योधन आगे यह और कहता है कि जब कर्ण भीड़ से निकलकर आया था, तब किसने नहीं देखा कि सारी सभा में अचानक ही एक भय का वातावरण छा गया था। कर्ण भले ही सूतपुत्र अथवा डोम अथवा चमार

वंश का हो किन्तु वास्तविकता यह है कि उसके शौर्य-प्रदर्शन के सम्मुख सभी राजकुमार फीके और निस्तेज हो गए थे। इन पंक्तियों में दुर्योधन यही कहता है कि भले ही कर्ण किसी उच्चकुल में न जन्मा हो किन्तु इतना निश्चित है कि उसके पराक्रम और शौर्य के समक्ष सभी राजपुत्रों का अभिमान चूर-चूर हो चुका है। उसके तेज-प्रकाश के सामने सभी राजपुत्र निस्तेज और फीके दीखते हैं।

करना क्या अपमान············ ·····सुने सकल संसार।

शब्दार्थ—विभूति=अमूल्य निधि।

व्याख्या—दुर्योधन कहता है कि जो कर्ण इतना वीर और शौर्यवान है क्या उसका अपमान करना उचित है। यह कर्ण तो मानवता की एक बहुमूल्य निधि है और इस संसार की एक अमूल्य सम्पत्ति है। फिर भी, यदि कर्ण को राजपुत्र न होने के कारण अर्जुन से युद्ध करने का अधिकार प्राप्त नहीं है तो सारा संसार मेरी यह घोषणा सुने।

अंगदेश का मुकुट······························का जय-जयकार।

शब्दार्थ—इन पंक्तियों में दुर्योधन के चरित्र का वास्तविक रूप उद्घाटित हुआ है। मानवीय गुणों और प्रतिभा का गुणी दुर्योधन घोषणा करता है कि "यदि कर्ण केवल राजपुत्र होकर ही अर्जुन से लड़ने का अधिकारी हो सकता है तो मैं अभी ही कर्ण को अंगदेश का राज्य समर्पित करता हूं। इस महान् वीर के लिए अंगदेश का राज्य समर्पित है।" यह कहकर दुर्योधन ने अंगदेश के राज्य के प्रतीक-स्वरूप कर्ण को मुकुट पहना दिया और तब सारी रंगभूमि में दुर्योधन की जय-जयकार गूंज उठी। ऐसी कठिन घड़ी में दुर्योधन का यह राज्यार्पण कर्ण और दुर्योधन की कभी न समाप्त होने वाली मैत्री का कारण सिद्ध हुआ।

विशेष—कथावस्तु की दृष्टि से ये पंक्तियां अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि दुर्योधन की यह अप्रत्याशित कृपा कर्ण के लिए एक महान् वरदान सिद्ध हुई।

कर्ण चकित रह······················ क्यों होता उद्भ्रान्त।

शब्दार्थ—क्षुद्रोपहार=छोटा-सा उपहार। उद्भ्रान्त=परेशान।

व्याख्या—दुर्योधन की इस महान् कृपा के कारण कर्ण आश्चर्यचकित हो गया। उसका रोम-रोम कृतज्ञता के भार से दब गया। दुर्योधन ने तत्काल कर्ण को भुजाओं में बांधकर कहा "हे भाई कर्ण, शान्त हो। मैंने तो कोई विशेष कृपा नहीं की। मैंने तो एक अत्यन्त छोटा-सा उपहार आपको दिया है, फिर आप अपने आपको इतने कृतज्ञता-भार से दबा हुआ क्यों अनुभव कर रहे हैं।"

किया कौन-सा त्याग························एक प्राण, दो देह।

व्याख्या - दुर्योधन बोला—"हे कर्ण, मैंने तुम्हें कोई अनोखा उपहार नहीं दिया है। यदि तुझ जैसे पराक्रमी और चरित्र-बल के धनी व्यक्ति के लिए मेरे प्राण भी काम आ जाएं, तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।" दुर्योधन के इन उदार शब्दों को सुनकर कर्ण कृतज्ञता के भार से और अधिक दब गया और बोला—"मुझ जैसे व्यक्ति पर भी तुम्हारा यह अपार स्नेह साधारण बात नहीं है। यहां तो मुझे कोई भी व्यक्ति नहीं पूछ रहा था। सभी राजपुत्र मेरी जाति और वंश के बारे में पूछकर मुझे अपमानित कर रहे थे। ऐसी कठिन घड़ी में तुम्हारी यह उदारता अविस्मरणीय है। आज से मैं और तुम, एक प्राण दो शरीर के रूप में बंध गये हैं।"

भरी सभा के बीच.........................तेरे कोई काम।

शब्दार्थ—मान = सम्मान। दिनमान = सूर्य।

व्याख्या—दुर्योधन के इन उदार शब्दों के प्रति अपना कृतज्ञता भार प्रकट करते हुए कर्ण कहता है कि—"हे दुर्योधन, आज इस भरी सभा में तुमने मुझे जो सम्मान दिया है और मेरे उपेक्षित जीवन में पहली बार आदरपूर्ण स्थिति प्रदान की है, उससे मैं कुछ भी देकर उऋण नहीं हो सकूंगा। तुम्हारी इस उदारता से मैं जीवन भर उऋण नहीं हो सकूंगा। मेरी तो यही प्रार्थना है कि भगवान् सूर्य कृपा करें और मैं तुम्हारे किसी काम आ सकूं। यदि मेरा यह जीवन भी तुम्हारे कार्य आ सका, तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण के चरित्र को और अधिक विकासमान बनाया गया है। इन पंक्तियों में कर्ण के कृतज्ञतापूर्ण व्यक्तित्व का भरा-पूरा परिचय मिलता है।

घेर खड़े हो गये.........................पर लेती पहचान।

शब्दार्थ मुदित = प्रसन्न। पुरवासी = नगरवासी। आराध्य = आराधना योग्य।

व्याख्या—कर्ण के इस अप्रत्याशित अभिवादन को देखकर नगरवासी प्रसन्न हो गये और उन्होंने अंगदेश के राजा कर्ण को घेर लिया। कवि कहता है कि जन-समाज सदा-सदा से वीरों की पूजा करने का इच्छुक रहा है। आप इसे द्वेष, ईर्ष्या, मिथ्या-अभिमान कुछ भी कह सकते हैं किन्तु जन-समाज अपने आराध्य वीर को पहचानने में कभी भी भूल नहीं करता। जनता अपने आराध्य को, चाहे वह कहीं भी हो और कैसी भी स्थिति में हो, ढूंढ़ ही निकालती है।

लगे लोग पूजने.........................जय महाराज अंगेश।

शब्दार्थ—कुंकुम = केसर। पुलकाकुल = हर्षध्वनि। प्रतिवन्दन = उत्तर में वंदना। विकल = हर्षाकुल। अंगेश = अंगदेश के राजा।

व्याख्या—कर्ण के इस अभूतपूर्व सम्मान को देखकर सभी पुरवासी केसर और कमल से कर्ण की पूजा-अर्चना में लग गये। सारी रंगभूमि और चारों दिशाएं इस अभूतपूर्व सुअवसर पर हर्षध्वनि से गूंज उठीं। दुर्योधन के इस अभिनन्दन के उत्तर में जब कर्ण उसका अभिवादन करने के लिए झुका तो वहां उपस्थित जनता हर्ष में उन्मत्त होकर अंग देश के राजा कर्ण की जय-जयकार कर उठी।

महाराज अंगेश ....पायेगा कोई राज।

शब्दार्थ—हय = घोड़ा।

व्याख्या—इन पंक्तियों में पाण्डवकुमार भीम के ईर्ष्यालु व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। जब भीम ने 'जय महाराज अंगेश' की तुमुल ध्वनि सुनी तो उसके भीतर की ईर्ष्याग्नि भड़क उठी। कर्ण के इस अभिवादन से भीम का हृदय क्रोध से तिलमिला उठा और फिर कर्ण को अपमानित करने के उद्देश्य से बोला, "जिस व्यक्ति का कार्य केवल घोड़े की पूंछ झाड़ना ही रहा है (यहां भीम का संकेत कर्ण के सूत-पुत्र होने की ओर है) वह भला किस प्रकार राज्य चला पाएगा।" भीम का आशय यही है कि अंगदेश का राजा बना देने मात्र से ही कर्ण में राजाओं जैसे गुण नहीं आ सकते।

दुर्योधन ने कहा..........................नहीं वंश धन धाम।

शब्दार्थ—धर्मज्ञ = धर्म के ज्ञाता।

व्याख्या—भीम के इन अपमानसूचक शब्दों को सुनकर दुर्योधन को भी क्रोध आ गया और वह प्रत्युत्तर में बोला—"भीम, यद्यपि तुम धर्म के ज्ञाता कहलाते हो किन्तु वास्तविकता यह है कि तुम्हारे मन के भीतर केवल विष ही पल रहा है। तुम्हारा अन्तर्मन द्वेष और ईर्ष्या के गरल से आप्लावित है।" दुर्योधन आगे यह भी कहता है कि बड़े वंश में जन्म लेना भी निरर्थक है, यदि मनुष्य के कार्य अच्छे न हों। मनुष्य के वास्तविक गुण, उसकी एकमात्र महानता, उसका उज्ज्वल चरित्र होना है। ऊंचा वंश, सम्पत्ति और बड़े-बड़े महलों का इन सब बातों से अनिवार्य सम्बन्ध नहीं होता। मनुष्य के बड़प्पन की एकमात्र कसौटी चरित्र-बल होता है।

सचमुच ही तो..........................सच है अपना भाल।

शब्दार्थ—भाल = मस्तक।

व्याख्या—दुर्योधन अपना कथन पूरा करते हुए पुनः कहता है कि "हे भीम, कर्ण ने ठीक ही तो पूछा था। तुम्हीं बताओ, तुम कैसे जन्मे थे? तुम अपने जन्म का रहस्य खोलो।" दुर्योधन कहता है कि वास्तविकता यह है कि मनुष्य को स्वयं अपने अवगुण तो दिखाई ही नहीं देते। यह संसार की बड़ी अनोखी रीति है कि मनुष्य अपने अवगुणों को देख ही नहीं पाता और दूसरों के अवगुण तत्क्षण दिखाई देते हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने मानव-जीवन की एक अनोखी बिडम्बना की ओर संकेत किया है। एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य का सफल उद्घाटन किया है, क्योंकि व्यावहारिक जीवन में भी हम प्रायः देखते हैं कि मनुष्य औरों के अवगुणों की पहचान तो तत्काल कर लेता है किंतु उसे अपने अवगुणों का आभास तक नहीं होता।

कृपाचार्य आ पड़े·····················चाहिए तुम्हें आराम।

शब्दार्थ—हया = लज्जा।

व्याख्या—दुर्योधन और भीम के मध्य इस वाग्युद्ध को शान्त करने की दृष्टि से कृपाचार्य बीच में ही हस्तक्षेप करते हुए बोले—"यह सब क्या है? तुम लोग इस प्रकार लड़ रहे हो कि लगता है, तुम्हें शिष्टता के सामान्य नियमों का भी ज्ञान नहीं है। अब शाम हो गई है। तुम लोग भी थके हुए होगे, चलो अब चलकर आराम करो।" कृपाचार्य के इस हस्तक्षेप के कारण यह अप्रिय वाग्युद्ध शान्त हो गया।

रंगभूमि से चले·····················राहु नया फिर कौन।

शब्दार्थ---पुरवासी = नगरवासी। राहु = एक नाशक ग्रह।

व्याख्या—इस प्रकार गुरु कृपाचार्य का आदेश पाकर सभी नगरवासी आदि रंगभूमि से चल पड़े। सभी लोग खुशी मना रहे थे और कोई अर्जुन की तथा कोई कर्ण की प्रशंसा कर रहा था। सारी सभा के मन में इन दोनों वीरों की अमिट छाप पड़ चुकी थी। सबसे आगे गुरु द्रोणाचार्य तथा उनका सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन चल रहे थे। मार्ग में गुरु द्रोणचार्य अर्जुन को सम्बोधित करते हुए बोले—"यह नया राहु कौन आ गया है?" यहां राहु का प्रयोग महावीर एवं पराक्रमी कर्ण के लिए किया गया हैं, क्योंकि गुरु द्रोणाचार्य मन ही मन इतना अवश्य जानते थे कि शस्त्रचालन में उनका प्रिय शिष्य अर्जुन महाशूर-वीर कर्ण के सम्मुख नहीं टिक सकेगा। इस पद की अन्तिम पंक्ति में उनके अन्तर्मन की यही आशंका सस्वर प्रकट हुई है।

जन्मे नहीं जगत में·····················बेटा! तेरी राह।

शब्दार्थ—प्रतिबल = प्रतिद्वन्द्वी। निष्कंटक = कांटों से रहित।

व्याख्या—इन पंक्तियों में गुरु द्रोणाचार्य के चरित्र का पर्याप्त विकास हुआ है। सच तो यह है कि इन पंक्तियों में गुरु द्रोणाचार्य के छलपूर्ण और कुत्सित मन्तव्य सुस्पष्ट हो गए हैं। अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को सम्बोधित करते हुए गुरु द्रोणाचार्य कहते हैं कि, "हे अर्जुन, आज तक मेरी एकमात्र आकांक्षा यही रही है कि संसार में तुम-सा कोई भी पराक्रमी न हो। मैं सदा-सदा से इसी बात का इच्छुक रहा हूं कि वीरता और पराक्रम की दृष्टि से संसार में तेरा कोई भी प्रतिद्वन्द्वी न हो। अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैंने

एकलव्य के हाथ का अंगूठा दान में ले लिया था। और उस समय मेरे मन को लेशमात्र भी दु:ख नहीं हुआ था। किन्तु अब यह कौन-सा राहु मेरे और तुम्हारे मार्ग में आ गया है? हे अर्जुन, मेरी तो एकमात्र कामना यही है कि तेरा मार्ग पूर्णत: निष्कंटक रहे, तेरा कोई भी प्रतिद्वन्द्वी न हो।"

मगर आज जो..............................हो सकता है काल।

शब्दार्थ—उद्भट-भटबाल=परमयोद्धा बालक। काल=मृत्यु।

व्याख्या—अर्जुन को सम्बोधित करते हुए गुरु द्रोणाचार्य कहते हैं कि—"किन्तु अर्जुन, आज मैंने जो कर्ण का शौर्य प्रदर्शन देखा है, उसे देखकर मेरा धैर्य डोल जाता है। मुझे कर्ण के भीतर चरम शौर्य के लक्ष्य दिखाई दे रहे हैं और मेरी यह पक्की धारणा है कि यदि यह बाल-योद्धा इसी प्रकार विकासमान रहा तो एक समय यही तेरे नाश का कारण सिद्ध होगा।"

सोच रहा हूं..............................पर तू भी हे तात।

शब्दार्थ—प्रचण्डतम=सबसे अधिक प्रचण्ड। धूमकेतु=अग्नि। विकट प्रतिभट=महाबली। तात=बेटा।

व्याख्या—गुरु द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के साथ वार्तालाप करते हुए पुन: कहते हैं कि—"मैं यही सोच रहा हूं कि इस विकट परिस्थिति का क्या उपचार किया जाए? मेरी चिन्ता केवल यही है कि इस सर्वाधिक प्रचण्ड अग्नि समान कर्ण का तेज किस प्रकार हरा जा सकता है। हे बेटा अर्जुन, यहां तक तो निश्चित है कि मैं इसे अपना शिष्य बनाऊंगा किन्तु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। तुम भी इस महाबली कर्ण के प्रति पूर्ण सचेत रहना।"

रंगभूमि के लिए..............................दुर्योधन औ कर्ण।

शब्दार्थ शैले-शिखर-सम=पहाड़ की चोटी की भांति। सुगठित=बलिष्ठ। सुवर्ण=सुन्दर। गलबांही=गले में बांहे डाले हुए।

व्याख्या—एक ओर तो पाण्डवों की यह मन:स्थिति थी, दूसरी ओर कौरव शंख-वादन करते हुए कर्ण को अपने साथ ले चले। कौरवों में आपार खुशी की लहर दौड़ रही थी। वे सब हर्ष में पागल हुए, झूमते हुए कर्ण को रंगभूमि से ले चले। आगे-आगे कर्ण और दुर्योधन एक-दूसरे के गलों में बांहे डाले हुए जा रहे थे। वे दोनों सोने के पर्वत-शिखरों की तरह कान्तिमय लग रहे थे। उन दोनों के शरीर अत्यन्त बलिष्ठ, सुगठित और सुन्दर थे।

बड़ी तृप्ति के साथ..............................गति को छोड़ विमान।

शब्दार्थ—तृप्ति= संतोष। अंग=शरीर। स्निग्ध=कोमल। कर=हाथ। अवसान=समाप्त होना। विरम=रुक गया। विमान=रथ।

व्याख्या—कर्ण के पिता सूर्य अपने इस वीर पुत्र की अद्वितीय विजय पर अत्यन्त तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। वर्षों से उपेक्षित पुत्र को पहली बार युग और समाज ने सम्मान दिया था। अपने पुत्र की इस महान् सफलता को देखकर मुदित हुए सूर्य शीतल हो गये थे और अस्ताचल पर जा चुके थे। वहीं से वे अपने पुत्र के शरीर पर कोमल एवं मसृण किरणों की वर्षा कर रहे थे मानो अपने पुत्र के बलिष्ठ और सोने-से कान्तिवान शरीर को चूम रहे हों। आज उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा था कि दिवस का अवसान होना है। उत्साह और खुशी में उन्मत्त सूर्य ने अपने पराक्रमी पुत्र को निहारने के लिए अपने रथ को रोक लिया। उनका रथ क्षितिज में ही रुक गया, उसकी गति बलात् रुक गई।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने प्रकृति के माध्यम से कर्ण के पिता सूर्य की भावनाओं का अत्यन्त प्रभावपूर्ण और मार्मिक वर्णन किया है। रश्मि-रथी में प्रकृति के ऐसे प्रयोग अत्यन्त विरल हैं। पिता सूर्य के मन का उल्लास और हर्षातिरेक साकार हो उठा है।

और हाय, रनिवास......................कुन्ती के पांव।

शब्दार्थ—विकला = व्याकुल।

व्याख्या—इस पद में कर्ण की माता कुन्ती के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। सभा विसर्जित होने के पश्चात् रानियां भी राजभवन की ओर चल पड़ीं। रानियों के समूह के सबसे पीछे मन मसोसती हुई कुन्ती जा रही थी। कवि ने इन पंक्तियों में कुन्ती की मनःस्थिति का अत्यन्त सजीव और मार्मिक वर्णन किया है। कवि कहता है कि सबसे पीछे चल रही कुन्ती को ऐसा लग रहा था जैसे कि उसके सारे स्वप्न खण्डित हो गए हों। उसे ऐसा लग रहा था मानो वह कोई बहुत बड़ा दाव हार बैठी हो। वस्तुतः वह कौरव और पाण्डवों के सम्भावित युद्ध की विभीषिका से भय-त्रस्त थी और अब उसे यह पक्का विश्वास हो गया था कि यह युद्ध टलेगा नहीं। अपनी ही सन्तानों के मध्य इस प्रकार के वैर और विरोध के कुटिल भावों को देखकर उसका ममत्व कांप उठा था। अपनी इस मानसिक पराजय के कारण वह स्वयं अपने ही भार से दबी जा रही थी। उसके पांव उठाए नहीं उठते थे। उसका अन्तर्मन एक अज्ञात वेदना से भयाक्रान्त हो रहा था। वह एकदम निष्प्राण हो गई थी।

विशेष—इन पंक्तियों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि कवि ने कुन्ती की मनःस्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। "नहीं उठाए भी उठ पाते थे कुन्ती के पांव"—इस पंक्ति में कुन्ती का वेदना-भार साकार हो उठा है।

दूसरा सर्ग

कथावस्तु—रंगभूमि में गुरु द्रोणाचार्य के पक्षपातपूर्ण व्यवहार को देखकर कर्ण का मन अत्यन्त विक्षुब्ध हो उठा। उसने 'कार्तिकेय के जेता' परशुराम से शस्त्र-विद्या ग्रहण करने की ठानी। परशुराम का भी यह व्रत था कि वे किसी भी ब्राह्मणेतर युवक को धनुर्विद्या का दान नहीं देंगे। उन दिनों वे महेन्द्रगिरि पर्वत पर वास कर रहे थे। जब कर्ण उनके सम्मुख पहुंचा और अपना मन्तव्य स्पष्ट किया तो कर्ण के तेजपूर्ण मुखमण्डल और कवचं-कुण्डल को देखकर परशुराम कर्ण को ब्राह्मण युवक ही समझ बैठे। कर्ण ने भी उनके इस भ्रम का निवारण नहीं किया और शस्त्र-विद्या का सम्यक् अध्ययन आरम्भ कर दिया। कर्ण ने पूरी निष्ठा और लगन के साथ परशुराम से शस्त्रज्ञान प्राप्त किया। इसी बीच एक दिन कर्ण का यह भेद खुल गया और उसे गुरु परशुराम के कोप का भाजन बनना पड़ा। घटना इस प्रकार है कि एक दिन परशुराम कर्ण की जंघा के सहारे निद्रालीन थे। उसी समय एक विषकीट कर्ण की जांघ में घुस गया और घाव करने लगा, किन्तु गुरुभक्त कर्ण उस असह्य पीड़ा को तब तक सहन करता रहा जब तक कि उस विषकीट द्वारा किये हुए घाव से निकला हुआ गर्म रक्त गुरु की पीठ को नहीं छू गया। गुरुजी रक्त की उष्णता से जाग उठे। वस्तुत: कर्ण ने सारी असह्य पीड़ा इसलिए सहन की थी कि गुरुजी की नींद न उचट जाए किन्तु दुर्भाग्य से उसकी कामना अधूरी रह गई। गुरुजी जाग गए और उन्हें कर्ण की जाति के सम्बन्ध में शंका हुई। गुरुजी जानते थे कि ब्राह्मण युवक में इतनी सहनशीलता हो ही नहीं सकती, अत: उन्होंने कर्ण से उसकी जाति पूछी। कर्ण ने गुरुजी से सारी कथा वर्णित कर दी और आग्रहपूर्ण भाषा में कहा कि उसका उद्देश्य धोखा देना नहीं था, वह तो केवल धनुर्विद्या सीखने का इच्छुक था। कवि ने कर्ण की इस आत्मग्लानि का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करते हुए कर्ण के मुख से कहलवाया है :

> 'बता सका मैं नहीं इसी से प्रभो! जाति अपनी छोटी,
> करें देव! विश्वास, भावना और न थी कोई खोटी।
> पर इतने से भी लज्जा में हाय, गड़ा-सा जाता हूं।
> मरे बिना हृदय में अपने-आप मरा-सा जाता हूं।

इतनी क्षमा-याचना करने पर भी परशुराम का जगत-विदित क्रोध शान्त नहीं हुआ और उन्होंने अन्तत: कर्ण को जीवनदान तो दे दिया किन्तु उसके साथ ही यह शाप भी दे दिया कि उनकी सिखाई हुई धनुर्विद्या और शस्त्र-चालन-कला कर्ण के काम नहीं आएगी। परशुराम अपने व्रत के कारण दुखी

थे और कर्ण तो मानो मृतप्राय हो गया था। अटूट साधना और अथक गुरु-सेवा से प्राप्त हुई सारी विद्या-पूंजी एक क्षण में लुट गई।

शीतल विरल एक कानन......बड़े तुष्ट सारे गोधन।

शब्दार्थ—विरल=विरला। अधित्यका=पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि। प्रस्रवण=झरना। शुभ्र=सुन्दर। पाहन=पत्थर। उटज=तृणकुटी। तंद्रिल=नींद से डूबे हुए। लेहन=चखने या चाटने की क्रिया। शाकल्य=बची-खुची हवन सामग्री। गोधन=गाएं तथा उनके बाल।

व्याख्या—महेन्द्रगिरि पर्वत स्थित परशुराम की कुटिया के आस-पास की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि एक निर्जन वन में पहाड़ के एक एकान्त समतल भूखण्ड पर कहीं तो स्रोतों का स्वच्छ जल बह रहा है और कहीं सुन्दर झरने शोभा पा रहे हैं। इस कारण वहां का वातावरण शीतल बना हुआ है। वहां की भूमि समतल और सुन्दर है तथा कोई भी पत्थर, चट्टान आदि नहीं दीखते हैं। चारों तरफ वृक्षों की हरियाली छाई हुई है और उसके मध्य परशुराम की एक पवित्र किन्तु विस्तृत कुटिया बनी हुई है। आस-पास के वातावरण का वर्णन करते हुए कवि पुनः कहता है कि उसके पास ही धान के कटे हुए पीले-पीले खेत शोभित हो रहे हैं और वहां वन के जीव-जन्तु, खरगोश, चूहे, गिलहरी, कबूतर घूम-घूम कर खाद्यान्न खा रहे हैं। वहां गाएं भी बैठी हुई हैं और वे पूरी तरह सन्तुष्ट दीख रही हैं। कुछ गाएं तो सुस्त बैठी हैं, कुछ अपने बच्चों को चाट रही हैं। कुछ गाएं बची हुई हवन-सामग्री खा रही हैं।

विशेष—प्रकृति का मनोहारी वर्णन करके कवि ने उपयुक्त वातावरण का निर्माण किया है।

हवन-अग्नि बुझ चुकी............इंगुद-से चिकने पत्थर।

शब्दार्थ—छदन=पत्ते। इंगुद=हिंगोट। आतप=धूप। रोम-थन=जुगाली करना। विश्रब्ध=निडर। चीवर=संन्यासियों के कपड़े।

व्याख्या—उस स्थान का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उस स्थान को देखकर ऐसा लग रहा है कि अभी कुछ ही समय पहले वहां हवन होकर चुका है। हवन-अग्नि बुझ चुकी है, किन्तु उसकी गन्ध से अभी तक वायुमण्डल में मादकता भरी हुई है। वहां से उठने वाली भीनी-भीनी गन्ध अभी तक भी प्राणों में मस्ती भर रही है। धूप के धुएं से पेड़ों के पत्ते श्यामल हो गए और उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो किसी शिशु की काजल रची अलसायी आंखें झपकी मार रही हों। हल्की-हल्की धूप में बैठे हुए हिरन जुगाली कर रहे हैं और वन-प्रदेश के जीव-जन्तु अपने-अपने बिलों से निकलकर निर्भय होकर विचरण कर रहे हैं। वहीं आम के पेड़ों की नन्हीं टहनियों पर

संन्यासियों के कपड़े सूख रहे हैं और पेड़ों के नीचे पड़े हुए पत्थर हिंगोट से दीख रहे हैं।

अजिन, दर्भ, पालाश .... हो सकती तलवार ?

शब्दार्थ—अजिन = मृगचर्म। दर्भ = कुश। तूणीर = तरकस। अंशुमाली = = सूर्य। स्रुवा = हवन में घी की आहुति देने वाली लकड़ी की कड़छी।

व्याख्या—इन पदों में कवि परशुराम की कुटिया का वर्णन करते हुए कहता है कि उसमें एक ओर तो मृगचर्म, कुश और पालाश, जैसे जप-तप के साधन दीख रहे हैं और दूसरी ओर धनुष, तरकस, तीर और भीषण बरछे टंगे हुए हैं। उस तृणकुटी के द्वार पर एक चमकदार परशु टंगा हुआ है और उसे देखकर ऐसा लगता है मानो लोहे के डण्डे पर आधा सूर्य शोभित हो। मृगचर्म और कुश आदि को देखकर तो कुटिया में रहने वाले के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत होता है किन्तु कुटी के द्वार पर टगे हुए परशु को देखकर भय भी लगता है। देखने वाला यह नहीं समझ पाता कि यह स्थान किसी मुनि की तपोभूमि है अथवा युद्ध का मैदान; क्योंकि वहां तप के साधन और युद्ध के शस्त्रास्त्र, दोनों ही सुसज्जित हैं। ऐसी स्थिति में यह कहना कठिन हो जाता है कि जिस व्यक्ति का यह हवन-कुण्ड है, क्या धनुष और कुटीर का स्वामी भी वही व्यक्ति है। जिस मुनि की यह स्रुवा (हवन में घी की आहुति देने वाला लकड़ी का बना पात्र) है, वही मुनि इस तलवार का स्वामी कैसे हो सकता है। यहां कवि ने परशुराम के व्यक्तित्व के दोनों तत्वों अर्थात् तप और पराक्रम का अत्यन्त सजीव चित्र खींचा है।

विशेष—परशुराम एक महान् तपस्वी के साथ-साथ एक पराक्रमी वीर भी थे और कवि ने प्रकृति के माध्यम से परशुराम के तेजस्वी व्यक्तित्व का अत्यन्त तथ्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है।

आयी है वीरता .... काम खड्ग ही करता है।

शब्दार्थ—दैहिक = शारीरिक। क्लीव = नपुंसक। षड्विकार = काम, क्रोध, मोह, मद, लोभ तथा ईर्ष्या नामक छः विकार।

व्याख्या—कवि पुनः परशुराम के इन विरोधी तत्वों का वर्णन करते हुए कहता है कि यह सब देखकर दर्शक सोचता है कि क्या वीरता इस तपोवन में पुण्य कमाने आई है अथवा कोई संन्यासी अपनी शारीरिक शक्ति को जागृत करने के लिए साधना में मग्न है? क्या मानव-मन ने शारीरिक सिद्धि का यन्त्र शास्त्रों में पा लिया है अथवा क्या कोई वीर किसी योगी से कोई उपाय सीखने के लिए यहां आया है? कवि कहता है कि तप और परशु वीरों का ही शृंगार होते हैं और नपुंसक व्यक्ति न तो तप ही कर सकता है और न तलवार का ही प्रयोग कर सकता है। वीर व्यक्ति ही तप और परशु का

प्रयोग कर सकता है। तप करने से मनुष्य ऊंचा उठता है और छः प्रकार के विकारों से (काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद तथा ईर्ष्या) लड़ता है किन्तु जहां तक शारीरिक युद्ध का प्रश्न है, वीर व्यक्ति का एकमात्र सम्बल खड्ग होता है।

विशेष—पहले पद में सन्देह अलंकार का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया गया है।

किन्तु कौन नर..................वीर प्रणपाली का।

शब्दार्थ—तपोनिष्ठ=तपस्वी। कालसम=मृत्यु की तरह। पुनीत= पवित्र। प्रणपाली=वचन का पालन करने वाला।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि परशुराम के परिचय की पृष्ठभूमि देते हुए कहता है कि यहां कौन ऐसा तपस्वी है जो तपस्वी के साथ-साथ धनुर्धारी भी है। वह कौन है जो एक साथ तलवार और यज्ञाग्नि की पूजा करता है। कवि कहता है कि इतिहास बताता है कि इस प्रकार की विरोधी शक्तियों का स्वामी केवल एक ही व्यक्ति था जोकि युद्ध-क्षेत्र में मृत्यु की तरह क्रोधी और तपस्या में सूर्य की तरह तेजमय था। उसके मुख पर वेदध्वनि सुशोभित थी और उसकी पीठ पर वीरता का प्रतीक तरकस तथा उसके हाथ में भयंकर चमचमाता हुआ परशु होता था। उस महान् ऋषि में शौर्य के साथ-साथ शाप देने की दिव्य शक्ति भी विद्यमान थी। कवि बताता है कि वह इतिहास प्रसिद्ध महामुनि परशुराम ही है जिसकी यह कुटिया है। अत्यन्त शौर्यवान परशुराम पवित्र भृगुवंश के वंशज थे और वे व्रती, वीर तथा प्रण के पालन करने वाले थे।

हां, हां, वही..................कच्ची नींद कहीं।

शब्दार्थ—तृण-पात=तिनके पत्ते आदि। सजग=जागरूक। गुरुवर= श्रेष्ठ गुरु।

व्याख्या—कवि कहता है कि वही महामुनि परशुराम, आश्रम से तनिक दूर एक पेड़ के नीचे कर्ण की जांघों पर मस्तक रखे हुए सो रहे हैं। माघ महीने की सुखद धूप पत्तों से छन-छन कर मुनिवर के थके शरीर पर पड़ रही है और उनकी थकान मिटा रही है। कर्ण गुरुभक्ति में लीन है और कभी गुरुवर की जटाओं को और कभी पीठ को सहला रहा है। कर्ण इस बारे में भी सतर्क है कि कहीं गुरुजी के शरीर पर चींटी न चढ़ जाए अथवा पत्ते आदि न गिर पड़ें और उनकी कच्ची नींद न टूट जाय।

वृद्ध देह तप से..................हड्डी भर ढांचा तेरा।

शब्दार्थ—कृश काया=दुर्बल शरीर। आयुध=शस्त्र।

व्याख्या—कर्ण मन ही मन अपने गुरुवर के बारे में सोच रहा है। वह सोचता है कि तपस्या के कारण गुरुजी का वृद्ध शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है किन्तु फिर भी वे शस्त्र-संचालन करते रहते हैं। कर्ण अपने को धिक्कारता

हुआ सोचता है कि उसी के कारण इस असमय में गुरुजी को इतना श्रम करना पड़ रहा है। कर्ण सोचता है कि इतना वृद्ध होने पर भी उनके अंगों में बहुत शक्ति भरी हुई है और वे रात-दिन मुझपर अपार ममता-भाव रखते हैं। कर्ण स्मरण करता है कि गुरुजी मुझसे कहते हैं—"बेटा, यदि तू पुष्टिकर भोजन नहीं करेगा तो मेरा कठोर प्रशिक्षण तेरे लिए सह्य नहीं हो पाएगा। यदि खाने-पीने में भी तूने मेरा अनुसरण किया तो तेरा रक्त सूख जायेगा और तू केवल हड्डियों का ढांचा भर रह जायेगा।"

जरा सोच कितनी..................वय चतुर्थ के आने पर।

शब्दार्थ—वय चतुर्थ=संन्यास आश्रम।

व्याख्या—कर्ण पुनः याद कर रहा है कि उसके गुरुजी उससे कहते हैं—"बेटा कर्ण, तू तनिक सोच कि तुझे प्रशिक्षित करने में मुझे कितना परिश्रम करना पड़ता है। तुझे प्रशिक्षण देने में मुझे प्रतिदिन एक पाव रक्त जलाना पड़ता है अर्थात् भारी परिश्रम करना पड़ता है और यदि तू अभी से संन्यासी बन गया तो मेरे इस त्याग और बलिदान की पूर्ति कैसे होगी। इस प्रकार तो शरीर की भूख ही तुझे खा जायेगी अर्थात् तू निष्प्राण हो जायेगा। वही जवानी विजय पा सकती है जिसकी मांसपेशियां पत्थर की तरह कठोर हों और भुजाएं लोहे की तरह हों और जिसकी नस-नस में पराक्रम और शक्ति रूपी अग्नि प्रवाहित होती हो। यदि तू ब्राह्मण है तो इसका यह अर्थ तो नहीं है कि तू अभी से खान-पान पर संयम रखे। यह सब संयम-नियम आदि तो जीवन की चौथी अवस्था अर्थात् संन्यास आश्रम के लिए हैं; तभी करना।"

विशेष—यहां तक परशुराम यही माने हुए हैं कि कर्ण ब्राह्मण युवक है। परशुराम ने यह प्रण किया हुआ था कि वे ब्राह्मणों के अतिरिक्त किसी भी अन्य जाति के कुमारों को शस्त्र-विद्या का दान नहीं देंगे। आरम्भ में कर्ण के तेजपूर्ण ललाट और कवच-कुण्डल देखकर परशुराम यही समझे थे कि कर्ण भी ब्राह्मण युवक होगा। कर्ण ने भी शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करने के लोभ में गुरुजी की इस भ्रान्ति का खण्डन नहीं किया। दूसरे पद की 'विप्र हुआ तो क्या रखेगा रोक अभी से खाने पर' पंक्ति में परशुराम की यही भ्रान्ति बनी हुई है।

ब्राह्मण का है..................नहीं धर्म पर लाने को।

शब्दार्थ—शीलोञ्छवृत्ति=ब्राह्मणों की एक पुरातन वृत्ति जिसके अनुसार वे न तो खेती करते थे और न भिक्षा लेते थे बल्कि खेतों के कट जाने पर अन्न के दाने चुगते थे। वेश्म=घर। उद्धत=उग्र। भूप=राजा।

व्याख्या—कर्ण अभी चिन्तन में लीन है। वह सोच रहा है कि उसके गुरुजी कहते हैं कि यह तो ठीक है कि ब्राह्मण का धर्म त्याग और तप का होता है किन्तु क्या बालकों को भी इस धर्म का पालन करना चाहिए? क्या

उन्हें जन्म के साथ ही शीलोच्छ वृत्ति अपना लेनी चाहिए ? कवि कर्ण के माध्यम से आधुनिक समाज के दोषपूर्ण स्वरूप की चर्चा करते हुए कहता है कि समाज की क्या विचित्र व्यवस्था है कि ज्ञान तो ब्राह्मण के हाथ लगा और धन-वैभव वैश्य के घर में बरसा तथा खड्ग अर्थात् शक्ति क्षत्रिय के हाथ में आ गई। कर्ण तथा परशुराम के माध्यम से कवि कहता है कि खड्ग अर्थात् शक्ति अत्यन्त प्रचण्ड होती है और राजा लोग भी बहुत उग्र होते हैं और यही कारण है कि वे सदैव युद्ध का आह्वान करते रहते हैं। राजाओं के हाथों में शक्ति होती है अतः ज्ञानी ब्राह्मण क्या कर सकता है ? उसके हाथों में तलवार नहीं होती और इसलिए वह इन राजाओं से सदैव डरता रहता है। यद्यपि राजा इन ब्राह्मणों को सम्मान देता है और ब्राह्मण भी राजा का आदर करता है, फिर भी ब्राह्मण की बात कोई नहीं सुनता है। यह सारा सम्मान खोखला होता है और यही कारण है कि सभी राजा अपनी-अपनी इच्छानुसार कार्य करते हैं। शक्ति के मद में चूर ये राजा लोग अपनी युद्ध-लिप्सा के कारण सारी धरती को रक्त में डुबो रहे हैं अर्थात् भीषण विनाशलीला का आयोजन कर रहे हैं। इनका रण भी इनके निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए होता है। इनके समक्ष जनता का दुख और गरीबी हटाने का कोई लक्ष्य नहीं होता। इनका युद्ध करने का लक्ष्य यह भी नहीं होता कि पथभ्रष्ट और दूसरों का शोषण करने वाले व्यक्ति के मन में धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न करें। ये राजा लोग केवल अपने निजी सुख के लिए ही युद्ध करते हैं।

रण केवल इसलिए..............सिर पर चढ़ता जाता है।

शब्दार्थ—अहं = अभिमान। नरपति = राजा।

व्याख्या—युद्ध के कारणों की चर्चा को आगे बढ़ाते हुए कवि कर्ण के माध्यम से पुनः यह कहलाते हैं कि राजा लोग इन युद्धों का आयोजन केवल इसलिए करते हैं कि इनके सुखों में वृद्धि हो. इनका सम्मान और अधिक बढ़े। ये युद्ध इसलिए करते हैं ताकि और अधिक प्रजा इनके अधीन आ जाए और वे अधिक अभिमानी हो जाएं। वे केवल इसीलिए रण करते हैं जिससे कि उनके कल्पित अभावों की पूर्ति हो सके, उनके राज्य की सीमाएं बढ़ जाएं और वे और भी अधिक व्यक्तियों को लूट सकें। रण केवल इसलिए किये जाते हैं जिससे कि सत्ता एवं शक्ति में वृद्धि हो, कोई भी विरोधी न हो तथा राजाओं के विरुद्ध कोई भी शक्ति अपना सिर ऊंचा न उठाए। इस प्रकार जब शासकों को निरन्तर विजय मिलती रहती है, उनका अहंकार भी बढ़ता जाता है। परिणामतः वह निरीह जनता को और अधिक दबाता है।

विशेष – इन पंक्तियों में कवि ने शासक वर्ग की युद्ध-लिप्सा एवं साम्राज्य-विस्तार-भावना पर करारा व्यंग्य करके यह सिद्ध किया है कि शासक वर्ग

जन-कल्याण की पुनीत भावना से नहीं अपितु केवल अपने स्वार्थपूर्ण लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ही युद्धों का आयोजन करते हैं।

अब तो है………………………धरा पल-पल निश्चय।

शब्दार्थ—अविवेकी = विवेकहीन। सिर = सर्वोच्च। फूल = विकास के साधन। भुजा = शक्ति।

व्याख्या---इन पंक्तियों में कवि असिविहीन ब्राह्मण की चिन्त्य स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि अब तो स्थिति यह है कि सर्वत्र राजा की शक्ति की ही तूती बोल रही है और ज्ञानी ब्राह्मण केवल शंख और गंगाजल लिए हुए राजा की कृपा पर आश्रित है। अब उसमें वह तेज कहां रह गया है जो कि विवेकहीन राजा को अन्याय करने से रोक सके अथवा जब कभी भी राजा पथभ्रष्ट हो तो उसे तत्काल टोक सके। ब्राह्मण का ज्ञान प्रभावशून्य हो गया है, उसका तेजमय रूप खण्डित हो चुका है। यही नहीं, यदि ब्राह्मण कोई बात कहता भी है तो उसकी कोई नहीं सुनता। प्रतिदिन शक्ति-सम्पन्न राजा ब्राह्मणों का अनादर करता है और इसका एकमात्र कारण यही है कि ब्राह्मण के पास केवल ज्ञान और तप का भण्डार है, अपेक्षित तेज और शौर्य नहीं है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि राजा की शक्ति के सामने विद्वानों और तपस्वियों की बात कोई नहीं सुनता, सभी दिन-रात शक्तिशाली एवं विजयी राजा की पूजा करते हैं। जो ब्राह्मण एक समय सारे समाज में सर्वाधिक सम्मान का अधिकारी था, वही ब्राह्मण आज अपमान का भागी होता है। जो भी विकास के साधन हैं, वे सभी पराक्रम की आराधना करते हैं। चारों ओर लोभ की अग्नि धधक रही है और भौतिकवाद की ही पूजा हो रही है। कवि कहता है कि इस प्रकार भोग और लोभ के कारण पापकर्मों में वृद्धि हो रही है और निश्चय ही यह धरती इन पापों के भार से नित्य रसातल को धंसती जा रही है। जहां ज्ञान और तप के स्थान पर स्वार्थ और लोभ की जय-जयकार हो रही हो वहां हिंसा और संघर्ष के विषावत अंकुर फूटते हैं। ज्ञान और शक्ति, अध्यात्म और वैभव—इन तत्वों का उपयुक्त समन्वय ही मानवता का कल्याण कर सकता है। जिस शक्ति पर ज्ञान का अंकुश नहीं होता वह केवल विनाशकारी ही हो सकता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने आधुनिक युग की विषमताओं और उनके दुष्परिणामों की महत्वपूर्ण चर्चा की है। बुद्धि और हृदय का समन्वय मानव-कल्याण के लिए नितांत आवश्यक है।

जब तक भोगी………………………न इन्हें वह मानेगा।

शब्दार्थ—अशन-वशन = भोजन, कपड़ा। कोविद = विद्वान। कनक = सोना।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कवि ने परोक्षतः अध्यात्म और पराक्रम के आदर्श समन्वय की आवश्यकता पर बल दिया है। कवि कहता है कि जब तक सत्ता की डोर वैभव-विलास में लिप्त राजाओं के हाथ में होगी और ज्ञान, त्याग, तप आदि को समुचित आदर नहीं मिलेगा, तब तक मानव-कल्याण की बात सोचना निरर्थक है। कवि कहता है कि जब तक भोजन और वस्त्र के अभावों में पलने वाले और सत्ताधारी राजाओं से अपमान सहकर भी मानव-कल्याण की चिन्ता करने वाले कवियों, विद्वानों, विज्ञान विशारदों, कलाकारों, पंडितों एवं ज्ञानियों को उचित सम्मान नहीं मिलेगा, तब तक मानव-कल्याण का लक्ष्य अधूरा ही रहेगा। इन कवियों, विद्वानों, ज्ञानियों की एकमात्र सम्पत्ति इनका चरित्रबल होता है। भौतिक पूंजी, सोना-चाँदी इनके पास नहीं होते, इन्हें तो केवल अपने चरित्रबल का ही मान होता है। कवि कहता है कि जब तक संसार इन महान् व्यक्तियों की महानता को स्वीकार नहीं करेगा और इन्हें राजाओं से अधिक सम्मान नहीं देगा तब तक यही दुर्वह स्थिति बनी रहेगी।

तब तक पड़ी ……………… और तपस्या का बल भी।

शब्दार्थ—ग्रीवा हर=गर्दन काटने वाली। मदान्ध=मद में अन्धा। त्रास=भय।

व्याख्या—कर्ण का चिन्तन चल रहा है और उसी क्रम में वह कहता है कि जब तक यह संसार राजाओं का नहीं बल्कि कवियों, विद्वानों एवं कलाकारों का सम्मान करना नहीं सीखेगा तब तक धरती लोभ और स्वार्थ की अग्नि से तपती रहेगी। धरती की शान्ति का एकमात्र उपचार यही है कि शक्ति के साथ-साथ ज्ञान और अध्यात्म की पूजा भी हो। यदि ऐसा नहीं किया गया तो इस संसार के दुख और कष्ट कम नहीं होंगे। ज्ञानी और विद्वान् कह-कह कर थक गये हैं, मानव-कल्याण की उनकी आकांक्षाएं धूल में मिल गई हैं और इसका कारण यही है कि सत्ता के मद में चूर राजा शक्ति के अतिरिक्त कोई और भाषा नहीं समझते। उन्हें केवल शक्ति का ही भय लगता है। कवि कहता है कि सत्ता और लोभ में डूबा हुआ शासकवर्ग विवेकहीन है, उसमें सत् और असत् के विवेक करने की क्षमता नहीं है, अतः रोकने अथवा टोकने से उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। उसके हाथों में औरों की गर्दन काटने वाली कुठार सुशोभित है और वह सत्ता के मद में अन्धा हो गया है। कवि कर्ण और परशुराम के माध्यम से सभी ज्ञानियों और विद्वानों को कहता है कि इस दुखद स्थिति में तुम्हारे लिए एक ही विकल्प है और वह यह है कि तुम अध्यात्मज्ञान के साथ-साथ शक्ति भी जागृत करो और इस प्रकार संसार में से शक्ति के विनाशकारी रूप का भय समाप्त करो। अभी तक संसार शक्ति के भय से डरा हुआ है और कोई भी व्यक्ति संसार के भय को दूर नहीं

कर सका है। कर्ण स्मरण करता है कि गुरुजी प्रतिदिन मुझसे कहते थे कि खड्ग अर्थात् शक्ति अत्यन्त भयंकर होती है और संसार में प्रत्येक व्यक्ति शक्ति का सही प्रयोग नहीं कर सकता। गुरुजी कहते थे कि शक्ति के प्रयोग, का वास्तविक अधिकारी वही है जो कठोर के साथ कोमल भी हो जो पराक्रमी वीर होने के साथ-साथ महान् तपस्वी भी हो।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने पुनः शक्ति और अध्यात्म के समन्वय की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि शक्ति की निकरालता पर विवेक का अंकुश आवश्यक होना चाहिए अन्यथा शक्ति का निर्वाध प्रयोग समूची मानवता के लिए विनाशकारी ही सिद्ध होगा।

वीर वही है........ .... **निर्झर की धारा है।**

शब्दार्थ—शरचाप = धनुश-बाण।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण आदर्श वीर की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहता है कि वास्तविक वीर वही है जोकि शत्रु पर खड्ग उठाते समय मानवता के उच्च गुणों को भूल नहीं जाता। कर्ण कहता है कि खड्ग उठाने अथवा शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार उसी वीर को मिलना चाहिए जो शक्ति-संचालन की सीमाओं से अवगत हो। इसलिए केवल ब्राह्मण जाति को ही खड्ग उठाने का अधिकार मिलना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण ही ऐसा होता है जिसके पास शक्ति के साथ-साथ अध्यातमक ज्ञान का भण्डार भी होता है। वह कभी भी शक्ति का अविवेकपूर्ण प्रयोग नहीं करेगा। कर्ण याद करता है कि जब कभी भी मैं गुरुजी को धनुष-बाण के कुछ करतब दिखलाता हूं तो उनका यंह आशीर्वाद सुनकर गद्‌गद् हो जाता हूं कि –"बेटा कर्ण, दीर्घायु हो, तुमने वस्तुतः बहुत अच्छा तीर मारा है, तभी तो एक ओर वन में अग्नि जल उठी है तथा दूसरी ओर निर्झर की धारा फूट पड़ी है अर्थात् तुम्हारी शक्ति एक ओर शत्रुओं के लिए विनाशकारी है तो दूसरी ओर समग्र मानवता के लिए शीतलता प्रदान करने वाली भी है। यही है शक्ति का आदर्श प्रयोग।"

मैं शंकित था··· .... **इस तरह छला होगा।**

शब्दार्थ—अनल = अग्नि, पराक्रम। जुगा = संभाल कर रखना। अक्षय-कीर्ति = कभी भी समाप्त न होने वाला सम्मान।

व्याख्या—कर्ण का चिन्तन चल रहा है। कर्ण याद कर रहा है कि उसके गुरुजी प्रायः शंकित हो जाते थे कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उनकी यह वीरता उनके साथ ही समाप्त हो जाएगी? क्या ब्राह्मण जाति परशुराम की स्मृति को सम्भाल कर भी रखेगी अथवा नहीं? तब गुरुजी कर्ण से कहने लगे– "किन्तु तुम्हें पाकर मेरी शंकाएं समाप्त हो गई हैं। इस वन में तुम्हारे जैसा गुरुभक्त शिष्य पाकर मेरा हृदय शीतल हो गया है और मुझे विश्वास है कि

तुम मेरे पराक्रम और तप का प्रसार करोगे अर्थात् तुम मेरा नाम चमकाओगे।" कर्ण को याद आ रहा है कि उसके गुरुजी उससे कहा करते थे—"हे ब्राह्मण-कुमार, दीर्घायु हो। तुम अपूर्व सम्मान के अधिकारी होगे और एक बार तुम भी मेरी भांति इस धरती को क्षत्रियविहीन करोगे। तुम वस्तुतः एक ब्राह्मण-कुमार हो और तुमने कवच-कुण्डल धारण किए हुए हैं। तुम्हारे ही माता-पिता ऐसे होंगे जिन्होंने भारी तप किया होगा, अन्यथा तुम-सा पराक्रमी पुत्र उन्हें प्राप्त नहीं होता।" यह स्मरण करते ही गुरुजी उसे 'ब्राह्मण कुमार' समझे हुए हैं, कर्ण का हृदय कांपने लगा। वह अपने को धिक्कारने लगा और उसके मन में ग्लानि के भाव जागृत हो गये क्योंकि वह स्वयं तो यह अवश्य जानता था कि वह सूतपुत्र है और गुरुजी भ्रान्तिवश ही उसे ब्राह्मण कुमार समझ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कर्ण सोचता है कि निस्सन्देह गुरु की यह असीम कृपा इसीलिए है कि वे कर्ण को अभी भी ब्राह्मण कुमार समझते हैं। भला ऐसी स्थिति में गुरु का यह दिव्य प्रेम किसको नहीं खलेगा क्योंकि सचाई कभी भी प्रकट हो सकती है और तब गुरु की यही कृपा और प्रेम अभिशाप में बदल सकते हैं। कर्ण ग्लानि का अनुभव करते हुए सोचता है कि किसी भी शिष्य ने उसकी तरह अपने गुरु को धोखा नहीं दिया होगा।

विशेष—दूसरे पद की दूसरी पंक्ति अर्थात् "एक बार तुम भी धरती को निःक्षत्रिय कर जाओगे" एक ऐतिहासिक तथ्य की ओर संकेत करती है। कहते हैं कि परशुराम ने अपने जीवन में इक्कीस बार इस धरती को क्षत्रिय-विहीन कर दिया था। गुरुजी अपने शिष्य से इसी परम्परा का निर्वाह करने की अपेक्षा कर रहे हैं।

पर मेरा क्या दोष..............पाते हैं जहां सुजान।

शब्दार्थ अधम=निकृष्ट। सुजान=कुशल।

व्याख्या—कर्ण यही याद कर रहा है कि उस समय उसके पास कोई और मार्ग था ही नहीं। कैसे वह कह सकता था कि वह ब्राह्मण कुमार नहीं है। यदि वह ऐसा न करता तो उसे गुरु द्रोणाचार्य के समक्ष अपमान का विष-घूंट पीना पड़ता और तब कहीं उसे शस्त्र-ज्ञान प्राप्त हो पाता। यही नहीं, तब भी यह आवश्यक नहीं था कि गुरु द्रोणाचार्य उसे गूढ़ शस्त्रज्ञान अवश्य सिखा देते। ऐसा भी तो सम्भव था कि वे एकलव्य की भांति ही उसका अंगूठा कटवाकर उसे जीवन भर के लिए अक्षम बना देते। कर्ण पुनः ग्लानि की अग्नि में तप रहा है और स्वयं को धिक्कारते हुए कहता है कि, "कर्ण तूने इस संसार में जन्म ही क्यों लिया और यदि जन्म भी लिया तो इतना बड़ा वीर क्यों हुआ? तेरा कवच-कुण्डलधारी शरीर भी यहां अपमान का भागी हो रहा है, क्योंकि तेरे पास उच्च जाति की गौरवपूर्ण परम्पराएं नहीं हैं। जिस देश में मानवीय गुणों को उचित सम्मान नहीं मिलता और जहां केवल जाति और

गोत्र के बल पर ही व्यक्ति को आदर मिलता है, वह देश रसातल को क्य नहीं चला जाता।"

नहीं पूछता है कोई…………………लाख चाहे खोटे।

शब्दार्थ—विधाता=ईश्वर। ब्रह्मलोक=आकाश। भूमण्डल=धरती।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि जाति और कुल की उच्च परम्पराओं के खोखलेपन का वर्णन करते हुए कर्ण के मुख से कहलवाता है कि यहां कोई भी व्यक्ति आपकी वीरता अथवा दानशीलता का प्रशंसक नहीं है, सभी यह पूछते हैं कि तुम्हारा सम्बन्ध कौन-सी जाति अथवा कुल से है। यहां मनुष्य का सम्मान उसके कर्मों के आधार पर नहीं अपितु उसकी जाति अथवा वंश के आधार पर किया जाता है। कर्ण अपने ही भीतर तर्क-वितर्क करता हुआ कहता है कि इसमें व्यक्ति का क्या दोष है क्योंकि जन्म लेना तो उसके हाथ में नहीं है, यह तो विधाता की कृपा पर निर्भर करता है। कर्ण कहता है कि कुल और जाति का चुनाव करना मनुष्य के काबू के बाहर की बात है। इसके लिए पूर्णतः विधाता की कृपा पर निर्भर होना पड़ता है। अपनी इस धारणा की पुष्टि में कर्ण तर्क देते हुए कहता है कि यदि विधाता मनुष्य को मुट्ठी में भरकर आकाश से धरती पर छिटक दे तो मनुष्य का जन्म किसी न किसी जाति में ही हो सकता है। जब जाति-रूपी ये क्यारियां धरती पर बनी हुई हैं तो मनुष्य जन्म भी तो इन्हीं में लेगा। कर्ण कहता है कि ऐसी स्थिति में यह एक संयोग ही है कि कौन व्यक्ति किस जाति अथवा कुल में जन्म लेता है अर्थात् इस सम्बन्ध में जन्म लेने वाले व्यक्ति की इच्छा अथवा अनिच्छा का कोई महत्व नहीं होता। यह सिद्ध होने पर भी कि किसी जाति अथवा वंश में जन्म लेना संयोग मात्र है, छोटे कुल वालों को ही अपमान की विष-घूंट पीनी होती है जबकि वस्तुतः उनका इसमें कोई भी दोष नहीं है। इस समूची अन्यायपूर्ण व्यवस्था को धिक्कारता हुआ कर्ण कहता है कि यह कितनी विचित्र बात है कि यदि किसी व्यक्ति का जन्म किसी छोटी जाति में हुआ है तो उसके गुण भी छोटे माने जाते हैं अर्थात् वह कितना ही गुणवान हो उसे निकृष्ट ही माना जाता है। दूसरी ओर, यदि कोई व्यक्ति बड़ी जाति में जन्म पा जाता है तो उसे बड़ा ही माना जाता है—भले ही वह कितना ही पापी तथा दुष्कर्मी हो।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने जातिवाद की भावना का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार की भेदभावपूर्ण नीति पर करारा व्यंग्य किया है। जाति का निर्धारण जन्म के अनुसार नहीं अपितु गुणों और कर्मों के अनुसार किया जाना चाहिए।

गुरु को लिये…………………कर्ण नहीं पा सकता था।

शब्दार्थ—अचल=स्थिर। विषकीट=जहरीला कीड़ा। उरु=जांघ।

व्याख्या—कर्ण इसी प्रकार अपनी जांघों पर अपने गुरुजी का सिर रखे

हुए चिन्तन में लीन स्थिर बैठा था, तभी एक जहरीला कीड़ा नीचे की तरफ से आया और उसकी जांघ में डंक मारा और जांघ के मांस को कुतरने लगा। धीरे-धीरे वह उस मांस-छिद्र में अन्दर घुसता चला गया। कर्ण इस पीड़ा से अत्यन्त व्याकुल हो गया किन्तु उसके लिए उस विषकीट को हाथ से पकड़ना असम्भव था क्योंकि अंग हिलाए बिना वह कीड़ा कैसे हाथ में आ सकता था। छिद्र में घुसे हुए कीड़े को पांव उठाए बिना नहीं पकड़ा जा सकता था।

किन्तु पांव के हिलते........ ......ऐसी वेदना कड़ी।

शब्दार्थ—विह्वल = आकुल। छाती = हृदय। क्षत = घाव।

व्याख्या—कर्ण को यह चिन्ता थी कि पांव के हिलाते ही गुरुजी की नींद उचट जायगी और इस विचार मात्र से कर्ण का भक्तिपूर्ण आकुल हृदय सहम गया। अतः वह यह सोचने लगा कि यदि यह विषकीट रक्त पीता रहा तो मैं उसको रक्त पीने से रोकूंगा नहीं किन्तु गुरु की कच्ची नींद तोड़ने के पाप का भागी नहीं होऊंगा। अतः कर्ण बिना हिले-डुले उसी स्थिति में मन मारे हुए बैठा रहा। उसने आह भी नहीं निकाली और वह इस असह्य पीड़ा को पत्थर की तरह बन कर सहता रहा। तभी अचानक उसके घाव में से गर्म लहू निकलने लगा और उसकी उष्णता से गुरुजी की नींद खुल गई। गुरुजी इस रक्त को देखकर विस्मय में पड़ गये। इस प्रकार गुरुजी की नींद उचट जाने पर कर्ण गुरुजी की अनुमति लेकर झपटकर उठ खड़ा हुआ और उसने घाव में उंगली देकर उस विषकीट को बाहर निकाल दिया। यह सब देखकर परशुराम ने कर्ण से कहा, "शिव, शिव, तूने तो यह बहुत मूर्खता की। पता नहीं, तू कब से इस असह्य वेदना को सहता रहा है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण की आदर्श गुरु-भक्ति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है।

तनिक लजा कर.............स्वयं आपने देख लिया।

शब्दार्थ—वृथा = यूं ही। निश्चल = बिना हिले-डुले।

व्याख्या—जब कर्ण के गुरुजी ने उससे यह पूछा कि, 'पता नहीं कब से तुम यह पीड़ा सहन कर रहे हो" तो कर्ण कुछ लज्जित हुआ और बोला, "मुझको कुछ अधिक पीड़ा नहीं हुई। महाराज, भला यह छोटा-सा कीड़ा मुझे कितना कष्ट पहुंच सकता था। मैं यही सोचकर स्थिर बैठा रहा कि यदि मैं तनिक भी हिला-डुला तो आप व्यर्थ ही जाग जाएंगे और आपको क्षण भर को जो आराम मिला है वह नष्ट हो जायेगा। मैं यही सोचकर स्थिर बैठा रहा कि छोटा-सा यह विषकीट स्वयं ही उड़ जायेगा। भला वह कितनी पीड़ा पहुंचाएगा। किन्तु मैं क्या करता, वह विषकीट तो घाव में अन्दर घुसता ही चला गया और मैं बहुत लज्जित हूं कि यह सब आपने देख लिया है।"

परशुराम गम्भीर हो गये..........क्षत्रिय ही सह सकता है ।

शब्दार्थ—अभिजन=श्रेष्ठ व्यक्ति । हलाहल=विष । तेजपुंज=तेज का भंडार ।

व्याख्या—यह सब कांड देखकर परशुराम अचानक ही गम्भीर हो गए और मन-ही-मन किसी चिंता में डूब गए । फिर अचानक ही उनमें अत्यधिक क्रोध की अग्नि दहक उठी और आंखें तरेरते हुए दांत पीसकर वे कर्ण से कहने लगे, "तू कौन धोखेबाज ? तू ब्राह्मण है अथवा किसी अन्य श्रेष्ठ जन का बलशाली पुत्र ? तू ब्राह्मण नहीं हो सकता क्योंकि ब्राह्मण अपने जीवन में केवल सहनशीलता के सहारे नहीं जीता है । चाहे उसके सामने कितना ही ऊंचा लक्ष्य हो, ब्राह्मण कभी भी अपमान का विष नहीं पी सकता । जो व्यक्ति कठिन वेदना सह सकता है अपमान की विष-घूंट भी वही पी सकता है । तेज अथवा पराक्रम का बलिदान कर सकता है जिसका संचालन बुद्धि द्वारा होता है । तेजमय ब्राह्मण तिलतिलकर अपमान की अग्नि में नहीं जल सकता । ब्राह्मण अपमान नहीं सह सकता और इसलिए वह वेदना भी नहीं सहन कर सकता । ब्राह्मण अपना यह स्वभाव किसी भी स्थिति में नहीं त्याग सकता । भला ब्राह्मण निश्चल होकर असह्य वेदना कैसे सहन कर सकता है । वह तो उसके स्वभाव के ही प्रतिकूल है । इस प्रकार की असह्य वेदना ब्राह्मण नहीं अपितु कोई क्षत्रिय कुमार ही सहन कर सकता है । अतः निस्संदेह तू ब्राह्मण कुमार नहीं हो सकता ।"

तू अवश्य क्षत्रिय..........व्यर्थ बदनाम हुआ ।

शब्दार्थ—विवर्ण=कान्तिहीन । अनुचर=सेवक । अन्तेवासी=गुरु के पास रह कर ज्ञान लेने वाला शिष्य ।

व्याख्या—गुरु परशुराम कर्ण को कह रहे हैं—"पापी कर्ण, तू अवश्य ही क्षत्रिय है । तू सच-सच बता अन्यथा तुझे इसके दुष्परिणाम भोगने होंगे । मेरे कठिन शाप से तू अभी भस्म हो जायेगा ।" गुरु की इस क्रोधाग्नि को देखकर कर्ण गुरु के चरणों में गिर पड़ा और कातर वाणी में बोला—"हे दयामय देव, क्षमा करें, मैं तो सूतपुत्र कर्ण हूं किन्तु आपकी कृपा और दया का इच्छुक हूं । हे गुरुवर, मैं जो कुछ भी हूं आपके पास रहने वाला एक निष्ठावान सेवक हूं । मैं धोखेबाज नहीं हूं किन्तु क्या करूं दुर्भाग्य से मेरा यह कार्य छलपूर्ण हो गया है । मैं तो विद्याध्ययन के लिए आया था किंतु अब तो मैं एक छली शिष्य के रूप में बदनाम हो गया हूं ।" कर्ण का मुखमंडल कान्तिहीन हो गया और उसका अंग-अंग भय से थर-थर कांपने लगा ।

विशेष—ऐसी कथा आती है कि कार्त्तवीर्य नामक एक राक्षस ने एक बार परशुराम के पिता जमदग्नि ऋषि के आश्रम में बहुत उत्पात मचाया था । जब परशुराम को इस बात का ज्ञान हुआ तो उन्होंने कार्त्तवीर्य से युद्ध

किया और उसे मौत के घाट उतार दिया । इसलिए परशुराम को 'कार्त्तवीर्य का जेता' भी कहते हैं ।

बड़ा लोभ था.................... ....सामने छली होकर ।

शब्दार्थ—कार्त्तवीर्य के जेता=परशुराम । तपोदीप्त=तप से चमचमाता हुआ । किल्विष=पाप ।

व्याख्या—अपने इस छल के पकड़े जाने पर कर्ण गुरुजी से कहने लगा कि "हे गुरुवर, मेरी बड़ी कामना थी कि मैं 'कार्त्तवीर्य के जेता' परशुराम का शिष्य बनूं जोकि तपस्वी एवं पराक्रमी वीर हैं और विश्व में 'तप और शौर्य' से समन्वित नये धर्म के प्रवर्त्तक हैं । पर, मुझे यह शंका थी कि यदि आपको वास्तविक स्थिति का पता चल गया तो मुझ सूत-पुत्र को आप शस्त्रविद्या नहीं सिखायेंगे । बस. इसी शंका के कारण मैंने आपको वस्तुस्थिति से अवगत नहीं कराया । इसी कारण मैं अपनी छोटी जाति के सम्बन्ध में नहीं बता सका । आप विश्वास करें, इसके अतिरिक्त मुझमें कोई और दुर्भावना नहीं थी । इतने पर भी मैं अत्यधिक लज्जा का अनुभव कर रहा हूं और यद्यपि आपने अभी तक मुझे कोई दण्ड नहीं दिया है, फिर भी मैं अत्यधिक ग्लानि का अनुभव कर रहा हूं । मैं जानता हूं कि छल तथा कपट से सम्मान प्राप्त करना पाप ही होता है । आपके सामने मैं ऊंची जाति का बना रहा और मैंने आपकी भ्रान्ति का खण्डन नहीं किया, निश्चित रूप से यह छल ही था । इसलिए हे गुरुवर, आज तक तो मैं दानवीर, व्रती और शौर्यवान व्यक्ति के रूप में सम्मान पाता था किन्तु अब जबकि मैंने स्वयं गुरु के प्रति छल किया है, मेरी क्या गति होगी ?"

करें भस्म ही देव..............................रोज मरूंगा मैं ।

शब्दार्थ—मदान्ध=मद में अन्धा । तृष्णा=इच्छा । अतृप्त वासना=अपूर्ण इच्छा ।

व्याख्या—कर्ण अपनी इस भूल के प्रति क्षमा-याचना करते हुए गुरुजी से कहता है—"यदि आप मुझे भस्म ही करना चाहते हैं, तो लीजिए मेरा मस्तक प्रस्तुत है । फिर भी एक कसक रह गई है और मेरे जीवन का व्रत पूरा नहीं हो पाया है । यद्यपि गुरु की कृपा-स्वरूप प्राप्त शाप के कारण मैं तो जलकर अभी भस्म हो जाऊंगा, पर हे गुरुवर. मद में चूर अर्जुन के प्राण मैं कैसे ले पाऊंगा ? फिर भी क्या अर्जुन पर विजय पाने की मेरी उत्कट इच्छा और कामना कभी भी समाप्त हो सकेगी ? हे मेरे गुरुवर, मेरी मृत्यु के बाद भी मेरी यह अतृप्त इच्छा मुझे भरमाती रहेगी । हे देव, भला मैं दुर्योधन की पराजय किस प्रकार सहन कर सकूंगा ? जब मैं अर्जुन को निडर और निर्भय रूप में विचरता देखूंगा तो मरने के बाद भी क्या मुझे मुक्ति प्राप्त हो सकेगी ? मैं तो प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त करूंगा ।"

परशुराम का शिष्य .... कभी नहीं मैंने पाया ।

शब्दार्थ—पाद पद्म=चरण कमल। कणिकाएं=बूंद। प्रतिभट=प्रतिद्वन्द्वी। अगणित=अनगिनती। जिज्ञासु=सीखने की इच्छा रखने वाला।

व्याख्या—जब गुरु परशुराम ने कर्ण को भस्म करने का शाप दिया तो कर्ण ने कातर शब्दों में गुरुजी से कहा—"हे गुरुवर, मैं भी परशुराम जैसे तपस्वी एवं पराक्रमी गुरु का शिष्य हूं। प्राणदान नहीं मांगूंगा। बड़ी शान्ति के साथ आपके चरणों में अपने प्राण न्यौछावर कर दूंगा। लीजिए, मैं प्रस्तुत हूं, शाप दीजिए किन्तु मेरे जीवन का अन्तिम सुख न छीनिए और अपने चरण-कमलों में ही मुझे प्राण न्यौछावर करने की अनुमति दीजिए।" इसके पश्चात् गुरुभक्त कर्ण व्याकुल होकर गुरु-चरणों से लिपट गया। कर्ण की इस वेदना को देखकर गुरुजी की आंखें डबडबा आईं और आंसू की दो बूंदें गिर पड़ीं। उत्तर में गुरुजी ने कहा, "अर्जुन का प्रसिद्ध प्रतिद्वन्द्वी कर्ण तू ही वह कर्ण है जो धृतराष्ट्र की सन्तान का निश्छल मित्र और विश्वविजय का इच्छुक है। अब मुझे यह पता लगा कि इसीलिए तू रात-दिन कठिन परिश्रम करता था और मेरे मुख से निकले प्रत्येक शब्द को बहुत ध्यान से सुनता था और मन में धारण करता था। यूं तो मैंने अनगिनत शिष्य देखे हैं और यहां तक कि गुरु द्रोणाचार्य को भी कुछ शस्त्र-ज्ञान सिखलाया है किन्तु तुम जैसा जिज्ञासु शिष्य मैंने आज तक नहीं देखा।"

तूने जीत लिया .... विप्रवंश का बालक है।

शब्दार्थ—धनुर्वेद=धनुर्विद्या। कार्पण्य=कंजूस। विक्रमी=पराक्रमी।

व्याख्या—गुरु परशुराम कर्ण की अभूतपूर्व गुरुभक्ति की प्रशंसा करते हुए उससे कह रहे हैं—"हे कर्ण तूने अपने पवित्र चरित्रबल से मेरा हृदय जीत लिया था, मुझे यह पता नहीं था कि कोई छली मेरी धनुर्विद्या लूटने के लिए आया है। जितना स्नेह मैं तुझसे करता था, उतना स्नेह तो मैंने किसी से भी नहीं किया। तभी तो तेरे सो जाने के बाद भी मैं तेरे कानों में धनुर्विद्या के सूत्र सुनाया करता था। मेरे पास धनुर्विद्या के जितने महत्त्वपूर्ण सूत्र थे, मैंने वे सभी तुझे बतला दिये। अपने पास कुछ भी न रखा। अभी कुछ ही समय पहले मेरा मन इस बात से अत्यन्त प्रसन्न था कि मैंने अपना समूचा शस्त्र-ज्ञान तुझे सौंप दिया है। मुझे ऐसा करके अपूर्व शान्ति अनुभव हो रही थी। ओ पापी कर्ण, अभी भी तू कह दे कि तू सूत-पुत्र नहीं है और परशुराम का पराक्रमी शिष्य तथा ब्राह्मण का कुमार है। तेरे मुख से यह सुन लेने के बाद मेरी क्रोधाग्नि शमित हो जाएगी।"

सूत वंश में .... निष्फल कभी न जायगा।

शब्दार्थ—पद पर=चरणों में गिरकर। अनल=क्रोध रूपी अग्नि। निष्फल=बेकार।

व्याख्या—गुरु परशुराम पुनः कर्ण को कह रहे हैं—"यह तो माना कि तू सूतपुत्र है किन्तु यह सूर्य-सा प्रबल तेज तुझे कैसे प्राप्त हुआ ? ये कवच और कुण्डल तुझे कैसे प्राप्त हुए ? आज तक मैंने तुझे अपने पुत्र की भांति रखा, अब बता कि मैं कैसे कठोर होकर तेरे प्राण ले लूं। फिर भी अपनी इस क्रोधाग्नि का क्या करूं, इसे मैं किस पर उतारूं ?" गुरुजी के ये वचन सुनकर कर्ण उनके चरणों में गिरकर बोला, "जिस कर्ण के दुर्भाग्य को देखकर अभी आपकी आंखें छलक आई थीं, वही कर्ण आपकी क्रोधाग्नि को भी ग्रहण करेगा। हे ज्ञानी गुरु, अब आप अपनी आंखों से क्रोधाग्नि बरसाइए, मैं उसे अपने सिर पर ग्रहण करूंगा। अपने इस कुकृत्य का दण्ड भोगकर हे मुनिवर, मैं कम-से-कम इस पाप से तो मुक्ति पा लूंगा।" गुरुभक्त कर्ण की इस कातर वाणी को सुनकर परशुराम बोले—"कर्ण, अब तू मुझे और अधिक दुखी मत कर। तुझे पता नहीं कि मेरा मन कितना असमंजस में पड़ा हुआ है क्योंकि एक ओर तो मेरा यह प्रण है कि मैं ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य जाति के कुमार को शस्त्र-विद्या का दान नहीं दूंगा, दूसरी ओर तेरी गुरु-भक्ति देखकर मैं तुझे शाप देने में भी संकोच का अनुभव कर रहा हूं। तथापि तूने मेरे साथ छल किया है अतः दण्ड तो तुझे अवश्य मिलेगा। परशुराम की यह क्रोधाग्नि कभी निष्फल नहीं जा सकती।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने महान् तपस्वी और पराक्रमी मुनि परशुराम के मन की द्विविधापूर्ण स्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है।

मान लिया था..............धरती पर जीने देते हैं।

शब्दार्थ—ब्रह्मास्त्र = शस्त्रज्ञान। विकल = व्याकुल। निदारुण = कष्टकर।

व्याख्या—अपनी इस द्विविधापूर्ण स्थिति पर नियन्त्रण करके परशुराम कर्ण से कहने लगे—"हे कर्ण, मैंने तुम्हें अपने पुत्र की तरह मान लिया था इसलिए मैं तुम्हारे प्राण तो नहीं लूंगा किन्तु मैंने आज तक तुम्हें जो विद्या दी है, उसका अन्तिम तेज मैं वापिस लेता हूं। जो ब्रह्मास्त्र मैंने तुझे सिखाया है, अन्तिम समय में वह तुम्हारे काम नहीं आएगा। मेरा यह शाप है कि अन्तिम समय में तू उसे भूल जायेगा।" परशुराम का यह शाप सुनकर कर्ण तड़प उठा और गुरुजी से बोला—'हे गुरुवर, आपने यह क्या किया ? यह अत्यन्त कष्टकर शाप देने से तो अच्छा यह था कि आप मेरे प्राण हर लेते। मेरी वर्षों की साधना तो आपने ले ही ली है, इन प्राणों को किसलिए छोड़ रहे हैं। अब मैं कौन-सा सुख देखने के लिए जीवित रहूं ? अर्जुन को पराजित करने की मेरी एकमात्र इच्छा तो अब पूरी हो ही नहीं सकती।"

परशुराम ने कहा..............धवल कर जाओगे।

शब्दार्थ—अटल = जो टाला नहीं जा सकता। वहन = सहन। निखिल = समूचा। सुभट = योद्धा। धवल = उज्ज्वल।

व्याख्या—कर्ण के इन कातर वचनों को सुनकर गुरु परशुराम उससे कहने लगे—"कर्ण, अब तो यह शाप टल नहीं सकता, यह तो तुम्हें सहन करना ही होगा। जो कुछ शाप मैंने दिया है, उसे सादर अंगीकार करो। इस महेन्द्र-गिरि पर्वत पर तुमने बहुत विद्यार्जन किया है। जितना भी मेरा संचित ज्ञान तेरे पास है, वह सारा तूने मुझसे ही तो पाया है। यदि एक ब्रह्मास्त्र नहीं रहा तो इससे क्या अन्तर पड़ता है। केवल शस्त्र-बल के सहारे ही कोई वीर सदैव पराक्रमी नहीं बना रह सकता। जो वस्तुतः वीर होते हैं वे तो नयी कलाएं, नयी रचनाएं, नई सूझ-बूझ और नये साधन अपनाते रहते हैं। उनके मन में नये भाव और नई उमंगें लहराती हैं और इस प्रकार से सदा ही नये-नये पराक्रमों का परिचय देते हैं। कर्ण, तुम तो स्वयं ही तेजमय शौर्य के प्रतीक हो और कवच कुण्डल धारण किए हुए हो। इनके रहते हुए भारी-से-भारी योद्धा भी तुम्हें कैसे जीत सकेगा। अच्छा लो, तुम्हें एक और वरदान भी देता हूं कि तुम एक महान् व्यक्ति कहलाओगे और अपने शौर्य एवं पुण्य के प्रताप से भारत का इतिहास उज्ज्वल कर जाओगे।"

अब जाओ लो.....................मुझे बोर नहलाते हैं।

शब्दार्थ—वत्स = बेटा। अभिशप्त = दुखी। विकल = व्याकुल। निःसंग = अकेला। सजल = अश्रुपूर्ण।

व्याख्या—अन्ततः परशुराम कर्ण को विदा करते हुए यह कहते हैं कि—"बेटा कर्ण, अब तुम अपने हृदय को कड़ा करो और जाओ। यहां हम किसी को भी दुःखी नहीं रहने देते हैं। मुझे दुःख है कि मुझे अपना ही दिया हुआ विद्यादान वापिस लेना पड़ रहा है। यह सब देखकर पता नहीं क्यों मेरा मन व्याकुल हो रहा है। तो भी मैं विवश हूं, कभी-कभी मनुष्य को अपने व्रत का निर्वाह ऐसे भी करना होता है कि जो कुछ वह एक हाथ से देता है, दूसरे हाथ से वह वापिस लेना पड़ जाता है। कर्ण, अब तुम चले जाओ और मुझे अकेला छोड़ दो। मेरी ओर कातर दृष्टि से मत देखो, और मेरा व्रत भंग करने का प्रयत्न न करो। मैं क्या करूं, मेरी बुद्धि तो यह समझती है कि मैंने जो कुछ किया ठीक था किन्तु मेरा हृदय मुझसे विद्रोह कर रहा है और पता नहीं क्यों तुम्हारी विजय मना रहा है। तुम्हारे गुण और शील अनायास ही मेरे हृदय में स्थान पाते जा रहे हैं और मेरी अन्तरात्मा अश्रु-गंगा में नहा रही है अर्थात् एक ओर तो मेरे भीतर व्रत-पालन का कर्तव्य जागृत हो रहा है और दूसरी ओर तेरी निष्ठापूर्ण गुरुभक्ति मुझे द्रवित करती जा रही है।"

विशेष—परशुराम के व्यक्तित्व को अत्यन्त मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित किया गया है।

जाओ, जाओ कर्ण..........चलता हो गहन में।

शब्दार्थ—असंग=अकेला। कुंज=बाग। आनन=मुख। गिरिशृंग=पहाड़ की चोटी।

व्याख्या—परशुराम पुनः कर्ण, को कह रहे है—"कर्ण अब तुम जाओ और मुझे अकेला छोड़ दो। मुझे किसी एकान्त वाटिका में बैठकर अपने दुखी मन को स्वस्थ बना लेने दो। मुझे तुम्हारी इस वेदना को देखकर भय लग रहा है कि कहीं तुम्हें इस प्रकार निराश देखकर अभिशाप वापस न ले लूं। मुझे भय है कि कहीं मेरी वाणी पिघलकर उलटी न पड़ जाय अर्थात् कहीं मैं उस शाप को वापिस न ले लूं।" यह कहकर परशुराम ने अपना मुख फिरा लिया। कर्ण ने जहां शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करके अर्जुन को पराजित करने के सुखद स्वप्न देखे थे, वहीं वे स्वप्न चूर-चूर हो गये। कर्ण ने गुरुजी के चरण स्पर्श किये और अपने अश्रुओं का अर्घ्यदान दिया और फिर उन्हें जी-भरकर निहारते हुए वहां से वह धीरे-धीरे चल पड़ा। परशुराम की चरण-रज लेकर और उनको आदर्श गुरुभक्ति का परिचय देकर कर्ण अत्यन्त निराश एवं आकुल होकर चल पड़ा। उसे देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो किसी को पहाड़ की चोटी से नीचे गिरा दिया गया हो। कर्ण खोया-खोया-सा चल रहा था और उसे देखकर ऐसा लग रहा था मानो ग्रहण लगा हुआ चांद जा रहा हो अर्थात् उसका मुखमण्डल ग्रहण लगे चांद की भांति निस्तेज और कान्तिहीन हो गया था।

विशेष—अन्तिम दो पंक्तियों में उपमा अलंकार का अत्यन्त सफल प्रयोग किया गया है।

तीसरा सर्ग

कथावस्तु—पाण्डव लोग बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञात-वास बिताकर वापिस आ गए। भगवान श्रीकृष्ण उनके संदेशवाहक बनकर कुरुपति दुर्योधन के पास गये और उनके लिए आधे राज्य की मांग की। श्रीकृष्ण ने यह भी कहा कि, "यदि आधा राज्य देने में कोई कठिनाई हो तो पांच पांडवों के भरण-पोषण के लिए पांच गांव ही दे दो।" सत्ता के मद में चूर और कपटी दुर्योधन ने श्रीकृष्ण के इस शान्ति-प्रस्ताव को ठुकरा दिया और वह उन्हें बन्दी बनाने की योजना बनाने लगा। दुर्योधन की इस उद्दण्डता को देखकर श्रीकृष्ण ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया और दुर्योधन को यह बता दिया कि :

'यह देख, गगन मुझमें लय है, यह देख पवन मुझमें लय है,
मुझमें विलीन झंकार सकल, मुझमें लय है संसार सकल।'
'अमरत्व फूलता है मुझमें, संहार झूलता है मुझमें।'

उन्होंने दुर्योधन को कहा कि सारा ब्रह्माण्ड, चर-अचर जीव, नश्वर मानव-जाति तथा देवतागण, सभी उनमें निहित हैं। अन्ततः श्रीकृष्ण ने कुटिल दुर्योधन को अपना यह संकल्प सुनाया :

'हित-वचन नहीं तूने माना, मैत्री का मूल्य न पहचाना,
तो ले, मैं भी अब जाता हूं, अन्तिम संकल्प सुनाता हूं।
याचना नहीं, अब रण होगा,
जीवन जय या कि मरण होगा।'

भगवान श्रीकृष्ण अपना यह संकल्प सुनाकर चलने लगे, तभी मार्ग में उन्हें कर्ण मिल गया। उन्होंने कर्ण को बताया कि दुर्योधन पांडवों को पांच ग्राम तक देने को तैयार नहीं है और वह केवल युद्ध ही चाहता है। श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा—"फिर भी अभी एक उपाय शेष है। दुर्योधन को केवल तेरे ही बल की आशा है और तेरे ही बल पर वह युद्ध का आह्वान कर रहा है। तू वस्तुतः कुन्ती का प्रथम पुत्र है किन्तु पता नहीं, क्यों तू सूतपुत्र कहला कर अपमानित हो रहा है। कुन्ती का प्रथम पुत्र होते हुए भी तू अपने ही पाण्डव भाइयों का शत्रु बना हुआ है। यदि तू अब भी मेरा कहा मान ले तो सब कुछ ठीक हो सकता है। तू अपने पांच भाइयों से जाकर मिल जा, फिर तू देखेगा कि सारा पाण्डव परिवार तेरा आदर सम्मान करेगा। सभी पाण्डव तेरी सेवा करेंगे और इस प्रकार यह युद्ध भी समाप्त हो जायेगा। इस कार्य के लिए मैं तुझे समूचा कुरुराज समर्पित कर सकता हूं। यश, मान, सिंहासन सभी कुछ दे सकता हूं। बस तू कौरवों का साथ छोड़ दे।" श्रीकृष्ण की सारी बात सुनकर कर्ण बोला—"हे देव, जब मुझे अपने जन्म की दुखद कथा का स्मरण आता है तो मुझे अपनी माता कुन्ती के व्यवहार पर अत्यधिक ग्लानि का अनुभव होता है। जो माता जन्म देकर अपने पुत्र को नदी की धार में फेंक आती है, वह माता नहीं, विकराल सर्पिणी-तुल्य है। मैंने तो उसका दूध भी नहीं पिया और उसी के कारण मैं जीवन भर अपमान का विष-घूंट पीता रहा हूं। अब उसे मुझसे क्या प्रयोजन हो सकता है। अचानक ही मैं कैसे इतना पुण्य चरित्र बन गया? अब जबकि मैं नामी धनर्धर बन गया तो मुझपर इतना स्नेह क्यों आ रहा है? किन्तु अब मैं राधा को ही अपनी माता मानता हूं, वही मेरी वास्तविक माता है। जब सारा समाज मुझपर व्यंग्य-बाण छोड़ रहा था, जाति के नाम पर अपमानित कर रहा था, उस समय मुझे दुर्योधन ने ही सम्मान दिया था। इसलिए वह तो मेरे लिए सगे भाई से भी बढ़कर है। मेरा रोम-रोम उसका ऋणी है। मेरा सब-कुछ उसके लिए है। यदि मैं आपके कहने से उसका साथ छोड़ भी दूं, तब भी संसार मुझे कृतघ्न और विश्वासघाती मित्र कहकर धिक्कारेगा।" कर्ण कह रहा है—"यदि उस दिन, जबकि रंगभूमि में गुरु द्रोण ने मेरी जाति और कुल के

सम्बन्ध में पूछा, कुन्ती आगे बढ़कर कह देती कि मैं उसी का पुत्र हूं तो मैं भरी सभा में क्यों अपमानित होता, क्यों दुर्योधन को मेरे मान की रक्षा करने के लिए मुझे अंगदेश का राजा बनाना पड़ता। किन्तु अब वह घड़ी बीत गई। अब तो युद्ध अवश्य ही होगा। मेरे पास कुल और जाति की उच्च परम्पराएं नहीं हैं, मेरा एकमात्र सम्बल मेरा पुरुषार्थ है। मैं अब दुर्योधन का साथ कभी भी नहीं छोड़ सकता। मुझे साम्राज्य, वैभव-विलास की कोई चाह नहीं है, मैं तो केवल दुर्योधन के ऋण से उऋण होना चाहता हूं। ये वैभव-विलास मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति को क्षीण कर देते हैं।" अन्ततः कर्ण ने यही कहा—"मैं तो अब युद्ध करने के लिए विकल हो रहा हूं, देर मत कीजिए। फिर भी आपसे निवेदन है कि मेरी यह जन्मकथा युधिष्ठर से मत कहिए अन्यथा वे सिंहासन को ठुकरा देंगे और सारी सम्पति मुझे दे देंगे। पाण्डवों को कुछ भी न मिल पाएगा।" यह कहकर कर्ण श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श करके श्रीकृष्ण के रथ से उतर गया। श्रीकृष्ण के मन में कर्ण के प्रति अत्यन्त सम्मान का भाव जाग गया और वे मन-ही-मन बोल उठे:

वीर ! शत बार धन्य, तुझ सा न मित्र कोई अनन्य।
तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का है भूषण महान्।'

हो गया पूर्ण.........................राह बनाते हैं।

शब्दार्थ—सहास = प्रसन्नचित। पावक = अग्नि।

व्याख्या—पाण्डव लोग जब अपने बनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी करके लौटे तो वे और अधिक प्रसन्नचित थे। अग्नि में जिस तरह स्वर्ण और अधिक आभावान बन जाता है ठीक उसी प्रकार कठिनाइयों और आपदाओं में तप-तप कर पांडवों की वीरता और अधिक प्रखर बन गई थी। उनकी प्रत्येक शिरा में शौर्य प्रवाहित हो रहा था, उनके मुखमण्डलों पर कहीं अधिक उत्साह के भाव छलक रहे थे। कवि कहता है कि यह ठीक ही है कि विपत्तियाँ देखकर केवल कायर लोग ही घबराते हैं। जो वस्तुतः वीर और शौर्यवान होते हैं, वे आपदाओं को देखकर अपना धीरज नहीं खोते और तनिक भी विचलित नहीं होते। बल्कि वीर लोग तो आपदाओं एवं विघ्नों का स्वागत करते हैं और कण्टकों के मध्य से अपनी राह स्वयं बनाते हैं।

मुख से न कभी.....................पानी बन जाता है।

शब्दार्थ—गहते हैं = पकड़ते हैं। उद्योग-निरत = प्रयत्नशील। नित = नित्य; मग = रास्ता।

व्याख्या—कवि वीरों की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहता है कि कठिन से कठिन आपदाओं के उपस्थित होने पर भी उनके मुख से उफ तक नहीं निकलती और न वे संकटों के सामने नतमस्तक ही होते हैं। जो भी

विपत्ति उनके सामने आती है, वे उसे धैर्य के साथ सहन करते हैं और सदैव ही आपदाओं का मूल नष्ट करने तथा स्वयं ही आपदाओं पर छा जाने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। कवि कहता है कि संसार में ऐसी कोई भी कठिनाई नहीं होती जो वीर व्यक्ति के मार्ग को अवरुद्ध कर सके। जब मनुष्य ताल ठोककर बल का प्रयोग करता है तो पर्वत जैसी विकराल आपदाएं समाप्त हो जाती हैं। जब मनुष्य प्राणों की बाजी लगाकर बल-प्रयोग करता है तो पत्थर भी पानी बन जाता है अर्थात् बड़ी से बड़ी कठिनाइयां सहज बन जाती हैं।

गुण बड़े एक..................गले लगाते हैं।

शब्दार्थ—वर्त्तिका=दीवे की वत्ती। इक्षु दण्ड=ईख।

व्याख्या—कवि मानवीय गुणों की व्याख्या करते हुए कहता है कि मनुष्यों में एक से एक बढ़कर अच्छे गुण छिपे रहते हैं और वे इसी प्रकार छिपे रहते हैं जिस प्रकार कि मेंहदी में लालिमा और दीप की बाती में प्रकाश की मधुर रेख छिपी रहती है। मनुष्य के ये गुण आपदाओं के समय ही प्रकाशित होते हैं। जब तक मनुष्य प्रयास नहीं करेगा, अपने आपको साधेगा नहीं, तब तक उसके गुणों का प्रकाश उद्‌भासित नही होगा। कवि उदाहरण देते हुए कहता है कि ईख को पेरने पर ही उसमें से रस की धारा फूटती है, उसी प्रकार जब मेंहदी पत्थर से पीसी जाती है तभी वह स्त्रियों के हाथों की शोभा-शृंगार बनती है। जब फूलों के वक्ष में सूई पिरो दी जाती है तभी वे गले की माला का आदरणीय स्थान पाते हैं। कवि का आशय यह है कि मनुष्य के भीतर छिपे हुए नाना प्रकार के सदगुण आपदाओं की कठिन घड़ियों में ही प्रकाश में आते हैं।

विशेष—इसी प्रकार एक वात उर्दू के एक कवि ने इस प्रकार कही है—

'रंग लाती है हिना [मेंहदी] पत्थर पर घिस जाने के बाद।'

वसुधा का नेता ....शाल न मिलते हैं।

शब्दार्थ—वसुधा=धरती। भूखंड-विजेता=विश्वविजयी। अतुलित=अपार। यशक्रेता=यशस्वी।

व्याख्या—इसी प्रसंग में कवि कहता है कि इस संसार में वही व्यक्ति धरती के नेता, विश्वविजयी, यशस्वी और नवधर्म के प्रवर्त्तक हो सके हैं जिन्होंने जीवन में कभी भी आराम नहीं किया। ऐसे वीरों ने ही विघ्नों में रहकर भी अपना गौरव बनाया है और कीर्ति अर्जित की है। कवि कहता है कि जब विघ्न, कठिनाइयां और आपदाएं आती हैं, हमें सोते से जगा देती हैं। ये विघ्न हमारे मन में नवशक्ति का संचार करते हैं और शरीर को प्रतिपल नवजीवन की संजीवनी प्राप्त होती रहती है। निष्क्रियता हमें तन्द्रालस बनाए रखती है और ये कठिनाइयां हमें सदैव सत्पथ की ओर अग्रसर होने के लिए

प्रेरित करती रहती हैं। ये विघ्न वृथा ही नहीं जाते बल्कि हमें सजग और सचेत करके ही जाते हैं। कवि कहता है कि जिस प्रकार उपवन और जंगल एक ही बात नहीं होते उसी प्रकार आराम और संघर्ष दो अलग-अलग स्थितियां होती हैं। वर्षा, आँधियां और अखण्ड आतप, कठिनाइयां आदि ही वीरों के शृंगार-साधन हैं। इन्हीं आँधियों और कठिनाइयों में पलकर ही मनुष्य वस्तुतः पराक्रमी हो सकता है। कवि कहता है कि जंगलों में फूल तो खिल ही जाते हैं किंतु उपवनों में शाल वृक्ष के दर्शन नहीं होते अर्थात आपदाओं में तो प्रतिभा का विकास सम्भव है किन्तु आराम के क्षणों में तो परीक्षाएं होती ही नहीं हैं अतः प्रतिभा के विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।

कंकड़ियां जिनकी सेज.........कर सकती चिनगारी हैं।

शब्दार्थ – सेज सुघड़=सुखपूर्ण शैय्या। लाक्षागृह=लाख का बना घर, (लाख एक ज्वलनशील पदार्थ होता है)। ताजा=ताज।

व्याख्या—कवि यह बता रहा है कि आपदाओं से जूझने पर ही वीरों की परीक्षा होती है। जो वस्तुतः वीर होते हैं उन्हें सांसारिक वैभव-विलास की इच्छा नहीं होती। वे कंकड़ियों की सुखद शैय्या पर सोते हैं और उन पर केवल आकाश की छाया होती है। उन्हें आपदायें दूध पिलाती हैं और आंधियां लोरियां सुनाती हैं। कवि पाण्डवों की वीरता की ओर संकेत करते हुए कहता है कि वीर व्यक्ति वही होते हैं जो लाक्षागृह में जलाये जाने पर भी सकुशल निकल आते हैं। कवि किशोर वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहता है कि "हे किशोर, तुझमें अपार शक्ति संचित है। बढ़कर आपदाओं पर छा जा। कठिन परिश्रम से निकले स्वेदकणों को बह जाने दे। कठिन श्रम करने से तेरा शरीर वज्र की तरह कठोर बन जायेगा। अर्थात् तेरे मार्ग में आने वाली कठिनाइयां तुझमें और अधिक शक्ति का संचार करेंगी। तू स्वयं अपूर्व तेजधारी है, छोटी-छोटी कठिनाइयां तो चिनगारियों की तरह हैं जो तेरा कोई भी अहित नहीं कर सकतीं।" इन पंक्तियों में कवि बार-बार यही सिद्ध कर रहा है कि मार्ग की कठिनाइयां वीरों को और अधिक धैर्यवान तथा महावीर बनाती हैं। वीरता का वास्तविक विकास-मार्ग आपदाओं से होकर जाता है।

वर्षों तक बन...........असि न उठायेंगे।

शब्दार्थ—निखर=उज्ज्वल। सुमार्ग=अच्छा मार्ग। परिजन=अपने लोग।

व्याख्या—बनवास और अज्ञातवास की अवधि पूरी करने के बाद वापिस आए पाण्डवों का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वर्षों तक वनों में घूम-घूमकर, विभिन्न प्रकार की बाधाओं और कठिनाइयों को सहन करके पांडव लोग लौटे हैं। धूप, शीत, वर्षा आदि प्राकृतिक कठिनाइयों को सहने से उनका वीरत्व और अधिक निखर गया है अर्थात् वे और अधिक तेजवान होकर लौटे

हैं । कवि एक सार्वभौमिक उद्घाटन करते हुए कहता है कि जिस तरह मनुष्य का मार्ग सदैव कष्टपूर्ण नहीं रहता, उसी प्रकार उसका भाग्य भी सदैव सोया नहीं रहता । बुरे समय के पश्चात् अच्छा समय अवश्य आता है । कवि पांडवों के भाग्योदय की ओर संकेत करते हुए कहता है कि अब यह देखना है कि भविष्य में क्या होगा । इसी बीच भगवान श्रीकृष्ण मैत्री का वास्तविक अर्थ बताने तथा सभी लोगों को सत्पथ पर लाने का लक्ष्य लेकर दुर्योधन की सभा में आए । उनका हस्तिनापुर आने का उद्देश्य यही था कि दुर्योधन को समझा-बुझा कर युद्ध की सम्भावना को समाप्त किया जा सके । वे अपने साथ पांडवों का एक संदेश लेकर आए थे और उन्होंने दुर्योधन से कहा कि—"हे दुर्योधन, पांडवों के लिए आधा हिस्सा दे दो । फिर भी यदि तुम न्यायानुसार आधा हिस्सा नहीं दे सकते तो उनके लिए केवल पांच ग्राम ही दे दो । हम सब प्रसन्नतापूर्वक इसी में निर्वाह कर लेंगे किंतु आप भाइयों पर, अपने सम्बंधियों पर तलवार नहीं उठायेंगे ।"

विशेष—'सौभाग्य न सब दिन सोता है'—इस पंक्ति में कवि का आशावादी दृष्टिकोण सुस्पष्ट है ।

दुर्योधन, यह भी..............दुर्योधन ! बांध मुझे ।

शब्दार्थ—आशिष = आशीर्वाद । कुपित = क्रोधित । दिग्गज = दिशाएं ।

व्याख्या—दुर्योधन की स्वार्थपरता की ओर संकेत करते हुए कवि कहता कि यद्यपि श्रीकृष्ण पांडवों की ओर से एक अत्यन्त न्यायपूर्ण प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुए थे किंतु दुर्योधन ने उसे भी ठुकरा दिया और समाज का आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया । यदि वह श्रीकृष्ण का यह प्रस्ताव मान लेता तो युद्ध नहीं होता और तब सारा समाज मुक्तकण्ठ से दुर्योधन की सुबुद्धि की प्रशंसा करता । बल्कि सत्ता के मद में चूर हुआ दुर्योधन भगवान श्रीकृष्ण को ही बंदी बनाने की सोचने लगा, असाध्य को साधने का दुस्साहस करने लगा । सच ही तो है कि जब मनुष्य पर बुरा समय आता है तो उसकी बुद्धि तथा विवेक मर जाते है । हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है कि—'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ।' यही सब दुर्योधन के साथ हुआ । दुर्योधन के इस कुटिल चक्र को देखकर भगवान श्रीकृष्ण ने भीषण हुंकार किया और अपने रूप का विस्तार किया । जब श्रीकृष्ण ने अपना विकराल रूप धारण किया तो सारी दिशाएं कांप उठीं । भगवान क्रोध में होकर दुर्योधन से बोले—"हाँ हाँ, मुझे बन्दी बना । जंजीर बढ़ा और बांध ।"

यह देख, गगन....................सर, सिन्धु, मन्द्र ।

शब्दार्थ—परिधि-बन्ध = क्षितिज । मैनाक मेरु = दो पर्वतों के नाम । अकाण्ड = आकस्मिक । सुरजाति = देवतागण ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कुपित भगवान श्रीकृष्ण अपने विकराल रूप का वर्णन करते हुए दुर्योधन से कहते हैं - "हे दुर्योधन, देख यह सारा आकाश सारी वायु मुझमें लय है। विश्व का सारा कोलाहल और यहां तक कि सारा विश्व ही मुझमें समाया हुआ है। मैं ही अमरत्व रूपी स्वर्ग और विनाशरूपी धरती का स्वामी हूं। यह उदयाचल मेरा तेजपूर्ण मस्तक है और यह समूचा भूमण्डल मेरा वक्षस्थल है। मेरी भुजाएं इतनी बड़ी हैं कि उन्होंने क्षितिज को घेरा हुआ है और मेरे पैर मैनाक मेरु नामक दो पर्वतों की तरह विशाल हैं। आकाश में जितने भी ग्रह, तारे आदि चमकते दिखाई देते हैं, ये सब मेरे भीतर समाएँ हुए हैं। हे दुर्योधन, यदि तेरे पास आंखें है तो इस विचित्र दृश्य को देख। तुझे सारा संसार मेरे भीतर ही दिखाई देगा। सारे चर और अचर, नाशवान तथा कभी नष्ट कभी नष्ट न होने वाले जीव, नाशवान मानव-जाति तथा अमर देवतागण यह समूची सृष्टि मेरे भीतर ही लय है। करोड़ों सूर्य, चांद, नदियां, तालाव और उदधि मेरे भीतर ही विलीन हैं।"

विशेष—श्रीकृष्ण के अलौकिक रूप का यह वर्णन आध्यात्मिक दर्शन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

शत कोटि विष्णु ब्रह्मा ………… कहां इसमें तू है।

शब्दार्थ—जलपति = वरुण। धनेश = कुबेर। लोकपाल = दिग्पाल (इनकी संख्या आठ है)। गत = बीता हुआ। अनागत = भविष्य। आदि सृजन = आदि-सृष्टि।

व्याख्या—श्रीकृष्ण अपने अलौकिक रूप का वर्णन करते हुए दुर्योधन से कहते हैं कि - "दुर्योधन, यदि तेरी आंखें हैं तो देख, करोड़ों विष्णु, ब्रह्मा, महेश, करोड़ों इन्द्र, वरुण, कुबेर, करोड़ों रुद्र, काल और करोड़ो लोकपाल मुझमें ही व्याप्त हैं। अब तू जंजीर बढ़ा और यदि तू इन सभी सुरपतियों को बांधने की क्षमता रखता है तो बांध। दुर्योधन यह धरती, आकाश और पाताल, देख, भूत और भविष्य काल भी देख। यह सब मुझमें लय हैं। मुझ को बांधने से पहले यह समझ लो कि मेरे भीतर यह सब समाया हुआ है। इस संसार की आदि सृष्टि के दर्शन कर और देख, मैं अब तुझे महाभारत के दर्शन कराता हूं। महाभारत के रण की विभीषिका देख। सारी युद्धभूमि मृतकों से भरी हुई है और अब तू स्वयं अपने को पहचान।"

अम्बर में कुन्तल जाल ………… बांध कब सकता है।

शब्दार्थ—अम्बर = आकाश। कुन्तल-जाल = केशजाल। सूने = शून्य।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण अपने रूप की विराटता का वर्णन करते हुए दुर्योधन से कहते हैं—"हे दुर्योधन! आकाश में केशजाल की तरह छाये हुए काले बादलों को और धरती के नीचे स्थित पाताल लोक को देख। ये सब मेरे ही विराट रूप के अंश हैं। यह देख मेरे विकराल रूप में भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों काल विद्यमान हैं। ये सब मेरी मुट्ठी में बन्द हैं। हे दुर्योधन,

मुझे बांधने से पहले यह समझ ले कि सारा संसार मुझ में जन्म पाता है और मृत्यु के उपरान्त मुझी में समा जाता है अर्थात् मैं ही संसार के जन्म और मरण का कर्ता हूं। मेरी जिह्वा से मृत्यु रूपी ज्वाला निकलती है और मेरे सांस वायु को जन्म देते हैं। मैं जिधर भी अपनी दृष्टि फेरता हूं उधर ही समूची सृष्टि हर्ष में डूब जाती है। जब कभी मैं अपनी आंखें बन्द कर लेता हूं अर्थात् संसार से विमुख हो जाता हूं, सर्वत्र मरण की कालिमा छा जाती है। इसलिए हे दुर्योधन, यदि तू वस्तुतः मुझे बांधने आया है तो क्या मेरे इस विराट रूप के अनुरूप जंजीर भी लाया है या नहीं। यदि तेरा कुटिल मन मुझे बांधना ही चाहता है तो उसे पहले इस विशाल गगन को बांधने के लिए कहा। जब वह इस विशाल शून्य रूपी आकाश को ही नहीं बांध सकता तो मुझे कैसे बांध सकता है।"

हित-वचन नहीं ....नहीं जैसा होगा।

शब्दार्थ—मैत्री = दोस्ती। संकल्प = निश्चय। याचना = प्रार्थना। नक्षत्र-निकर = नक्षत्र समूह। वन्हि = आग।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन को अपना अन्तिम संकल्प सुनाते हुए कहते हैं कि—"हे दुर्योधन, मैंने जो तेरी भलाई की बात कही थी, तूने उसे ठुकरा दिया। तूने मित्रता के पीछे छिपी हुई सद्भावना का आदर नहीं किया। अब मैं जा रहा हूं किन्तु जाने से पूर्व मेरा अन्तिम संकल्प सुन लो कि अब प्रार्थना नहीं, रण होगा। अब या तो तुम्हें विजय प्राप्त होगी अथवा प्राण देने होंगे अर्थात् युद्ध निर्णायक होगा।" श्रीकृष्ण कहते हैं कि युद्ध होने पर नक्षत्र समूह आपस में टकरायेंगे और धरती पर विनाश की आग बरसेगी। शेषनाग का फण डोल जायेगा और मृत्यु का विकराल मुख खुल जायेगा। श्रीकृष्ण दुर्योधन को कहते हैं—'हे दुर्योधन, अब ऐसा युद्ध होगा जैसा कि आज तक नहीं हुआ होगा।"

भाई पर भाई ....अपने रथ पर।

शब्दार्थ—वायस = कौवे। शृगाल = गीदड़। दायी = उत्तरदायी।

व्याख्या—श्रीकृष्ण युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस युद्ध में भाई पर भाई आक्रमण करेगा और विषपूर्ण बाणों की वर्षा होगी। सर्वत्र मृत्यु की छाया मंडरायेगी और कौवों तथा शृगालों की मौज आ जायेगी। मानवता के भाग्य फूट जाएंगे और अन्ततः तुझे मृत्यु का वरण करना होगा यद्यपि इतने भीषण संहार का दायित्व तुझी पर होगा। श्रीकृष्ण के इस युद्ध-वर्णन को सुनकर वहां उपस्थित सारी सभा सन्न हो गई। लोग या तो चुप हो गये थे या बेहोश हो गये थे। एक विचित्र प्रकार के भय का वातावरण छा गया था। धृतराष्ट्र और विदुर, दो ही ऐसे व्यक्ति थे जोकि श्रीकृष्ण द्वारा किये गये इस युद्ध-वर्णन को सुनकर निश्चल बैठे थे। कहते हैं कि जब

श्रीकृष्ण ने अपना विकराल रूप प्रस्तुत किया तो कुछ समय के लिए धृतराष्ट्र की आंखों में ज्योति लौट आई थी इसलिए दोनों ही प्रसन्न मुद्रा में निर्भय बैठे हुए थे और श्रीकृष्ण की जयजयकार कर रहे थे। इस प्रकार रण का आह्वान करके श्रीकृष्ण उस सभा को छोड़कर चलने लगे। तभी कर्ण वहां आ पहुंचा। कर्ण संकोच में डूबा हुआ था और कुछ चकित भी था। श्रीकृष्ण ने बड़े प्रेम-पूर्वक उसे हाथ का सहारा देकर अपने रथ में बिठा लिया।

रथ चला परस्पर............ कि मरण केवल।

शब्दार्थ—शीतल = नम्र। क्षत्रिय समूह = क्षत्रिय जाति।

व्याख्या—जब श्रीकृष्ण और कर्ण रथ में चले जा रहे थे तो श्रीकृष्ण ने साम-दाम की विभेद नीति का आश्रय लेकर कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहा—"कर्ण, अब युद्ध को टालने का कोई उपाय शेष नहीं रह गया है। अब तो विवश होकर धनुष धारण करना ही पड़ेगा। अब तो क्षत्रिय जाति को युद्ध के क्षेत्र में उतरना ही होगा।" श्रीकृष्ण कहते हैं कि—"इस युद्ध को टालने के लिए मैंने क्या कुछ नहीं किया ? कितने व्यंग्य और अपमान नहीं सहन किये ? किन्तु कर्ण, मैं क्या करूं, यह दुर्योधन सत्ता के मद में अंधा हो गया है। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा है। उसे युद्ध के दुष्परिणामों का ज्ञान नहीं है। उसे तो अब केवल युद्ध ही चाहिए। वह सारी धरती को ही हड़पना चाहता है, वह युद्ध के लिए मतवाला हो गया है।"

हे वीर ! तुम्हीं बोलो............ अभी टल सकती है।

शब्दार्थ—अकाम = इच्छा-रहित। मति = बुद्धि। मूढ़ = मूर्ख। शोणित = रक्त। तप्त = गरम। निरशन = भूखे। विषण्ण दुःखी। समराग्नि = युद्ध की अग्नि।

व्याख्या—श्रीकृष्ण कर्ण को समझाते हुए कह रहे हैं कि—"हे निष्काम कर्ण, तुम्हीं बताओ, दुर्योधन के लिए पांच ग्राम देने में क्या कठिनाई थी। उसने पांच ग्राम भी देने से मना कर दिया। उसे यह भी भारी हो गया। वस्तुतः उस मूर्ख की मति मारी गई है। अब बताओ उसे कैसे समझाऊं ? कैसे इस युद्ध को रोकूं ? कर्ण तनिक सोचो कि जब युद्ध होगा तो कितना विकट दृश्य होगा। सर्वत्र मृत्यु मंडराएगी। बाहर युद्ध-क्षेत्र में तो वीरों का गरम लहू बहेगा और घरों में विधवाओं की चीत्कार सुनाई पड़ेगी। भूखे और दुखी बच्चे अनाथ होकर रोएंगे और चिल्लायेंगे।" श्रीकृष्ण कहते हैं कि—"हे कर्ण, मैं चिन्तित हूं कि अब मैं क्या करूं ? यह युद्ध कैसे टालूं ? शान्ति को छिपा कर कहां रख दूं ? मेरे सामने शान्ति के सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं, तथापि एक उपाय अभी बाकी है। यदि तुम मेरी बात मान लो तो युद्ध की यह विभीषिका अभी भी टल सकती है और शान्ति की रक्षा हो सकती है।"

विशेष—...... की विभीषिका का अत्यन्त मार्मिक वर्णन हुआ है

पा तुझे धन्य है..........................लड़ने को तत्पर।

शब्दार्थ—आस=आशा। अघटनीय=अनहोनी। कराल=भयंकर। कुक्षि=कोख।

व्याख्या—इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण कर्ण को दुर्योधन का साथ छोड़कर पाण्डवों के पक्ष में मिल जाने की मंत्रणा देते हुए उससे कहते हैं कि—"हे कर्ण तुझे पाकर दुर्योधन अपने आपको बहुत धन्य समझता है। तू ही उसके जीवन का एकमात्र आधार है और जब तक उसे तेरा आसरा है वह कभी भी इस युद्ध से विमुख नहीं होगा। तू ही उसका एकमात्र सम्बल है और तेरे ही बल पर वह इस युद्ध का आह्वान कर रहा है। यह देखो कितनी अनहोनी और भयंकर घटना है कि तू वस्तुतः कुन्ती का प्रथम पुत्र होते हुए भी अपमानित होता रहता है। सूतपुत्र बन तू अनादर सहन कर रहा है और कौरवों के दल में मिला हुआ है। आठों पहर धनुष-बाण लिए तू इन पाण्डवों से युद्ध करने को आतुर हुआ रहता है।"

मां का स्नेह पाया न कभी.............कर पांव पखारेंगे।

शब्दार्थ—सहोदर=भाई। तनय=पुत्र। ज्येष्ठ=सबसे बड़ा।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण अभी भी कर्ण को पाण्डवों के दल में मिल जाने के लिए प्रेरित करते हुए उससे कह रहे हैं कि—"कर्ण, वस्तुस्थिति तो यह है कि तुझे माता कुन्ती का प्यार नहीं मिला और इसी कारण तू अभी तक वस्तुस्थिति से अवगत नहीं है। यह भाग्य का चक्र ही है कि कुन्ती का पुत्र होते हुए भी तू पाण्डवों के शत्रुओं का साथ दे रहा है। उन्हींके प्रेमपाश में फंसा हुआ है। वस्तुतः जो तेरे सगे भाई हैं उन्हें तो तू शत्रु समझता है और जो तेरे शत्रु होने चाहिए थे, उन्हें तू अपना भाई मान रहा है।" श्रीकृष्ण पुनः कहते हैं—"मैं जानता हूं कि इस सबमें तेरा कोई दोष नहीं है, सारा दोष परिस्थितियों का ही है। किन्तु अब तुम मेरी बात मानो और मेरे साथ पाण्डवों के पास चलो। तुम्हारे वहां चलने से वर्षों से बिछुड़े हुए भाई पुनः मिल जाएंगे और फिर हम सब मिलकर हर्ष मनाएंगे। कर्ण, वस्तुतः तू ही कुन्ती का बड़ा पुत्र है और बल, बुद्धि, शील आदि की दृष्टि से तू सभी पाण्डवों में सर्वश्रेष्ठ है। जब मेरे साथ चलकर पाण्डवों से मिल जाएगा तो हम तुझे राज्यसत्ता सौंप देंगे, तेरा राज्याभिषेक करेंगे। सब मिलकर तेरी आरती उतारेंगे और तेरे चरणों को पखारेंगे।"

विशेष—इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण ने महाभारत के युद्ध को टालने के लिए अत्यन्त सराहनीय प्रयास किया है। उनका यह प्रयास निःसंदेह मानव-कल्याण की पुनीत भावना से अनुप्राणित है।

पद-त्राण भीम, पहनायेगा.........फूली न समायेगी।

शब्दार्थ—पद-त्राण = जूते । धर्माधिप = धर्मराज । पार्थ प्रवर = अर्जुन। सुभग = सुन्दर ।

व्याख्या—श्रीकृष्ण कर्ण को बता रहे हैं कि पांडवों के साथ मिल जाने पर सभी पाण्डव तेरे अनुचर होंगे। इसी प्रसंग में श्रीकृष्ण उससे कहते हैं—"जब पाण्डवों के साथ मिल जायेगा तो भीम तुझे जूते पहनायेगा, धर्मराज युधिष्ठर चंवर डुलायेगा, अर्जुन पहरे पर खड़ा होगा, सहदेव-नकुल तेरे सेवक होंगे। उत्तरा तेरे लिए भोजन बनायेगी और पांचाली तुझे पान खिलायेगी। हे कर्ण, जब ऐसा होगा तो यह दृश्य कितना सुन्दर लगेगा। युद्ध टल जायेगा और सारा संसार आनन्दित हो उठेगा। सभी लोग तेरी इस भूमिका को सराहेंगे, तेरे वास्तविक रूप से परिचित हो जायेंगे। और सबसे बड़ी बात यह है कि जब माता कुन्ती अपना खोया हुआ पुत्र पायेगी तो उसे वस्तुतः खोई हुई मणि प्राप्त हो जायेगी।"

रण अनायास रुक.............चुका हूं ग्लानि व्यथा।

शब्दार्थ—भावी = आने वाला। दिनमणि = सूर्य।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—"यदि तू पाण्डवों में जाकर मिल गया तो महाभारत का यह रण स्वयं ही रुक जायेगा और दुर्योधन की युद्ध-लिप्सा भी समाप्त हो जायेगी। सारा संसार युद्ध की विभीषिका से बच जायेगा। सर्वत्र हर्ष और शान्ति का वातावरण छा जायेगा। सब लोग मंगलगान गाएंगे और तेरे इस सहयोग के लिए तेरे ऋणी होंगे। सारी जनता तेरे लिए शुभकामनाएं मनाएगी। मेरा तो बस यही निवेदन है कि कौरवों का साथ छोड़कर महाभारत के इस विनाशकारी रण को रोक दे। यदि तुम यह सब करने को तत्पर हो तो मैं तेरे लिए समूचा कुरुराज्य, साम्राज्य, यश, मान, सत्ता, सिंहासन आदि समर्पित करने को तैयार हूं। तू बस यही भीख मुझे दे दे और इस प्रकार संसार के भावी दुखों का निवारण कर।" श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर कर्ण अधीर हो उठा और किंचित गम्भीर स्वर में श्रीकृष्ण से कहने लगा—"हे भगवन्, जो कुछ आपने कहा है, वही सब कथा मैंने सूर्य से भी सुनी है और वह सुनकर मुझे अत्यधिक ग्लानि की अनुभूति हुई।"

जब ध्यान जन्म का..............वह नारि नहीं।

शब्दार्थ—उन्मन = अनमना। कराल = निष्ठुर। अन्तर = हृदय।

व्याख्या—कर्ण अपने जन्म की दुखद कथा को याद कर रहा है। श्रीकृष्ण के सामदाम की विभेदी नीति के वचनों को सुनने के पश्चात् कर्ण उनसे कहने लगा—हे भगवन् श्रीकृष्ण, जब कभी मैं अनमना-सा होकर अपने जन्म की परिस्थितियों को याद करता हूं तो मैं यही सोचता हूं कि वह निष्ठुर माता कैसी होगी जो बालक को जन्म देकर नदी की धारा में बहा देती है अथवा उसे

जीवित दफना देती है। उस निष्ठुर माता को क्या कहें जो दस महीने तक शिशु को अपनी कुक्षि में पालती है, सेवा करती है, अपने जीवन का ही अंश उसे खिलाती है, अपने रुधिर से तैयार हुआ दुग्ध-पान कराती है और फिर जन्म देकर उस असहाय शिशु को कहीं भी फेंक आती है। निस्संदेह ऐसी माता कोई नारी नहीं अपितु सर्पिणी ही हो सकती है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण का संकेत माता कुन्ती की ही ओर है जिसने कौमार्यावस्था में कर्ण को जन्म दिया था और जो लोकलाज के भय से इस निरीह बालक को नदी की धारा के हवाले कर आई थी। वर्षों से कर्ण के मन में पल रही द्वेष-भावना अत्यन्त उग्र रूप में प्रकट हुई जोकि स्वाभाविक भी है।

हे कृष्ण आप ....बीता, मुझ पर बीता।

शब्दार्थ—श्रवण = कान। जनन = उत्पन्न करना। हिय = हृदय। पय = दूध। अपरिणीता = पवित्र (जिसने परिणय न किया हो)।

व्याख्या—कर्ण अपनी मनोव्यथा को ही स्वर प्रदान कर रहा है। उसके दुखी मन में वर्षों से संचित हो रही घृणा और द्वेष अनायास ही फूट पड़े, मानो किसी ने उसके घाव को छू लिया हो। कर्ण श्रीकृष्ण को कह रहा है—"हे भगवन्, इस सम्बन्ध में तो आप मौन ही रहें तो अच्छा है। कृपया इस प्रसंग को आगे न बढ़ाएं, मेरे कान यह सब नहीं सुनना चाहते। भगवन्, जिस माता ने मुझे उत्पन्न किया वह वंश को पालने वाली माता नहीं अपितु भयानक सर्पिणी की भांति थी। उसका हृदय माता का कोमल हृदय नहीं अपितु पत्थर की तरह कठोर था, उसे अपने पुत्र से अधिक सामाजिक मान-मर्यादा की चिन्ता थी। अपनी गोदी को सूना करके अर्थात् मुझे जल में प्रवाहित करके और मेरे कुल-वंश को छिपाकर उसने माता का नहीं अपितु एक शत्रु का-सा व्यवहार किया। उसने समूचे मातृ वर्ग के नाम को कलंकित किया।" कर्ण कह रहा है कि—"मैंने तो अपनी माता का दूध भी नहीं पिया। सारा जीवन मुझे उसी के कारण अपमान और अनादर का विषपान करना पड़ा। वह तो सदैव यशस्वनी बनी रही, उसकी कीर्ति भी शुभ्र एवं धवल बनी रही। मैं ही सर्वत्र अन्याय सहता रहा। सभी लोग मुझे हेय दृष्टि से देखते रहे। इतना सब करने पर भी तो वह पवित्र बनी रही और जो कुछ व्यथा, वेदना सहनी पड़ी वह सब मुझे ही सहनी पड़ी।"

विशेष—कर्ण की मनोव्यथा का वर्णन अत्यन्त प्रभावशाली और मार्मिक बन पड़ा है।

मैं जाति-गोत्र से हीन..................अंचल की देन सको।

शब्दार्थ—कटी नहीं = उस पर तब भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। पृथा = कुन्ती।

व्याख्या---कर्ण इसी क्रम में श्रीकृष्ण से कह रहा है कि---"माता कुन्ती के इस द्वेषपूर्ण व्यवहार के कारण मैं सदैव जाति-गोत्र विहीन बना रहा राजाओं की सभा में तिरस्कृत हुआ। इसी कारण मैं नित्य अपमान के, विष-घूंट पीता था। लोग मुझे शूद्र कहकर पुकारा करते थे किन्तु यह सब देखकर भी कुन्ती का पत्थर-सा कठोर हृदय नहीं पसीजा। उसके कठोर हृदय में तनिक भी दया का संचार नहीं हुआ।" कर्ण श्रीकृष्ण को अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कह रहा है---"उन दिनों मैं सूतपुत्र कहलाता था और अपमान एवं तिरस्कार का दारुण दुख सहन करता था। माता कुन्ती इस सारे दृश्य को देख रही थी किन्तु माता की ममता मौन ही रही। उससे यह भी न हुआ कि छिपकर ही कभी आकर मेरा कुशल-क्षेम पूछ लेती और मुझे ममता भरे मातृत्व की शीतलता प्रदान करती। यह ठीक है कि सबके सामने तो वह मुझे अपना पुत्र नहीं स्वीकार कर सकती थी किन्तु यदि उसके हृदय में मेरे प्रति वस्तुतः कोई ममत्व होता तो कम से कम छिपकर तो वह मुझे अपने आंचल की सुखद छाया में छिपा लेती।"

पा पांच तनय..................काट न खायेगा।

शब्दार्थ---सदय = दयावान।

व्याख्या---इसी प्रसंग में कर्ण श्रीकृष्ण को कहता है कि---'पांच पांडव-पुत्रों की माता हो जाने पर, माता कुन्ती दिन-रात सुख में खोई रहती थी और अभिमान में फूली रहती थी। उस समय कुन्ती पांच वीर पुत्रों की माता बनने में अपार गौरव का अनुभव कर रही थी। स्वभावतः वह मुझ जैसे दीन-हीन पुत्र को कैसे याद रखती। फिर अब वह मेरे लिए क्यों व्याकुल हो रही है? मुझे क्यों बुला रही है? मेरे से क्या प्रयोजन है?" कर्ण नारी मनोविज्ञान सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकट करते हुए कहता है---"क्या पांच पुत्रों के प्राप्त हो जाने पर, अथवा पुत्र के धन-धाम गंवा देने पर अथवा महानाश छा जाने पर अथवा मन घबराने पर नारियां सदय हो जाती है और क्या कुन्ती भी इसीलिए तो मुझे गले नहीं लगा रही? किन्तु जिस लोकलाज के भय के कारण वह उस समय मुझे नदी में बहाकर अलग हो गई थी, वह स्थिति तो अभी भी बदली नहीं है। अभी भी तो मैं वही कर्ण हूं। वह पाप तो मुझ में अभी है। अब ऐसी कौन-सी नई बात उत्पन्न हो गई जिससे कि वह पाप डर जायेगा अर्थात् नष्ट हो जायेगा। क्या वह पाप अभी भी कुन्ती को नहीं खायेगा? क्या वह पाप अभी भी कुन्ती के मन को नहीं कचोटेगा?'

सहसा क्या हाल..................सदा बरसाता था।

शब्दार्थ---अभिनन्दन = पूजन। कामी = इच्छुक।

व्याख्या—कर्ण अपनी माता के इस अप्रत्याशित ममतापूर्ण व्यवहार का रहस्य नहीं समझ पा रहा था। वह भगवान श्रीकृष्ण को ही सम्बोधित करते हुए कह रहा है—"हे भगवन, सहसा यह विचित्र स्थिति कैसे उत्पन्न हो गई और अचानक ही मेरे जैसा पापी पुण्यचरित्र कैसे बन गया ? कुन्ती वस्तुतः क्या चाहती है ? अब मुझे अपना पुत्र बनाकर क्या वह मुझे वस्तुतः ममता की शीतल छाया प्रदान करना चाहती है ? अथवा मुझे दुर्योधन से अलग करके पाण्डवों को विजयी देखना चाहती है ? यह अनायास ही मेरा अभिनन्दन क्यों होने लगा ? हे भगवन, अब जबकि मैं एक प्रसिद्ध धनुर्धारी बन गया हूं। सभी लोग मेरे हितैषी बन गए। यह विचित्र परिवर्तन कैसे हो गया ? परन्तु मैं अपने उस दुखद समय को कैसे भूल सकता हूं जबकि सारा निष्ठुर समाज मेरे लिए निर्दयी बना हुआ था। मेरे प्रति कोई भी तनिक-सा स्नेह नहीं दर्शाता था। सभी मुझे अपमानित और तिरस्कृत करते थे और मेरी जाति को लेकर मुझ पर व्यंग्य-बाण बरसाए जाते थे। यह सब परिवर्तन कैसा है ?"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने एक सार्वभौमिक तथ्य का वर्णन करते हुए यह सिद्ध किया है कि संसार शक्ति के सामने नतमस्तक होता है। अच्छे समय में सभी लोग साथी बन जाते हैं, निकट के सम्बन्ध जोड़ लेते हैं किन्तु बुरे समय में संगे सम्बन्धी भी भूल जाते हैं। कर्ण के जीवन में यह तथ्य पूर्णतया चरितार्थ होता है।

उस समय सुअंक..........समस्त सौभाग्य लिये।

शब्दार्थ—सुअंक = सुखपूर्ण गोदी। नृपता = राज्याधिकार। अवरुद्ध = रुका हुआ।

व्याख्या—कर्ण भगवान श्रीकृष्ण को कह रहा है कि—"हे भगवन्, जब मैं सारे समाज में अपमान और तिरस्कार का भागी बन रहा था और जब मुझे जन्म देने वाली माता ने मुझे नदी की धारा में प्रवाहित कर दिया था, उस समय मुझे राधा ने ही अपनी सुखद गोदी में रखा था और अपने आंचल से ढंक लिया था। वह राधा ही तो थी जिसने मेरे दुर्भाग्यपूर्ण रोदन को अपने स्नेहसिक्त चुम्बनों की बौछार से हर लिया था। फिर भला उस स्नेहमयी राधा के अतिरिक्त मैं किसकी बन्दना करूं। वही तो मेरी वास्तविक माता है, भला उसे मैं कैसे त्याग दूं। जब मैं असहाय रूप में धूल में पड़ा हुआ था अर्थात् उपेक्षित पड़ा हुआ था, उस समय राधा के स्नेह ही ने तो मुझ में प्राण फूंकें। भगवन्, अब आप ही सोचें कि राधा के प्रति मेरे सद्भावना तथा आदर के भाव उचित हैं कि नहीं। यह मैं आप पर ही छोड़ता हूं। ऐसी घड़ी में किसने मुझे सम्मान दिया ? किसने मुझे अंगदेश का राजा बनाकर मेरे सम्मान की रक्षा की और मुझे अपमान एवं अनादर की दुखद स्थिति से उबारा ? उस समय मुझे सर्वत्र निराशा ही निराशा दीख रही थी, सारा समाज मेरे प्रति क्रुद्ध था।

में एक प्रकार से निष्प्राण हो गया था। संकट की उस घड़ी में अचानक ही दुर्योधन आ गया और उसके पवित्र प्रेम ने ही मेरा दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल दिया। यदि उस समय वह नहीं आता और मेरे सम्मान की रक्षा न करता तो मेरा मन तो एकदम हताश हो चुका था।"

कुन्ती ने केवल ·· ·· ···नवजन्म दिया उसने।

शब्दार्थ - सोदर=सगा। रंक=फकीर।

व्याख्या—दुर्योधन के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कर्ण भगवान् श्रीकृष्ण से कह रहा है कि—"हे भगवन्, कुन्ती ने तो केवल मुझे जन्म दिया है किन्तु माता का स्नेह मुझे राधा से ही मिल सका है। किन्तु दुर्योधन ने तो मुझे वास्तविक जीवन दिया है इसलिए वह भी मेरे लिए मातृतुल्य है। मेरे मन में उसका स्थान सगे भाई से भी अधिक है। वह दुर्योधन ही था जिसने मुझे रंक से उठाकर राजा बना दिया, यश और सम्मान दिया, अंगदेश का राजा बनाने के प्रतीक स्वरूप मुझे मुकुट पहनाया। हे भगवन्, वह दुर्योधन ही था जिसने मुझे बांहों में उठाकर जगत के सामने सम्मानित किया। मेरे लिए उसने क्या कुछ नहीं किया? सच तो यह है कि मुझे उसने नया जन्म दिया है और इसलिए मैं जीवनपर्यन्त उसका ऋणी रहूंगा।"

है ऋणी कर्ण का············कायर, कृतघ्न कहलाऊंगा।

शब्दार्थ—सोम=चन्द्रमा। सुरपुर=स्वर्ग। कृतघ्न=जो किसी का उपकार नहीं मानता।

व्याख्या—कर्ण अपने मित्र दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से कह रहा है कि "हे भगवन्, सूर्य और चन्द्रमा इस बात के साक्षी हैं कि मेरा रोम-रोम दुर्योधन का ऋणी है। मेरा तन, मन, धन, मेरा जीवन, मेरा सब कुछ दुर्योधन का ही है। एक बार मैं सुरपुर अर्थात् देवलोक जाने का लोभ सवरण कर सकता हूं किन्तु यह निश्चित है कि मैं दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ूंगा। हे केशव, यह ठीक है कि उसे मेरे पराक्रम पर अत्यधिक भरोसा है, मुझ पर अटूट विश्वास है और यह भी सच है कि मेरे ही बल पर उसने इस महाभारत के युद्ध का आह्वान किया है किन्तु यदि इस कठिन समय में मैं उसका साथ छोड़ दूंगा तो मुझे कितना बड़ा पाप लगेगा। वैसे तो मैं उसके साथ खेलता खाता रहा, उसके कारण ही मुझे यश और सम्मान भी मिला किन्तु अब जबकि उस पर विपत्ति का पहाड़ टूटने वाला है, महाभारत का घमासान युद्ध होने वाला है, यदि मैं उसका साथ छोड़ दूंगा तो सारा संसार मुझे कायर और कृतघ्न कहकर मेरी भर्त्सना करेगा। ऐसी कठिन घड़ी में मैं उसका साथ छोड़कर कायर और कृतघ्न नहीं कहलाऊंगा।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण के चरित्र में और अधिक निखार आया है और उसकी चारित्रिक दृढ़ता का भी कुछ परिचय मिलता है।

मैं भी कुन्ती का..............अनोखा जोड़ लिया।

शब्दार्थ—प्रत्यय=विश्वास। फोड़ लिया=कूटनीति से अपनी ओर मिला लेना।

व्याख्या—इस सम्बन्ध में एक और सशक्त तर्क प्रस्तुत करते हुए कर्ण भगवान् श्रीकृष्ण से कहता है कि—"यदि मैं आपका प्रस्ताव मान भी लूं तो कौन इस बात पर विश्वास करेगा कि मैं भी कुन्ती का ही पुत्र हूं। यही नहीं, उस स्थिति में सारा संसार मुझे धिक्कारेगा और यह समझेगा कि राज्य मिलते ही कर्ण का मन-परिवर्तन हो गया। कर्ण वस्तुतः एक कृतघ्न और कायर पापी था। संसार केवल मेरी ही भर्त्सना नहीं करेगा अर्थात् केवल मुझे ही संसार के इन व्यंग्य-बाणों को सहन नहीं करना होगा अपितु अर्जुन की कीर्ति को भी कलंक का टीका लग जायेगा। सभी लोग यह कहेंगे कि अर्जुन कर्ण के पराक्रम को देख कर घबरा गया और उसने कूटनीतिपूर्ण चालें चलकर कर्ण को अपनी ओर ले लिया और इस प्रकार कर्ण के साथ यह एक नया नाता जोड़ लिया।"

कोई न कहीं भी..............नहीं स्वीकार मुझे।

शब्दार्थ—ले लील=डुबो ले।

व्याख्या—कर्ण कहता है कि, 'हे केशव, यदि मैं आपके कहने पर पाण्डवों में जाकर मिल जाऊं तो सभी लोग मुझे और अर्जुन को धिक्कारेंगे। कोई भी मुझे क्षमा नहीं करेगा। सभी मेरी इस स्वार्थपरता पर थू-थू करेंगे। उस स्थिति में तप, त्याग, शील, जय, योग, दान आदि मेरे सभी गुण मूल्यहीन हो जाएंगे और फिर लोग मुझे स्वार्थी तथा लोभी कहकर पुकारेंगे। ऐसी स्थिति में मैं संसार को कौन-सा मुख दिखलाऊंगा? हे भगवन्, जो बात आज आप मुझसे कह रहे हैं अर्थात् मुझे कुन्ती का पुत्र स्वीकार कर रहे हैं, यदि यही बात उस दिन रंगभूमि में माता कुन्ती भरी सभा में स्वीकार कर लेती तो यह सब स्थिति ही क्यों कर बनती अर्थात् जब उस दिन गुरु द्रोणाचार्य ने मुझसे मेरी जाति पूछकर मुझे भरी सभा में अपमानित कर दिया, माता कुन्ती आगे बढ़कर कहती कि मैं उसका पुत्र हूं तो मैं दुर्योधन का मित्र क्यों बनता? पाण्डव भी वन को क्यों जाते? यह युद्ध ही क्यों होता? किन्तु अब तो स्थिति बहुत बदल चुकी है, अब पता नहीं क्या होगा? इस समय तो मेरी नौका धारा के बीच में है और मुझे पता नहीं यह मुझे कहां ले जायेगी। कोई भी किनारा मुझे नहीं दीख रहा है। तथापि इतना निश्चित है कि ये धारा भले ही मुझे आत्मसात कर ले किन्तु मैं तब भी लौटूंगा नहीं। अब मैं अपने कर्तव्यपथ से विमुख नहीं हो सकता।"

धर्माधिराज का ज्येष्ठ..............खाते औ सोते हैं।

शब्दार्थ—धर्माधिराज=युधिष्ठिर। पोशाक=आवरण।

व्याख्या—कर्ण भगवान श्रीकृष्ण को कुल और जाति की उच्च परम्पराओं का खोखलापन दर्शाते हुए कहता है कि "हे भगवन्; यदि मैं पाण्डवों में मिल जाऊं और युधिष्ठिर का भी अग्रज बनकर भारत में सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति कहलाऊं और यदि कुल और जाति के कृत्रिम आवरणों को ओढ़कर सिर तानकर चलूं तो इस सबसे मुझे क्या मिलेगा ? यह यश, सुयश वृथा हैं। पाण्डवों के साथ मिल जाने पर यद्यपि मेरे पास जाति और कुल की उच्च परम्पराएं हो जाएंगी किन्तु मेरा जीवन निस्तेज हो जायेगा। मैं तो उन भाग्यहीनों में से हूं जो खुल कर अपना सही परिचय भी नहीं दे सकते, अपना नाम भी नहीं बता सकते। मैं तो उन भाग्यहीन लोगों में से एक हूं जिन्हें अपना परिवार त्यागना पड़ता है और अपने ही लोगों से युद्ध करना पड़ता है।"

विक्रमी पुरुष, लेकिन········ ···नहीं गति मेरी है।

शब्दार्थ—विक्रमी=पराक्रमी। कुरुपति=दुर्योधन । पार्थहार्थ=अर्जुन के हाथों।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वस्तुतः पराक्रमी व्यक्ति को जाति और वंश की उच्च परम्पराओं की कोई अपेक्षा नहीं होती। कर्ण कहता है—"तथापि, विक्रमी पुरुष अपने पुरखों द्वारा स्थापित परम्पराओं को लेकर नहीं जीते। वस्तुतः पराक्रमी व्यक्ति स्वयं अपने शौर्य को जाग्रत करके संसार में सम्मान का अधिकारी होता है। सभी लोग उसे अपना बनाना चाहते हैं और इसके लिए विविध प्रकार के प्रयत्न करते हैं। हे केशव, मेरा कोई भी कुल-गोत्र नहीं है, मेरा एकमात्र सम्बल, मेरी एकमात्र पूंजी मेरा बाहुबल है। कुल ने तो मुझे नदी की धारा के सहारे छोड़ दिया था, मैंने ही हिम्मत से काम लिया और अपने भीतर पराक्रम और शौर्य का विकास किया। अब मेरे पराक्रम और वीरता को देखकर मेरे ही वंश एवं कुल वाले लोग चकित हो गए हैं और स्वयं मुझे अपनाने के लिए उपस्थित हुए हैं। किंतु क्या आप समझते हैं कि मैं उनके साथ चल पड़ूंगा ? मैं अपने प्रण का पालन करूंगा और युद्ध के क्षेत्र में या तो दुर्योधन को विजय दिलाऊंगा अथवा अर्जुन के हाथों मृत्यु का वरण करूंगा। मेरे सामने यही दो विकल्प हैं, यही मेरा निश्चय है। केशव, इन दोनों विकल्पों के अतिरिक्त मेरे सामने कोई भी तीसरा मार्ग न तो है न हो सकता है।"

मैत्री की बड़ी सुखद··············स्वयं कट जाऊंगा।

शब्दार्थ—तरुवर=श्रेष्ठ वृक्ष। गही=पकड़ी।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण मैत्री भाव के पावन स्वरूप का वर्णन करते हुए कहता है कि, "हे केशव, मैत्री की बहुत ही सुखद छाया होती है। मित्रता के पवित्र बंधन में बंधकर मनुष्य को अपूर्व शीतलता और शान्ति प्राप्त होती

है। अतः जो व्यक्ति ऐसी सुखद छाया वाले पेड़ को कटवाएगा, वह अधम व्यक्ति होगा। ऐसा व्यक्ति वस्तुतः धिक्कारने योग्य है जो ऐसी शीतल छाया वाले वृक्ष को खड़ा होकर कटवाता है। अच्छा हो यदि वह उस पेड़ को कटवाने के स्थान पर स्वयं ही कट जाए।" कर्ण पुनः भगवान श्रीकृष्ण से कहता है कि—"जिस दुर्योधन की बांह मैंने पकड़ी है, अथवा जिस तरु की शीतल छाया के नीचे मैं बैठा हूं, उस पर मैं कोई प्रहार नहीं होने दूंगा। जीते-जी उसकी रक्षा करूंगा तथा उस पर कुठार नहीं चलने दूंगा। उस पर कुठार चलने से पूर्व मैं स्वयं कटना श्रेयस्कर समझूंगा।

मित्रता बड़ा अनमोल..........मात्र चुकाना है।

शब्दार्थ—स्कन्ध=कन्धे।

व्याख्या—कर्ण अपने दृढ़ निश्चय और दुर्योधन के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रदर्शन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से कहता है कि-"हे केशव, मित्रता एक अमूल्य रत्न की भांति है। इसे धन और वैभव की तुला पर नहीं तोला जा सकता। धरती क्या, यदि बैकुण्ठ भी मेरे सामने उपस्थित हो जाये तो मैं मित्रता के पुनीत भाव पर और दुर्योधन के चरणों में उसे भी न्यौछावर कर सकता हूं। हे भगवान, अपने कंधों पर जो सिर लिए हुए मैं चलता हूं, वह भी दुर्योधन के लिए है। मैं तो उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा हूं जबकि कोई दुर्योधन पर वज्र चलाये और मैं आगे बढ़कर उसे अपनी छाती पर ले लूं। मैं तो इस बात के लिए मचलता हूं कि कोई घड़ी ऐसी उपस्थित हो कि मैं उसके लिए अपना गला तक कटवा दूं। इससे अधिक मुझे और कुछ नहीं चाहिए। जहां तक साम्राज्य का प्रश्न है, वह या तो धर्मराज युधिष्ठिर को मिलेगा या दुर्योधन को। मुझे उसका लोभ नहीं है। मैंने तो केवल युद्ध लड़ना है दुर्योधन का साथ देना है। इस सबमें मेरा तनिक भी स्वार्थ नहीं है। मुझे तो केवल दुर्योधन का ऋण चुकाना है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने मित्रता के पुनीत भाव का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। इस प्रकार कर्ण की चारित्रिक दृढ़ता का भी पूरा परिचय मिलता है।

कुरुराज चाहता मैं..............भी न सकी मन को।

शब्दार्थ—समृद्धियों=वैभवों। तृष्णा=इच्छा।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण के चरित्र की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। यहां कर्ण के चरित्र के निस्वार्थ पक्ष का उद्घाटन हुआ है। कर्ण भगवान् श्रीकृष्ण को कहा रहा है—"यदि मैं दुर्योधन का साथ दे रहा हूं तो इसका अर्थ कदापि यह नहीं है कि मेरे भी कुछ स्वार्थ हैं। मुझे कुरुराज अथवा साम्राज्य की कोई कामना नहीं है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। मैं जीवन के मूल तत्वों को बहुत अच्छी तरह

जानता हूं तथा धन-वैभव आदि के प्रति मेरे मन में तनिक भी आकर्षण नहीं है। मैं तो इन्हें मिट्टी की तरह मूल्यहीन समझता हूं। मैं धन के अक्षय कोष का स्वामी अथवा साम्राज्य का सत्ताधारी बनना नहीं चाहता। धन-संचय अथवा सत्ता का सुख लूटना मेरा लक्ष्य नहीं है। मैं तो केवल भुजबल के सहारे विजयी होना चाहता हूं। और वैभव की अगणित समृद्धियों को सचित करने का कार्य तो मैंने दुर्योधन को सौंप दिया है। मेरे मन में तो ऐसी कोई भी इच्छा नहीं है।''

वैभव-विलास की चाह............हृदय का देते हैं।

शब्दार्थ—देवसरिता=गंगा। करतल=हाथों से। अत्यल्प=बहुत कम मात्रा में। हास=हर्ष। चाकचिक्य=तड़क-भड़क।

व्याख्या—कर्ण स्वयं अपने ही मुख से अपने चरित्र की रेखाएं उभारते हुए श्रीकृष्ण से कहता है कि—''हे भगवान्, मुझे किसी भी प्रकार के वैभव-विलास की कामना नहीं है। अपने स्वयं के लिए तो मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं तो केवल यही चाहता हूं कि मेरे हाथों से सदैव दान की पवित्र गंगा बहती रहे और निर्धनों एवं अभावग्रस्त व्यक्तियों को धनधान्य से पूर्ण करती रहे। हे केशव, यदि राज्य प्राप्त भी हो जाये, तो उसका क्या मूल्य है। मेरी दृष्टि से तो राज्य, वैभव-विलास—ये सभी अत्यन्त तुच्छ आकर्षण हैं। इन सबको प्राप्त करके भी मनुष्य को क्या मिलता है। वैभव-विलास की प्राप्ति के बाद उसकी चिन्ताएं बढ़ जाती हैं। केवल क्षणिक हर्ष, थोड़ी बहुत तड़क-भड़क और कुछ क्षणिक सुख की ही अनुभूति होती है। ये सब सांसारिक आकर्षण मनुष्य को वास्तविक आनन्द नहीं दे पाते। यही नहीं, यदि यह सब कुछ मिल भी जाता है तो भी क्या—अन्तिम समय में ये सारे वैभव-विलास यहीं छूट जाते हैं। अपने साथ मनुष्य कुछ भी नहीं ले जाता है।'' कर्ण कहता है कि, ''हे केशव, मुझ जैसे व्यक्ति धन का भार नहीं ढोते हैं अर्थात् मुझ जैसे व्यक्तियों के मन में धन के प्रति कोई आकर्षण नहीं होता। हम तो धन को इसलिए प्राप्त करते हैं कि उसे लुटाएं, निर्धनों में बांटें। हम जैसे लोग इस संसार से कुछ नहीं लेने और अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिए कृत संकल्प होते हैं।''

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण के निःस्वार्थ चरित्र की एक भव्य झांकी देखने को मिलती है। अन्तिम दो पंक्तियों में कर्ण के परोपकारी एवं प्रोज्ज्वल चरित्र की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। प्रसाद ने भी कामायनी में श्रद्धा के मुख से ऐसी ही बात इस प्रकार कहलवाई है :

> **'इस अर्पण में और नहीं कुछ**
> **केवल उत्सर्ग छलकता है।**
> **मैं दे दूं सब कुछ और न लूं कुछ**
> **इतना सा सरल झलकता है।'**

प्रासादों के कनकाभ..........मनुज को खाता है।

शब्दार्थ—प्रासाद = महल। कनकाभ = सुनहरी आभा वाले। तपःक्षीण = तप में क्षीण। किरीट = मुकुट।

व्याख्या—कवि ने इन पंक्तियों में यह बताया है कि वैभव-विलास की बहुलता मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को अवरुद्ध कर देती है। कर्ण भगवान् श्रीकृष्ण को ही कह रहा है कि—"महलों की सुनहरी आभा वाली चोटियों पर कबूतरों का ही वास होता है। गरुड़ कभी भी महलों में नहीं रहता। वह वैभव-विलास के प्रसाधनों से बहुत दूर कहीं पहाड़ों की कन्दराओं में रहता है। मनुष्य जब नाना प्रकार की सुख-समृद्धियों का संचय करता है तो निस्सन्देह उसकी तपस्या क्षीण पड़ जाती है और उसका आध्यात्मिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। सत्ता, मुकुट, मणियों से युक्त सिंहासन—वैभव-विलास के ये सारे साधन मनुष्य का तेज हर लेते हैं। इन सभी वैभवों की चकाचौंध में मनुष्यों का तेजमय रूप समाप्त हो जाता है। यद्यपि मनुष्य सदैव वैभव और सुख-समृद्धियों के लिए तरसता रहता है तथापि वास्तविकता यह है कि यही वैभव और समृद्धियां मनुष्य के शत्रु सिद्ध होते हैं, क्योंकि इन्हें प्राप्त करने के बाद उसका आध्यात्मिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।"

चांदनी पुष्प-छाया..........काटना है मुझको।

शब्दार्थ—आतप = धूप। प्रपात = झरने। अयन = घर। फणिबन्ध = नागपाश। अहिपाश = नागपाश।

व्याख्या—कर्ण की यह धारणा है कि आपदा मनुष्य को और अधिक बलशाली और शौर्यवान बनाती है। इसी धारणा को लिए हुए कर्ण भगवान् श्रीकृष्ण से कहता है कि—"चांदनी तथा फूलों की सुखद छाया मनुष्य को केवल कोमल बना सकती है किन्तु जब तक वह कठिनाइयों का अमृत नहीं छकेगा, आंधियों और कड़कड़ाती धूप का स्वाद नहीं लेगा तब तक वह सच्चे अर्थों में पुरुष नहीं कहला सकेगा। जो व्यक्ति विघ्नों एवं आपदाओं को नहीं हिला सकता वह पुरुष कहलाने का अधिकारी नहीं है।" वीरों की तुलना गरुड़ से करते हुए कर्ण कहता है कि—"गरुड़ पक्षी झंझावातों में भी उड़ता रहता है, आंधियां भी उसका मार्ग अवरुद्ध नहीं करतीं। वह झरनों का पानी पीता है और समूचे आकाश को अपना घर समझता है। (ऐसा कहा जाता है कि गरुड़ कभी भी घोंसला नहीं बनाता) और जहरीले सांपों को खाकर ही जीवनयापन करता है वास्तुतः वही गरुड़ पक्षी नागपाश से मुक्ति दिला सकते हैं और धरती पर सुखपूर्ण शान्ति पैदा कर सकते हैं।" कर्ण स्वयं अपनी तुलना गरुड़ से करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से कह रहा है कि—"हे श्रीकृष्ण, मैं भी पक्षिराज गरुड़ की भांति हूं। मुझे भी मुकुट और वैभव समृद्धियों की चाह नहीं है। इस समय दुर्योधन पर घोर विपत्ति आने को है, मैं किसी भी स्थिति में ... नहीं

छोड़ सकता। अब तो मुझे युद्ध-क्षेत्र में उतरना ही है और दुर्योधन को इस विपत्ति रूपी नागपाश से मुक्त कराना ही है।"

विशेष—पुराणों में ऐसी कथा आती है कि जब कभी भी कोई देवता नागपाश में फंस जाते हैं तो उन्हें मुक्त कराने के लिए पक्षिराज गरुड़ का आह्वान किया जाता है।

संग्राम-सिंधु लहराता.................सिंहासन को ठुकरायेंगे।

शब्दार्थ—ताण्डवी = भीषण। गोपन = रहस्य।

व्याख्या—कर्ण की यह धारणा है कि युद्ध टलने वाला नहीं है। वह श्रीकृष्ण को कहता है कि "हे भगवन्, मेरे सामने संग्राम रूपी समुद्र लहरा रहा है, प्रलय प्रत्यक्ष सामने खड़ा दीख रहा है। मेरी भुजाएं अत्यन्त युद्धातुर हैं, नसों में बिजली-सी प्रवाहित हो रही है। मैं तो अब तत्काल युद्ध-क्षेत्र में कूदकर विजय अथवा पराजय का वरण करना चाहता हूं। हे केशव, अब आप तनिक भी देर न करें, युद्ध ठन जाने दें, धनुष की डोरी तन जाने दें। अब देर करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आप देखेंगे कि युद्ध में अपूर्व शौर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन होगा। संसार को वीरों का एक युद्ध देखने का अवसर मिलेगा।" कर्ण श्रीकृष्ण से एक निवेदन और करता है कि—"हे भगवन्, मेरे जन्म के इस रहस्य को धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष प्रकट न कीजिए। यह दुखद कथा उनसे छिपा कर ही रखिए क्योंकि यदि उन्हें इसका पता लग गया तो वे सिंहासन तक को ठुकरा देंगे (युद्ध करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।)

विशेष—कर्ण को यह पूरा विश्वास है कि यदि युधिष्ठिर को यह पता लग गया कि वह भी पाण्डवों की भांति कुन्ती का एक पुत्र है तो वे कर्ण से बिलकुल युद्ध नहीं करेंगे और यही नहीं, राज-सिंहासन भी ठुकरा देंगे। वस्तुतः कर्ण के जन्म की यह दुखद कथा युधिष्ठिर सहित पांचों पाण्डवों में से कोई भी न जानता था।

साम्राज्य न कभी.................है भूषण महान्।

शब्दार्थ—वंचित = अभावग्रस्त। दिनेश = सूर्य। नरता = मानवता।

व्याख्या—कर्ण जानता था कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर को उसकी जन्म-कथा का पता चल गया तो वे सिंहासन को भी ठुकरा देंगे। अतः वह श्रीकृष्ण से कहने लगा—"यदि युधिष्ठिर को मेरी जन्मकथा का पता चल गया तो वे स्वयं साम्राज्य नहीं भोगेंगे, सारी सम्पत्ति, राजकाज मुझे दे देंगे। मैं भी वह सब नहीं रख सकूंगा और दुर्योधन को दे दूंगा। और इस प्रकार पाण्डव पुनः साम्राज्य से वंचित रह जायेंगे। उनके दुखों का अन्त नहीं होगा। इसलिए हे केशव, अब मैं चलता हूं, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। युद्ध की तैयारियां पूरी हो... अब तो आपके दर्शन युद्ध-क्षेत्र में ही होंगे। वहां मैं वाणों से

आपके चरण स्पर्श करूंगा। हे केशव, आपकी जय हो। सूर्य भगवान् भी नभ में विचरण करें और धरती पर अपना दिव्य प्रकाश बिखरा दें।" यह कहकर कर्ण श्रीकृष्ण के रथ से नीचे उतर आया। कर्ण की इस चारित्रिक दृढ़ता को देखकर भगवान श्रीकृष्ण का मन विस्मित हो गया। वे मन ही मन बोले— "वीर कर्ण, तुझे शत बार धन्य है। तुझ-सा सच्चा मित्र संसार में कोई नहीं मिलेगा। तू केवल दुर्योधन का ही मित्र नहीं सारी मानवता को तुझ पर गर्व है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण के चरित्र की भव्य झांकी देखने को मिलती है जिसके प्रति स्वयं भगवान श्रीकृष्ण अतुलनीय आदर का भाव रखते हैं। कर्ण को मानवता के भूषण के रूप में चित्रित किया गया है। निस्सन्देह वह मानवीय आदर्शों का तेज-पुंज है।

चौथा सर्ग

कथावस्तु—इस सर्ग में कवि दिनकर ने कर्ण द्वारा कवच-कुंडल के दान का मार्मिक वर्णन किया है। पाण्डव यह जानते थे कि जब तक कर्ण के पास कवच और कुण्डल हैं तब तक युद्धक्षेत्र में उसे पराजित करना सम्भव नहीं है अतः कर्ण के कवच-कुण्डल लेने के लिए एक सुनियोजित जाल रचा गया। एक दिन कर्ण जल में खड़ा हुआ पूजा कर रहा था कि वहां एक ब्राह्मण याचक उपस्थित हुआ। वह ब्राह्मण वेषधारी याचक वस्तुतः स्वयं देवराज इन्द्र (इन्द्र को अर्जुन का पिता माना जाता है) ही थे और वे अपने पुत्र अर्जुन को विश्व-जयी बनाने के लक्ष्य से कर्ण के द्वार पर ब्राह्मण का वेश धारण करके आए थे। वे यह भी जानते थे कि कर्ण के समान दानी और कोई नहीं है। कर्ण ने यह नियम बना रखा था कि पूजा करने के पश्चात् वह सभी याचकों को उनकी मनचाही वस्तुओं का दान करता था। यह सब जानते हुए देवराज इन्द्र छल-पूर्वक कर्ण के पास आए और पहले तो उन्होंने कर्ण की दानवीरता की खूब प्रशंसा की और फिर अपनी वाक्पटुता के बल पर कर्ण को कवच-कुण्डल जैसी महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का दान करने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार कर लिया। इस सर्ग में कर्ण की दानशीलता की पराकाष्ठा तो द्रष्टव्य है ही किन्तु उससे कहीं अधिक मनोरंजक देवराज इन्द्र की वाक्पटुता है।

अन्ततः देवराज इन्द्र छल, कपट तथा अपनी वाक्पटुता के बल पर कर्ण से कवच-कुण्डल प्राप्त कर लेते हैं। तथापि कर्ण के प्रोज्ज्वल एवं उदात्त चरित्र के सामने देवराज स्वयं को अत्यन्त दीन समझते हैं। उन्होंने कर्ण के भीतर एक अत्यन्त उदार एवं वचनप्रिय चरित्र के दर्शन किये हैं। कर्ण को भी यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होती कि यह ब्राह्मण वेषधारी याचक और कोई नहीं स्वयं सुरपति हैं। देवराज इन्द्र भी निस्संकोच रूप से यह स्वीकार कर

लेते हैं कि वस्तुतः वे इन्द्र ही हैं। इस पर कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उनके व्यक्तित्व के इस दुर्बल पक्ष का उद्घाटन कर देता है। वह इन्द्र से यहां तक कह देता है कि—"अर्जुन में यदि कर्ण को पराजित करने की इतनी प्रबल इच्छा है, तो उससे कहिए कि मेरी एक मोम की मूर्ति बनवा ले और उसे काट-कर कर्ण-विजयी कहलाने की अपनी साध को पूरी कर ले।" इस सर्ग में कर्ण के मन की निराशा को भी स्वर मिला है। अपूर्व बल और पराक्रम के प्रतीक कर्ण की सारी आकांक्षाएं खण्डित हो जाती हैं और उसका व्यथित मन एक-बारगी कह उठता है !

> सबको मिली स्नेह की छाया, नयी नयी सुविधाएं,
> नियति भेजती रही सदा, पर, मेरे हित विपदाएं,
> मन ही मन सोचता रहा हूं, यह रहस्य भी क्या है,
> खोज-खोज घेरती मुझी को क्यों बाधा विपदा है।

वह अपनी इस भाग्यहीनता पर रो उठता है। तथापि उसकी यह निराशा क्षणिक ही है। अन्ततः उसका पराक्रम और शौर्य जागृत हो जाता है। उसे इस बात पर परम गौरव की अनुभूति होती है कि उसने अर्जुन की भांति विजय के लिए सत्पथ का त्याग नहीं किया है। उसके समक्ष साध्य से अधिक महत्त्व साधनों की शुद्धता का है।

कर्ण से कवच-कुण्डल का दान लेने पर इन्द्र अपने भीतर ग्लानि का अनुभव करते हुए कर्ण को यहां तक कह देते हैं :

> तू दानी, मैं कुटिल प्रवंचक, तू पवित्र, मैं पापी,
> तू देकर भी सुखी और मैं लेकर भी परितापी।
> तू पहुंचा है जहां कर्ण, देवत्व न जा सकता है,
> इस महान पद को कोई मानव ही पा सकता है।

इन्द्र का मन अभी भी ग्लानि की अग्नि में दहक रहा था। वे किसी न किसी प्रकार अपने मन के इस व्यथा-भार से मुक्त होना चाहते थे। उन्होंने कर्ण को कोई वर मांगने को कहा। कर्ण ने केवल यही वरदान मांगा कि वह धर्म में लीन रहे। अभी भी देवराज इन्द्र का परितप्त मन संतुष्ट नहीं हो सका था। अन्ततः उन्होंने कर्ण को एकघ्नी नामक एक अमोघ अस्त्र दे दिया। किन्तु यह अस्त्र केवल एक बार ही प्रयोग में लाया जा सकता था। कर्ण को यह अमोघ अस्त्र देकर देवराज इन्द्र ने प्रस्थान किया। इस प्रकार इन्द्र ने अपने मन का व्यथा-भार हल्का कर लिया।

जीवन का अभिमान..........रोक नहीं लेते हैं।

शब्दार्थ—अभियान=गति। अजस्र=निर्बाध। अनल्प=कम नहीं अर्थात् अधिक। स्वत्व=अधिकार।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने मानव-जीवन की निर्बाध गति के लिए दान की महत्ता प्रतिष्ठित की है। कवि कहता है कि मानव-जीवन की निर्बाध गति दान के बल पर ही चलती है। कवि इस तथ्य की पुष्टि में एक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि जिस प्रकार दीपक में जितना अधिक तेल रूपी स्नेह जलता है, उसकी ज्योति का प्रकाश भी उतना ही अधिक व्यापक और निर्मल होता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य जितना अधिक दान करता है उसका जीवन भी उतना अधिक सहज और स्वाभाविक गति से चलता है। एी बड़ी भ्रान्ति यह रहती है कि जीवन में हंसकर अथवा रोकर जो-कुछ भक हम दान दे देते हैं, अहंकार के कारण हम यह समझ लेते हैं कि हमने अपने किसी अधिकार का त्याग किया है। कवि कहता है कि इस प्रकार की धारणा भ्रान्तिमूलक है क्योंकि मनुष्य 'अपना' कुछ दान नहीं करता। दान तो जीवन के झरने की तरह है। जीवन की गति ही दान पर निर्भर है। यदि मनुष्य उसे रोके रखता है तो वह अपनी मृत्यु से पहले मर जाता है। उसके जीवन की गति अवरुद्ध हो जाती है। इस सम्बन्ध में कवि वृक्षों का उदाहरण प्रस्तुत करते, हुए कहता है कि जब वृक्ष फलों का दान करते हैं तो वे कोई कृपा नहीं करते उनके जीवन की गति इसी पर निर्भर है। यदि वृक्ष भी मनुष्य की तरह स्वार्थी बन जाएं तो वे भी अपने गिरते हुए फलों को डाल पर ही रोक लें। वस्तुतः वृक्षों पर से फलों का गिरना वृक्षों के अपने कल्याण में है।

ऋतु के बाद..............उतना ही पाता है।

शब्दार्थ—आत्मघात=आत्महत्या । कीट=कीड़े । वारि=पानी । सुपूरित=परिपूर्ण । ऋजु=सच्चा ।

व्याख्या—दान की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब वृक्ष फलों का दान करते हैं तो ऐसा करना उनके अपने हित में है। यदि वे ऐसा न करें तो ऋतु बीत जाने के बाद डालों पर लगे हुए फल निश्चित रूप से सड़ जाते हैं। कवि कहता है कि जो कुछ भी देय वस्तु है, उसके प्रति मोह रखना स्वयं अपना ही नाश करना है। वृक्ष इसलिए फलों का दान देते हैं जिससे कि उसके रेशों में कीड़े न पड़ जाएं और उसकी डालियां स्वस्थ रहें तथा उनमें नये-नये फल-फूल लगें। इस प्रकार वृक्षों की दानशीलता में केवल परोपकार ही नहीं अपितु उनका अपना हित भी निहित है। इसी प्रकार नदी अपना पानी इसलिए देती है जिससे बादल पानी से परिपूर्ण रहें और उनकी वर्षा से पुनः सरिता भरती रहे और इस प्रकार दान-प्रतिदान का यह सनातन नियम चलता रहता है। जीवन के विकास का रहस्य यही है। कवि बताता है कि जगत जीवन के साथ दान का सच्चा और सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य जीवन में जितना कुछ दान करता है उतना ही उसे प्राप्त भी हो जाता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने दान और प्रतिदान की प्रक्रिया को मानव कल्याण के महान लक्ष्य से सम्बद्ध किया है।

दिखलाना कार्पण्य आप·········मोल चुकाने वाला।

शब्दार्थ—कार्पण्य = कंजूसी। पूर्णकाम = निष्काम।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कवि दान की महत्ता का वर्णन करते हुए कहता है कि जो व्यक्ति दान करने में कंजूसी अथवा संकोच करते हैं, वे किसी और को नहीं स्वयं अपने आपको धोखा देते हैं। अपूर्ण दान अर्थात् ऐसा दान जो पूरे मन से नहीं दिया जाता, दाता के जीवन की रिक्तता का प्रतीक है। जीवन में वही व्यक्ति निष्काम हो सकता है जोकि हंसते-हंसते अपना सर्वस्व दान कर सकता हो। दान का महत्व तभी है जबकि वह स्वेच्छा से और हंसते-हंसते किया जाय। कवि कहता है कि जो व्यक्ति अपना जीवन-घट आत्मदान से भरता है अर्थात् जो अपने जीवन का एकमात्र लक्ष्य आत्म-दान को मानता है और स्वेच्छा से ऐसा करता है वह व्यक्ति मर कर भी नहीं मरता अर्थात् अमर रहता है। उसकी सुकीर्ति कभी भी नष्ट नहीं होती। इस संसार में जहां कहीं भी ज्योति अथवा आलोक फैला हुआ है वहां निश्चित रूप से किसी न किसी व्यक्ति का महान् त्याग अथवा सर्वस्व दान दिखाई देगा। इस धरती पर दिखाई देने वाला यह प्रकाश और यह आलोक स्वयं इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि इसके पीछे किसी महान् तपस्वी का सर्वात्म त्याग अथवा सर्वस्व दान छिपा हुआ है।

व्रत का अन्तिम मोल··········चीख कर बोटी-बोटी बोली।

शब्दार्थ—सुपुनीता = पवित्र। अस्थि = हड्डी। त्वचा = खाल।

व्याख्या—इन तीनों पदों में कवि ने संसार की कतिपय उन महान् विभूतियों का वर्णन किया है जिन्होंने सर्वस्व त्यागकर ही समूचे मानव-जीवन को गति प्रदान की है और सर्वत्र एक दिव्य आलोक बिखेरा है। इन महान् विभूतियों का संक्षिप्त परिचय नीचे 'विशेष' में दिया गया है। कवि कहता है कि राम ने इस व्रत का मूल्य अपनी जीवन-संगिनी सीता को त्यागकर चुकाया था। सीता उनके हृदय की मणि की भांति थी। महर्षि दधीचि ने अस्थियां देकर और राजा शिवि ने अपने शरीर का मांस देकर इस महान् व्रत का मूल्य चुकाया था। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने अपने एकमात्र पुत्र के शव के लिए भी आधा कफन मांगकर अपने इस आत्मदान के महान् व्रत की पूर्ति की थी। ईसा भी संसार के हित के लिए सूली पर टंगे थे और उन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर आत्मदान के इस पुण्य व्रत का मूल्य चुकाया था। इसी प्रकार महात्मा गांधी ने भी अपने वक्ष पर तीन गोलियां खाकर संसार की समूची मानवता को नई गति प्रदान की थी। सरमद के समक्ष जब जीवन-दान की अन्तिम चुनौती प्रस्तुत हुई तो उसने हंसते हुए

अपने सारे शरीर की खाल खिचवा दी । विश्वप्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने भी अपने प्राणों की आहुति देकर आत्मदान के महान् व्रत का पालन किया था। उसने हसते हुए विष का प्याला होंठों से लगाया और अपने प्राणों का दान करके वह अमर हो गया । इसी प्रकार मंसूर नामक ईरानी सूफी संत ने भाग्य का परिहास सहन नहीं किया और अपने शरीर की बोटी-बोटी करवा कर ही इस महा दान के अमूल्य व्रत का पूर्ण मूल्य चुकाया था ।

विशेष—(१) **राम-सीता-कथा**—कहते हैं कि युद्ध में श्रीरामचन्द्र ने रावण को पराजित किया और सीता वापिस आ गई । तब प्रजा के किसी अत्यन्त सामान्य व्यक्ति के यह कहने पर कि, जो सीता रावण के पास इतने दिन रही है, वह निष्कलंक नहीं हो सकती—राम ने सीता का परित्याग कर दिया था ।

(२) **दधीचि-कथा**—पुराणों में एक कथा आती है कि एक बार एक राक्षस को मारने के लिए कुछ देवताओं ने महर्षि दधीचि से उनके मेरुदण्ड की हड्डी मांगी और महर्षि ने हंसते-हंसते अपनी उस हड्डी का दान दे दिया ।

(३) **महाराज शिवि-कथा**—इतिहास में एक कथा आती है कि एक बार एक शिकारी ने एक कबूतर को तीर मारा जो मूर्च्छितावस्था में राजा शिवि की गोदी में आ गिरा । जब शिकारी ने अपना शिकार मांगा तो राजा शिवि ने शरण में आए कबूतर को देने से मना कर दिया । शिकारी के आग्रह करने पर राजा शिवि ने कबूतर के भार के बराबर स्वयं अपने शरीर का मांस दिया था ।

(४) **सरमद-कथा**—इस कथा का सम्बन्ध औरंगजेब के शासन-काल से है । सरमद 'अनलहक' अर्थात् 'अहंब्रह्मास्मि' का सिद्धान्त मानते थे जो कि औरंगजेब जैसे धर्मान्ध एवं मदान्ध शासक के लिए असह्य था । ऐसी किंवदंती है कि जब औरंगजेब को सरमद के सम्बन्ध में पता लगा तो उसने इस महान् फकीर की सारी खाल खिचवा दी थी ।

(५) **सुकरात-कथा**—सुकरात अपने समय का सबसे बड़ा दार्शनिक एवं विचारक हुआ है । यह यूनान का रहने वाला था । कहते हैं कि उसे अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिए विष का प्याला पीना पड़ा था ।

(६) **मंसूर-कथा**—मंसूर एक सूफी संत था जो कि ईरान का रहने वाला था । सरमद की तरह मंसूर भी 'अनलहक' के सिद्धान्त का अनुयायी था । क्रूर शासकों ने उसके शरीर की बोटी-बोटी करवा दी किन्तु किंवदन्ती यह है की उसके शरीर की प्रत्येक बोटी चीख-चीख कर 'अनलहक', 'अनलहक' का उच्चारण करती रही ।

दान जगत का..................अनायास पता था।

शब्दार्थ—प्रकृत=स्वाभाविक, । विक्रमी=पराक्रमी । अमोघ=अखण्ड ।

व्याख्या—दान की महिमा का वर्णन करते हुए कवि पुनः कहता है कि मनुष्य दान देने में व्यर्थ ही डरता है, यह तो मनुष्य-जीवन का एक अत्यन्त प्राकृतिक और सहज धर्म है। इसी के कारण जीवन को गति प्राप्त होती है। जीवन की सहज गति का रहस्य यही दान है। दान देने में मनुष्य को घबराना नहीं चहिये, क्योंकि अन्तिम समय में तो मनुष्य को सब-कुछ दे देना पड़ता है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य के साथ कुछ भी तो नहीं जाता, सब यहीं रह जाता है, अतः दान देने में घबराना कैसा ? कवि कहता है कि वही लोग अमर कहलाते हैं जो सही समय पर दान करते हैं अर्थात् मृत्यु के बाद तो सर्वस्व दान करना ही पड़ता है, क्यों न जीते जी इस महान व्रत का मूल्य चुकाया जाय। कवि कहता है कि जो लोग समय पर दान नहीं करते हैं वे दान देकर भी मृत्यु को अंगीकार करते हैं। कवि का आशय यही है कि दान का महत्व तभी है जबकि वह समय पर दिया जाय। समय पर न दिया गया दान व्यर्थ है। दूसरे पद में मूल कथा पर आता हुआ कवि कहता है कि महान् पराक्रमी कर्ण भी दान के एक अखण्ड व्रत का पालन किया करता था। वह बहुत समय से इस पुण्य व्रत का पालन कर रहा था। उसका व्रत यह था कि सूर्य-पूजन के समय उसके पास जो भी याचक आ जाता था, उसे वह मुंहमांगा दान देकर ही भेजता था।

फहर रही थी..........कनक-खचित पर्वत-सा।

शब्दार्थ—चतुर्दिक्=चारों दिशाओं में। भाग्यहत=अभागे। पुण्य विवर =पुण्य का वेष धर कर। निकष=कसौटी।

व्याख्या—कवि कहता है कि कर्ण की इस दानशीलता की महिमा की विमल पताका चारों दिशाओं में फहर रही थी अर्थात् एक दानवीर के रूप में वह चारों ओर विख्यात था। कर्ण का नाम स्वयं में अपूर्व महिमा का परिचायक बन गया था। देश भर के ज्ञानी लोग उसका नाम सुनकर ही उसके प्रति नत-मस्तक हो जाते थे। अभागे लोग कर्ण का नाम लेने में ही अपना अहोभाग्य समझते थे। कवि कहता है कि ऐसी सुकीर्ति के स्वामी कर्ण के साथ भाग्य ने पुण्य के माध्यम से छल किया। प्रत्यक्ष रूप से तो भाग्य उसकी इस धवल कीर्ति को कलंकित कर नहीं सकता था अतः उसने छिपकर कर्ण के पुण्य-व्रत के माध्यम से ही कर्ण के साथ छल किया। यद्यपि उसके इस पुण्य व्रत की कसौटी उसकी दानशीलता थी किन्तु अब की बार इस व्रत का मूल्य देने के लिए उसे अपने शरीर को ही कसौटी बनाना पड़ा। स्वयं दुर्भाग्य विप्रवेष में उसके कठिन व्रत का भारी मूल्य लेने उपस्थित हुआ था अर्थात् दुर्भाग्य साकार हो उठा था। कवि कहता है कि एक दिन जब सूर्य आकाश में अस्त हो रहा

था कर्ण नियमानुसार जान्हवी नदी के किनारे आंखें बन्द किए पूजा में लीन था। उसका शरीर कमर तक पानी में था और वह किसी ध्यान में लगा हुआ था। नदी के जल में खड़ा हुआ कर्ण ऐसा लग रहा था कि मानो किसी समुद्र में सोने से जड़ा हुआ कोई पर्वत कटि-प्रदेश जलमग्न हो।

हंसती थी रश्मियां............कहीं कुछ डोला।

शब्दार्थ—रश्मियां=किरणें। कदली=केला। पारद=पारा। विहग=पक्षी। वीरुध—लता।

व्याख्या—कर्ण का दैनिक नियम था कि वह एक पहर तक सूर्य की उपासना करता था। इस समय वह नदी के जल में खड़ा हुआ सूर्योपासना में लीन था। इन पंक्तियों में कवि ने जल में खड़े हुए कर्ण के कवच-कुण्डलों की शोभा का वर्णन किया है। कवि कहता है कि जान्हवी नदी के जल पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं और जब ये किरणें कर्ण के कवच और कुण्डल को स्पर्श करती थीं तो वे स्वयं स्वर्ण की तरह बन जाती थीं। कर्ण उस किरण रूपी अमृत को पीकर विमल आनन्द का आस्वाद ले रहा था। इस अमृतपान से वह आनन्दित हो रहा था और यह आनन्द उसके मुखमण्डल पर भी प्रकट हो रह था। सूर्य की किरणें जब केले के चिकने पत्तों पर पड़ती थीं तो उन्हें देखकरा वर्णन करते हुए कवि कहता है कि पक्षीगण तट पर फैली हुई लताओं और टहनियों पर चहक रहे थे। कर्ण ने वहां पूजा के अन्य साधन भी जुटा रखे थे और इस प्रकार वहां का वातावरण धूप, दीप, कपूर, फूल आदि की सुगन्धि से महक रहा था। पूजा-उपासना के पूरा होने के पश्चात् कर्ण ने अपनी आंखें खोलीं तो उसे ऊपर तट पर पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई पड़ी।

कहा कर्ण ने............निधि मुझसे लेकर।

शब्दार्थ—अनुचर=सेवक। विपन्न=गरीब। वसन=कपड़ा। धाम=घर। न्यास=धरोहर। संचित=जुड़ी हुई।

व्याख्या—पत्ते की खड़खड़ाहट सुनकर कर्ण ने कहा—"बन्धु! कौन उधर है, मेरे सामने आओ। मैं अब तत्पर हूं, पूजा-ध्यान से निवृत्त हो चुका हूं, बताइए क्या आदेश है। अपनी कठिनाई बताओ, मैं तो तुम्हारा सेवक हूं। हे बन्धु, मैं तो गरीबों का मित्र हूं और आपकी सेवा के लिए तत्पर हूं। आप दान मांगिए। बताइए आपको क्या चाहिए—कपड़े, घर अथवा धन? आप कहें तो अपना यह छोटा-सा राज्य अथवा यह क्षणिक-भंगुर जीवन दे दूं।" कर्ण अपना दृढ़ संकल्प सुनाता हुआ कहता है कि—"यह तो सम्भव है कि कभी बदल सागर से निराश होकर लौट जाएं किन्तु यह कभी भी सम्भव नहीं होगा कि कोई याचक मेरे द्वार से खाली हाथ लौट जाए। मैंने तो सारे जीवन दूसरों के दुख दूर करने में ही अपना सौभाग्य समझा है। मुझ जैसे भाग्यहीन का एकमात्र

सुख यही रहा है। अब तुम आए हो तो मैं तुम्हें भी तुम्हारी धरोहर देकर उऋण होना चाहता हूं। कृपया मुझसे अपनी जुड़ी हुई निधि लेकर मुझे कृतार्थ करो।"

विशेष—दूसरे पद की निम्न पंक्ति में कर्ण की चारित्रिक दृढ़ता द्रष्टव्य है—

मेघ भले लौटें उदास हो किसी रोज सागर से,
याचक फिर सकते निराश पर, नहीं कर्ण के घर से।"

अरे कौन है....................अनेक नरों का।

शब्दार्थ तृप्त=संतोष। हेर=देखकर।

व्याख्या – इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से मनुष्य की दानवृत्ति के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन का परिचय दिया है। इस मानवीय वृत्ति का विश्लेषण करते हुए कवि कहता है कि—"हे बन्धु, यहां भिक्षुक कौन है और दाता कौन है। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकार के अनुसार एक दूसरे से नाना प्रकार के दान प्राप्त करता रहता है। जो कोई व्यक्ति किसी अन्य से कोई दान लेता है तो वस्तुतः वह दान नहीं है अपितु उसका स्वत्व ही है जो कभी न कभी किसी न किसी रूप में उसे मिलना ही है। जब मनुष्य किसी के आगे हाथ पसारता है तो क्या हाथ पसारने वाला व्यक्ति बदले में कुछ नहीं देता है?" कर्ण कहता है कि—"जब कोई व्यक्ति दान मांगने के लिए मेरे सामने हाथ फैलाता है तो क्या वह मेरी ओर तृप्तभाव से देखकर हार्दिक कृतज्ञता प्रकट नहीं करता है? मेरे लिए तो वही सब कुछ है। जब कभी कोई दीनहीन मुझसे दान ले लेते हैं तो उनकी संतोष भरी दृष्टि, उनकी कृतज्ञतापूर्ण गदगद वाणी, उनकी आंखों की तरलता ही मेरे एकमात्र पुरस्कार बन जाते हैं। मेरी तो वास्तविक प्राप्ति यही है कि मुझसे दान प्राप्त करके युग-युगों से मुरझाये अधरों पर तृप्ति की क्षीण रेखाएं खिच जाती हैं और अनेक व्यक्ति बदले में मुझे आशीर्वचन एवं सद्‌भावनापूर्ण विश्वास दे जाते हैं।

इससे बढ़कर.......... कार्य वाचक माना जाता है।

शब्दार्थ—पर=अन्य। गहन=गंभीर। त्रिलोक=तीनों लोक।

व्याख्या—कर्ण कहता है कि "जब मुझसे दान लेने वाले अभावग्रस्त व्यक्ति मुझे बदले में आशीर्वचन एवं सद्‌भावनापूर्ण विश्वास दे देते हैं तो मुझे कुछ और नहीं चाहिए। मुझे तो उनके आशीर्वचन पर ही गौरव की अनुभूति होती है।" कर्ण अपने जीवन-दर्शन को शब्दों में बांधते हुए कहता है कि—"यदि हमारे जीवन-दान करने से किसी अन्य व्यक्ति को प्राण मिल जाते हैं तो हमें हंसते हुए अपना प्राणोत्सर्ग कर देने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए।" कर्ण उस आगन्तुक को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—"आपको कोई मोल-तोल करने अथवा संकोच करने की आवश्यकता नहीं है, जो कुछ भी आपकी इच्छा हो मांग लीजिए। हमारा व्रत तो यही है कि याचक हमसे जो कुछ भी

मांगता है उसे हम वही कुछ देते आएं ।" कर्ण के इन गम्भीर वचनों को सुनकर वह विप्र कुछ चकित हुआ और तनिक भरमाया हुआ-सा लता के पीछे की तरफ से निकलकर सामने उपस्थित हो गया । उसने कर्ण से कहा—"हे कर्ण, आपकी जय हो ! हमने भी आपकी यह सारी सुकीर्ति सुनी हुई है और हम यह भी जानते हैं कि तीनों लोकों में आपके जैसा कोई दानी नहीं है । हमें यह भी ज्ञात है कि एक बार आप जो कुछ अपने मुख से कहते हैं, उसे अवश्य ही पूरा भी करते हैं और अपने दिये वचन के पूरा करने के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहते हैं । आपकी कीर्ति तो इतनी धवल है कि आपसे आश्वासन मात्र पाकर ही दीन-हीन निर्भय एवं निःशंक हो जाते हैं । कर्ण शब्द सर्वत्र ही कार्य-वाचक माना जाता है ।"

लोग दिव्य शत-शत.......... ....ही देखा जाता है ।

शब्दार्थ—मनुजलोक=मानवों का यह संसार । ललाट में=भाग्य में ।

व्याख्या—कवि बता रहा है कि निष्ठा के प्रतीक रूप में लोग नाना प्रकार के प्रमाण उपस्थित करते हैं । विप्रवेषधारी याचक कर्ण से कहता है कि—"आपकी गिनती शिवि, दधीचि और प्रह्लाद जैसी उन महानुभूतियों में होती है जिन्होंने अपने-अपने अखण्ड व्रत-पालन के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी थी । हे कर्ण, सभी लोगों को यह पक्का विश्वास है कि आपको मृत्यु का भी कोई भय नहीं है और आप हंसकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर सकते हैं ।" याचक पुनः कर्ण से कहता है कि—"यदि इस लोक में तुम्हारे जैसे दानी बने रहेंगे तो यह निश्चित है कि मनुष्यों की यह धरती स्वर्ग से भी कहीं अधिक आदर एवं सम्मान की भागी होगी । स्वर्ग स्वयं भीख मांगने के लिए धरती पर उतर आएगा । तथापि मनुष्य-जीवन में भाग्य भी बहुत बलवान होता है । किसी व्यक्ति को किससे कितना मिल पाता है, यह बात उस व्यक्ति के भाग्य पर भी निर्भर करती है ।" इन पंक्तियों में कवि यही कहना चाहता है कि दाता की दान करने की पूरी इच्छा और याचक की दान लेने की पूरी उत्कण्ठा के रहते हुए भी यह आवश्यक नहीं है कि मनुष्य को जो कुछ और जितना कुछ वह मांगेगा, मिल ही जाएगा । यह बात बहुत कुछ याचक के भाग्य पर भी निर्भर करती है ।

क्षुद्र पात्र हो.......... ....नित चंचल है ।

शब्दार्थ—क्षुद्रपात्र=छोटा बर्तन । कूप=कुआं । विधि=परमात्मा । उद्यम=परिश्रम । विधि का अंक=भाग्य में लिखा हुआ ।

व्याख्या—दान के प्रसंग में भाग्य की महत्ता का वर्णन करते हुए विप्र वेषधारी याचक कहता है कि—"किसी कुएं में डूबे हुए छोटे से पात्र में जितना पानी आता है, उससे अधिक पानी तो सागर भी नहीं दे सकता अर्थात् यदि पात्र ही छोटा हो तो देने वाले का क्या दोष । सागर जैसा पानी

का दानी भी पात्र से अधिक पानी कैसे दे देगा। अतः बड़े-बड़े दाताओं को देखकर बड़ी वस्तुओं की आशा करना ही पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः केवल ऊंची आकांक्षाएं रखना ही पर्याप्त नहीं है, उनके साथ-साथ भाग्य का बली होना भी आवश्यक है।" जब कर्ण ने देखा कि यह याचक मांगने में संकोच का अनुभव कर रहा है तो उसने उससे कहा—"हे ब्राह्मण देवता, आप बेकार ही भाग्य से डरे जा रहे हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप मुझे नहीं पहचानते। मेरी तो यह पक्की धारणा है कि पौरुष के समक्ष भाग्य भी नत-मस्तक हो जाता है। श्रीमन्! मैं स्वयं जानता हूं कि भाग्य में क्या लिखा है किन्तु मैं भाग्य से अधिक अपनी बांहों पर भरोसा रखता हूं। हे महाराज, यदि मनुष्य सच्ची लगन के साथ परिश्रम करे तो वह भाग्य के लिखे को बदल सकता है। पुरुषार्थ से तो भाग्य ही बदल जाता है। जहां तक मनुष्य की उच्चाकांक्षाओं का प्रश्न है, जीवन में उनका भी अपना महत्व होता है। मनुष्य का एकमात्र बल, उसके जीवन की एकमात्र प्रेरक शक्ति यही उच्च आकांक्षाएं होती हैं जो मनुष्य को सदैव गतिशील बनाए रखती हैं। ये उच्च आकांक्षाएं मनुष्य को सदैव जागरूक और सचेत रखती हैं।"

विशेष—कवि ने भाग्यवाद की तुलना में पुरुषार्थ की महत्ता की सफल प्रतिष्ठा की है। यही इस खण्डकाव्य का आधारभूत उद्देश्य है। कवि आद्योपान्त मनुष्य के पराक्रम और बल को भाग्यवाद से उच्चतर स्थान देता रहा है।

आगे जिसकी नजर....................है वचन हमारा।

शब्दार्थ—देवनिलय=देवलोक। समर=युद्ध।

व्याख्या—मानव-जीवन में उच्चाकांक्षाओं के महत्व की चर्चा करते हुए कर्ण उस याचक को कहता है—"जो व्यक्ति भविष्य की सुखद कल्पनाएं नहीं संजो सकता, वर्तमान से आगे की बातें नहीं सोच सकता, उस व्यक्ति का जीवन लक्ष्यहीन कहलायेगा, जो व्यक्ति उच्च अभिलाषाएं नहीं रखता, उसकी सामान्य अभिलाषाएं भी कहां पूर्ण हो सकती हैं। इसलिए श्रीमन्, इन सब बातों को छोड़कर अपनी मांग प्रस्तुत कीजिए। आप विश्वास करें कि आपको मुंहमांगी वस्तु मिलेगी।" कर्ण अपने व्रत की दृढ़ता का परिचय देते हुए उस याचक से कहता है—"हे श्रीमन्, धरती और आकाश में स्थित सुरलोक अपने-अपने स्थानों से डिग सकते हैं। कभी-कभी युद्ध के मैदान में बड़े-बड़े वीरों का हृदय भी डोल जाता है। यहां तक कि अचल पर्वत का आधार और ध्रुवतारा तक भी डोल सकते हैं किन्तु मेरा दिया हुआ वचन कभी नहीं डोल सकता।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण की वचनीयता एवं चारित्रिक दृढ़ता का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन प्रस्तुत किया है।

भलीभांति कस कर ………………… फिर वसुधा पायेगी।

शब्दार्थ—औदार्य=उदारता। द्विधा=अनिश्चय की स्थिति। विधु=चांद। वसुधा=धरती।

व्याख्या—इस प्रकार कर्ण को अच्छी तरह वचनबद्ध कर लेने के बाद वह ब्राह्मण वेषधारी याचक कर्ण से कहने लगा—"हे कर्ण, आप धन्य हैं। आप वस्तुतः दान के अखण्ड व्रतधारी हैं। आपकी इस अपूर्व उदारता को देखकर ही तो प्रत्येक याचक मुक्तकण्ठ से यह कहता है कि दानवीर कर्ण का वचन सदैव क्रियावाचक होता है अर्थात् उनकी कहनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता।" याचक पुनः कहता है—"हे दानवीर, स्वयं आपके मुख से ही आपकी वचनप्रियता को सुनकर मैं गद्‌गद् हो गया हूं। मुझे तो सब-कुछ प्राप्त हो गया लगता है। अब मुझे आपसे कुछ नहीं लेना है। अब तो मैं आपसे कुछ भी मांगे बिना वापिस जा सकता हूं। इसका कारण यह भी है कि मुझे जो कुछ मांगना है, उसे मांगते हुए मेरा मन शंकित हो जाता है और मैं एक प्रकार की अनिश्चय की स्थिति में घिर जाता हूं।" याचक अपने मन की द्विधा का वर्णन करते हुए कहता है कि—"हे दानवीर कर्ण, मुझे अपनी मनचाही वस्तु मांगने में इसलिए संकोच अनुभव हो रहा है कि यदि आप मेरी मांगी हुई वस्तु मुझे नहीं दे सके तो मैं तो किसी न किसी प्रकार अपनी अभिलाषा को त्यागूंगा ही किन्तु उससे आपकी धवल सुकीर्ति कलंकित हो जावेगी। फिर यह धरती आप-सा निष्कलंक चांद पुनः कब प्राप्त कर सकेगी।" कवि का आशय यह है कि यदि याचक को मुंहमांगी वस्तु न मिल सकेगी तो याचक तो किसी न किसी प्रकार सन्तोष करेगा ही किन्तु दाता की धवल कीर्ति अवश्य फीकी पड़ जायेगी। फिर इस धरती पर कर्ण जैसा प्रोज्ज्वल व्यक्ति कहां से आएगा।

है सुकर्म क्या ………………… ………योनि इतर हैं।

शब्दार्थ—अभंग=जो भंग न हुआ हो। हरि के मायाचर=विष्णु के भेजे हुए गुप्तचर। योनि इतर=योनि से बाहर।

व्याख्या—याचक पुनः कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहता है—"हे दानवीर कर्ण, अब आप ही बताइए कि क्या आपसे मनस्वी व्यक्ति को संकट में डालना ठीक होगा। यदि आप मेरी मनचाही वस्तु न दे सके तो स्वाभाविक है कि आपका वचन टूट जायेगा और उस स्थिति में मैं संसार को क्या उत्तर दूंगा? सारा संसार मुझे धिक्कारेगा कि मैंने धरती का पुण्य लूट लिया और मेरे कारण ही आपका वचन भंग हुआ। अन्यथा आपका वचन कभी भी भंग नहीं हुआ था। इसलिए हे श्रीमन, अब मुझे विदा दें। मैं निराश होकर नहीं अपितु अत्यन्त सन्तुष्ट होकर जा रहा हूं।" इस पर कर्ण ने याचक को कहा—"आप तो वस्तुतः एक अत्यन्त अद्‌भुत मांगने वाले हैं। कहीं आप

देवता अथवा यक्ष अथवा विष्णु के भेजे हुए मायावी गुप्तचर तो नहीं हैं क्योंकि यदि आप सामान्य याचक होते तो अभी तक अपना मन्तव्य प्रकट कर देते और अपनी मुंहमांगी वस्तु प्राप्त कर लेते। मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि आप मनुष्य हैं अथवा मनुष्य से भिन्न किसी अन्य योनि के व्यक्ति हैं। आपका व्यवहार बहुत ही अद्भुत है।"

भला कौन-सी ....एक बार भी 'नाहीं'।

शब्दार्थ—नश्वर = नाशवान। सदेह = शरीर सहित। साकल्य = समग्रता। अयश = अपयश।

व्याख्या—कर्ण याचक को पुनः आश्वस्त करता हुआ कहता है कि—"हे विप्रदेव, भला इस नाशवान व्यक्ति से आप ऐसी कौन-सी वस्तु मांगेंगे जिससे न देकर मैं अपने वचन को भंग करने का अभिशाप ढोऊंगा और आप भी मेरे द्वार से निराश होकर अपनी इच्छा त्यागेंगे। गोधन, धरती, धन, घर आदि आपको जितने भी चाहिएं, मैं दिला सकता हूं,। यही नहीं, यदि आपकी इच्छा हो तो मैं अपना यह सिर कटवा कर भी आपके चरणों मे अर्पित कर सकता हूं। यदि आप मुझे सशरीर अपने साथ ले जाना चाहें तो भी मैं अपने वचन को पूरा करूंगा और आपके-से ब्राह्मण याचक को निराश नहीं जाने दूंगा। यदि आप ऐसा ही चाहते हैं तो मैं आपके साथ सशरीर चलने को तत्पर हूं। मैं अपना सारा जीवन आपकी समग्रता का भार ढोता रहूंगा और अपनी सारी आयु आपके चरण धोते-धोते बिता दूंगा।" कर्ण पुनः इस याचक से कहता हैं कि, "हे विप्र-देव, एक बार मांगने का निश्चय कर लेने पर न मांगना बड़ी विचित्र बात है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो राधा का सुत कर्ण आपकी सेवा में अर्पित नहीं कर सकता। इसलिए हे ब्राह्मण देवता, संकोच को त्याग कर अपनी मनचाही वस्तु मांगिए तो सही, और मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपको अपनी मनचाही वस्तु अवश्य मिलेगी। मैं कभी भी आपकी मनचाही वस्तु देने से मना नहीं करूंगा क्योंकि मुझे ऐसे अपयश की मृत्यु स्वीकार नहीं है। मैं एक बार भी 'ना' करके अपयश का भागी नहीं बनूंगा।"

सहम गया सुन ....गम्भीर कर मन को।

शब्दार्थ—शपथ = कसम। विद्युत = बिजली।

व्याख्या—कर्ण की इस शपथ को सुनकर ब्राह्मण वेषधारी देवराज इन्द्र का हृदय हिल गया। उन्होंने अपने भीतर साहस बटोरकर कर्ण के सम्मुख अपना मन्तव्य रखा। ब्राह्मण कर्ण से कहने लगा—"हे दानवीर, मैं आपसे धन की भीख लेकर अपना घर भरने नहीं आया हूं। मैं यह भी नहीं चाहता कि आपसे राजा को अपनी चाकरी में रखूं। इन सभी वस्तुओं की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मेरी कामना है कि आप धर्म को बल प्रदान करें। यदि आप वस्तुतः मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो अपना कवच और कुंडल दे दें।" याचक की इस

विचित्र और कुटिल मांग को सुनकर कर्ण को बिजली-सी छू, गई वह कांप उठा। फिर कुछ सोचकर और गम्भीर होकर वह बोला—"मैं समझ गया हूं कि आप याचक नहीं बल्कि स्वयं देवराज इन्द्र हैं।"

समझा, तो यह और ……………क्यों अशुभ विचारें ?

शब्दार्थ—सुरपति = इन्द्र (अर्जुन के पिता)। केवल गन्ध जिन्हें प्रिय = ऐसा कहा जाता है कि देवता लोग केवल सूंघते हैं, जीभ से स्वाद नहीं लेते। व्योमवासी = सुरलोक के रहने वाले। सुयोग = सुअवसर। अशुभ = बुरा।

व्याख्या—विप्र वेषधारी याचक की इस अप्रत्याशित माँग को सुनकर कर्ण उससे कहने लगा—"श्रीमन्, मैं समझ गया हूं कि आप और कोई नहीं स्वयं देवराज इन्द्र ही हैं। मुझे इतना ज्ञान है कि आप प्रसन्न होकर मेरे जीवन को नई गति देने के उद्देश्य से यहाँ आये हैं। हमारी वह सुकीर्ति धन्य है जिसे सुन कर आप सुरलोक त्यागकर धरती पर आए हैं और इस प्रकार स्वयं स्वर्ग ही धरती से भीख माँगने उपस्थित हुआ है।" कर्ण पुनः कहता है—"हे देव-राज, क्षमा करें कि मैं आपको आरम्भ में नहीं पहचान सका और इसका एकमात्र कारण यही था कि आप छिपकर विप्र का वेष धारण करके आये थे—मैं तो आपको गरीब ब्राह्मण ही समझ रहा था और इसीलिए मैंने आपसे धन, धरती, घर आदि लेने का आग्रह किया था। अन्यथा मैं भी आपको क्या दे सकता था। आप-से सुरलोक के वासी तो केवल सूंघते भर हैं, फिर भला मेरे जैसा व्यक्ति आपकी क्या सेवा कर सकता था, सुरगण धरती के लोगों से क्या अपेक्षा कर सकते हैं? तथापि जब आप सुरपति होते हुए भी एक भिक्षुक का रूप धारण करके मेरे द्वार पर आए हैं तो मैं इसे अपना सौभाग्य ही सम-झूंगा। इस सुअवसर को मैं बुरा नहीं समझता।"

विशेष—इन पंक्तियों में दानवीर कर्ण के व्रतपालन की पराकाष्ठा देखी जा सकती है।

अतः, आपने जो ……………………देह कवच से खाली।

शब्दार्थ—निष्प्राण = निर्जीव। शर—तीर।

व्याख्या—जब कर्ण को यह पता लग गया कि स्वयं इन्द्र ही छल से उसका कवच-कुंडल लेने आए हैं तो उसका मन व्यथाभार से तड़प उठा। अपने चरित्र की उदात्तता की समुचित रक्षा करते हुए वह देवराज इन्द्र से कहने लगा—"हे देवराज, ठीक है। आपने मुझसे जो-कुछ माँगा है, वही आपको दूंगा। मैं अपने दिये वचन से फिर कर शिवि, दधीचि आदि द्वारा स्थापित उच्च परम्पराओं का अनादर नहीं करूंगा। इन महान् विभूतियों द्वारा स्थापित आदर्शों का अनादर करके अपयश का भागी नहीं बनूंगा। आपने जो कुछ मांगा है, वही दूंगा। तथापि इतनी बात अवश्य पूछता हूं कि मुझ-से कवच और कुंडल मांगकर मुझे जीवित ही क्यों छोड़े जा रहे हैं? मेरे प्राण

भी क्यों नहीं ले लेते ? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप मुझे जीवनदान इसलिए दे रहे हैं जिससे कि अर्जुन विजयी हो और आप उसकी विजय पर प्रसन्न हो सकें।" कर्ण कहता है कि—"आप मुझे सम्भवतः इसीलिए जीवित छोड़ रहे हैं जिससे कि अर्जुन के अमोघ बाण मुझ पर टूट कर निष्प्रभावी न बनें। आप यही चाहते हैं कि अर्जुन की रक्षा तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण करें और इधर मैं कवच और कुंडलविहीन होकर अर्जुन से युद्ध करूं।"

तनिक सोचिए वीरों.........................न हारता नर है।

शब्दार्थ—समर=युद्ध। अपर=दूसरा। निहत=निहत्था। शरभ=हाथी का बच्चा। आखेटक=शिकारी। मृगपति=शेर।

व्याख्या—कर्ण विप्रवेषधारी देवराज इन्द्र से युद्ध-धर्म की दुहाई देते हुए कह रहा है—"हे सुरपति, आप तनिक यह सोचिए कि जब आपने छलपूर्वक मेरे कवच-कुंडल ले लिए हैं तो क्या मेरा और अर्जुन का यह युद्ध वीरोचित होगा ? इस प्रकार मुझे कवच-कुंडलविहीन कराके यदि अर्जुन ने मुझे मार भी दिया तो क्या वह अमर हो सकेगा ? आपने आज जो कुछ मेरे साथ किया है, वह ऐसा ही है जैसे दो बाजों में से एक के पंख काट देना और इस प्रकार दूसरे बाज को अभय बना देना। आपका यह छली रूप एक देवता को ही शोभता है, मनुष्य को नहीं। मनुष्य ऐसा अन्याय कभी नहीं करता। वह धर्म-युद्ध का पालन करता है। आपने जो कुछ किया है वह तो ऐसे ही है जैसे किसी निहत्थे हाथी के बच्चे पर चढ़कर कोई अपने आपको शिकारी घोषित करे। आपका यह कृत्य ऐसा ही है जैसे किसी सिंह को जहर पिला दिया जाए और फिर उसके साथ लड़ा जाए (वह तो जहर पीकर स्वयं ही मर जायेगा)। निस्सन्देह, यह तो युद्ध से डर कर युद्ध से विमुख हो जाने जैसा अथवा विजय निश्चित हो जाने पर शत्रु का सामना करने जैसा है।" कर्ण पुनः साधनों की शुद्धता की दुहाई देते हुए इन्द्र से कहता है कि, "हे देवराज, क्या आप इसे उचित समझते हैं कि जिस व्यक्ति को हम बाहुबल से न जीत सकें, उसे छल और कपट का सहारा लेकर जीतें ? क्या ऐसा करना न्याय के प्रतिकूल नहीं होगा ? जय-पराजय अपने आपमें कोई महत्व नहीं रखती। वीरता की सच्ची पहचान तो युद्ध में होती है। जो मनुष्य अपने सत्पथ पर अडिग रहता है, वह युद्ध के मैदान में पराजित होकर भी विजयी कहलाएगा।"

विशेष—यहाँ कवि ने कर्ण के व्यंग्य-बाणों को अत्यधिक पैना बना दिया है। व्यंग्य की कचोट के साथ-साथ संवेदनशीलता भी विद्यमान है।

और पार्थ यदि........ ....कौन कवच-कुंडल से।

शब्दार्थ—पार्थ=अर्जुन। विकल=आकुल। विधि=तरीका।

व्याख्या—कर्ण के प्रतिशोध का मुख्य केन्द्र-बिन्दु अर्जुन ही है। अतः अर्जुन के प्रति अपनी क्रोधाग्नि को स्वर देते हुए कर्ण देवराज इन्द्र से कहता है

"यदि अर्जुन बिना युद्ध किये ही मुझे जीतने के लिए बहुत अधिक व्याकुल है तो मैं इसका भी एक सरल उपाय बताता हूं। उससे कहिए कि वह मेरी एक मोम की मूर्ति बनवा ले और फिर उसे काटकर संसार में अपने को कर्णजयी घोषित करे। हे इन्द्र, यह निश्चित है कि प्रत्यक्ष समर में वह मुझे नहीं जीत सकेगा और कर्ण को जीतने की कामना उसके मन को तड़पाती रहेगी। सभी वीरों ने युद्ध के क्षेत्र में अपने बाहुबल से ही विजयश्री प्राप्त की है। मैं ही केवल ऐसा था जो कवच और कुण्डल के कारण सुरक्षित था और मुझ पर बाहुबल प्रभाव-शून्य रहता किंतु अब तो वह भी जाता रहा।"

मैं ही था अपवाद·······················शाप भयानक पाया।

शब्दार्थ—विभेद=अन्तर। तनुत्र=कवच। दैवीय=ईश्वरीय। परिभव=अनादर।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण इस बात पर संतोष प्रकट करता है कि अब वह भी ईश्वरप्रदत्त कवच-कुण्डलों से विहीन होकर सामान्य योद्धा बन गया है। वह देवराज से कहता है—"मैं ही एकमात्र ऐसा व्यक्ति था जिसके पास बाहुबल के अतिरिक्त ईश्वर-प्रदत्त कवच-कुंडल भी थे। मुझमें और अन्य वीरों में केवल यही अन्तर था और आज मैं उस अन्तर को भी समाप्त कर रहा हूं। आज मैंने अपने इस कवच का त्याग कर दिया है। हे देवराज, आपने अच्छा ही किया कि मुझसे मेरे कवच-कुण्डल लेकर मुझे अन्य वीरों के बराबर ले आए। मेरे इन ईश्वर-प्रदत्त कवच-कुण्डलों को लेकर आपने मुझमें और सामान्य व्यक्ति के मध्य कोई अन्तर नहीं रहने दिया।" कर्ण कहता है—"अब संसार यह नहीं कहेगा कि मेरे पास कवच और कुण्डलों का ईश्वरीय बल भी था और मैं इसी कारण जीता हूं। हे देवराज, मेरे भाग्य ने मेरे साथ हर बार छल ही किया है। मेरे साथ क्या-क्या अन्याय नहीं हुए। कौन-सी आपत्ति मेरे सिर पर नहीं आई? आप जानते ही हैं कि मेरा जन्म तो कहां (अर्थात् कुरुवंश जैसे प्रतिष्ठित वंश में) हुआ और पालन-पोषण नीच सूतवंश में हुआ। अज्ञात कुल में जन्म लेने के कारण मैं सदैव अनादर सहता रहा। मुझे मेरे शौर्य और पराक्रम के लिए किसी भी रूप में प्रोत्साहन नहीं मिला और इस दृष्टि से मैं सदा-सदा से असफल रहा हूँ। जब गुरु द्रोणाचार्य के हाथों भी मुझे तिरस्कार और अनादर ही मिला तो मैं शस्त्र-विद्या सीखने के लिए भृगुपति अर्थात् परशुराम की सेवा में गया किन्तु वहाँ भी असफलता ने मेरा साथ नहीं छोड़ा। मैंने परशुराम की अथक सेवा की, गुरु-भक्ति के प्रतिमान स्थापित किये किन्तु अन्ततः वहां भी मुझे भयानक शाप ही प्राप्त हो सका। मेरा जीवन असफलता की करुण गाथा है।"

और दान, जिसके·······················क्यों बाधा विपदा है।

शब्दार्थ—ख्यात=प्रसिद्ध। मग=मार्ग।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण के पराजित मन की झांकी देखी जा सकती है। निरन्तर दुर्भाग्य के थपेड़े किस प्रकार अच्छे से अच्छे पौरुषवान व्यक्ति को भी तोड़ देते हैं—इन पंक्तियों में यही दर्शाया गया है। कर्ण अपने मन की इस निराशा को स्वर देते हुए कहता है—"मेरे दुर्भाग्य की पराकाष्ठा यह है कि अपनी जिस दानवृत्ति के कारण मैं संसार भर में प्रसिद्ध था, वही दानवृत्ति मेरे विजय-मार्ग में विघ्न सिद्ध हो रही है क्योंकि उसीके कारण मुझे अपने ये कवच-कुण्डल देने पड़ रहे हैं और इस प्रकार विजय मुझसे और दूर होती जा रही है।" कर्ण देवराज इन्द्र से पूछता है कि "क्या ब्रह्मा के लिए मुझे इस प्रकार छलना उचित था? क्या उनके लिए यह उचित था कि हवन करते समय मुझे इस निराशा की अग्नि में जलाएं?" कर्ण अपने निराश मन के व्यथाभार को अभिव्यक्ति देते हुए कहता है कि "सभी लोगों को नित्यप्रति नई-नई सुविधाएं और स्नेह की छाया मिलती रहती है किन्तु मेरे दुर्भाग्य की पराकाष्ठा यह है कि मुझे केवल आपदाएं ही प्राप्त हुई। मैं कई बार अपने मन में यह सोचता रहता हूं कि मेरे इस दुर्भाग्य का क्या रहस्य है? ये सारी बाधाएं-विपत्तियां आदि-क्या मेरे ही लिए बनी हैं? ये मेरा ही पीछा क्यों करती रहती हैं?"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण ने नियति की क्रूरता पर कड़ा व्यंग्य करके अपने मन की हताशा एवं निराशा को सफल अभिव्यक्ति प्रदान की है।

और कहें यदि ………………… बाधाओं से लड़ने को।

शब्दार्थ—विरंचि = ब्रह्मा। सुगत = सरल। आगार = भंडार। धृति = धैर्य।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कर्ण नियति के क्रूर थपेड़ों का वर्णन करते हुआ कहता है कि "यदि मेरा यह सारा दुर्भाग्य पूर्वजन्म के पापों का फल है तो मैं यह नहीं समझ पा रहा हूं कि ईश्वर ने मुझे ये कवच-कुण्डल दिये ही क्यों? ब्रह्मा की यह जटिल माया मेरे लिये अभी भी रहस्यमय बनी हुई है। जब ईश्वर ने मुझे इतना सब दिया तो भाग्य-दोष क्यों दिया। यही तो नियति की क्रूरता है कि सब कुछ पाकर भी मेरे पास कुछ नहीं रहा। यदि होता ही नहीं तो मुझे छिन जाने का दुख नहीं था किन्तु सब-कुछ देकर वापिस ले लेना दुर्भाग्य ही तो है। यही कारण है कि मुझे मेरे किसी भी व्रत का पुण्य प्राप्त नहीं होता बल्कि वस्तुस्थिति तो यह है कि सीधा-सच्चा धर्म भी मेरे लिए प्रतिकूल बन जाता है। मेरी स्थिति तो उस अभागे व्यक्ति की-सी है जो गंगा जैसे पवित्र कुरुवंश में जन्म लेकर भी उस वंश का नहीं बन सका। गंगा में जन्म लेकर भी गंगाजल से वंचित रहा। निश्छल रूप से सत्कर्मों में लीन रहकर भी मैं विजय प्राप्त नहीं कर सका।" कर्ण अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए कहता है कि "पता नहीं, प्रकृति ने मुझे जन्म ही

क्यों दिया और यदि दिया भी तो मुझमें अपार पौरुष, करुणा और धैर्य का अक्षय भंडार क्यों भर दिया ? प्रकृति ने मुझे देवताओं जैसे सभी गुणों का दान तो दिया किन्तु पता नहीं, क्यों मुझे केवल बाधाओं और आपदाओं से जूझने के लिये इस धरती पर छोड़ दिया ?"

विशेष— इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से भाग्य की विडम्बना का अत्यन्त मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। छायावाद के युगप्रवर्त्तक कवि प्रसाद ने भी 'कामायनी' में भाग्य की इस विडम्बना की चर्चा इस प्रकार की है :

"ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सकें, यह विडम्बना है जीवन की।।"

फिर कहता हूं........................वक्ष पृथुल में।

शब्दार्थ—स्यात् = सम्भवतः। पृथुल = विशाल ।

व्याख्या – कर्ण के मन की क्षणिक निराशा अन्ततः समाप्त हो जाती है और पुनः उसका शौर्य और पराक्रम उछालें मारता है। वह अपने आपको दीन-दलितों का प्रतिनिधि मानता है। वह कहता है कि "मैं फिर कहता हूं कि मैं इस धरती पर व्यर्थ नहीं आया हूं मैं संसार के लिए एक नया संदेश लेकर आया हूं। सम्भवतः मुझे मनुष्यों को एक नया पाठ सिखाना है और जीवन में विजयश्री प्राप्त करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण कार्य करने हैं।" जीवन जय के लिए कर्ण को कुछ करतब दिखलाने हैं। कर्ण उन करतबों का वर्णन करते हुए कहता है कि "वह करतब यह हैं शूर जो चाहे कर सकता है। जो वस्तुतः वीर होता है वह भाग्य के मस्तक पर अपना पांव रख के अपना मार्ग प्रशस्त करता है। वह करतब यह है कि वास्तविक वीरता किसी वंश या कुल की उच्च परम्पराओं की अपेक्षा नहीं करती, वह तो व्यक्ति के विशाल वक्ष में छिपी होती है।"

वह करतब है यह...............किसी लोभ से छल को।

शब्दार्थ—रिपु = शत्रु। छद्म = कपट। अवलंब = सहारा।

व्याख्या—कर्ण अपने करतबों का वर्णन करते हुए कहता है कि— "व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि भले ही सारा संसार शत्रु हो जाये, धर्म पीड़ा का कारण बन जाये और पुण्य के कारण भले ही व्यक्ति को ज्वालाओं का ताप सहन करना पड़े, फिर भी वीर पुरुष अपने सत्पथ पर अग्रसर रहता है। सच्चा वीर पुरुष अपने सुस्थापित सत्पथ के प्रति पूर्ण निष्ठावान होता है और वह अपने शौर्य एवं पराक्रम के बल पर ही आपदाओं के अंधड़ों को शान्त कर लेता है। वीर पुरुष का कर्तव्य यह है कि वह या तो शत्रु को मारे अथवा स्वयं उसके हाथों प्राणोत्सर्ग कर दे किन्तु फिर भी साधनों की शुद्धता को बनाये रखे। जीवन-जय के लिए कुपथ पर पांव धरना विरोचित नहीं है। वह कर्तव्य यह है कि यदि मनुष्य को सत्पथ पर चलते समय अपने प्राणों की आहुति भी देनी पड़े तो

भी उसे विजय की प्राप्ति के लिए कुपन्थ पर पांव नहीं रखना चाहिए। साध्य से अधिक महत्वपूर्ण साधनों की शुद्धता होती है इसलिए मनुष्य को केवल विजय प्राप्ति के लिए अपने हाथों में कुपन्थ की कालिख नहीं लगने देनी चाहिए।" कर्ण कहता है कि, "हे देवराज, मैं अपने साथ कोई छल, कपट, अथवा स्वार्थ लेकर नहीं आया हूं। मैंने इन सब गलत साधनों का आश्रय कभी नहीं लिया है। मैं तो केवल उन्हीं लोगों का आदर्श बनने आया हूं जिन्हें अपने बाहुबल के अतिरिक्त कोई भी अन्य सहारा नहीं है। मैं उनका आदर्श हूं जो धर्म के मार्ग को छोड़कर कभी भी छल-कपट आदि का सहारा नहीं लेते।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से अपने जनवादी दृष्टिकोण को अत्यन्त सशक्त स्वर प्रदान किया है। रश्मिरथी का नायक कर्ण दीनहीनों का नेता-सा लगता है।

मैं उनका आदर्श..............................काल कलपना होगा।

शब्दार्थ—ताड़ेगा = धिक्कारेगा। निःसीम = असीम। कलपना = तड़पना।

व्याख्या—कर्ण कहता है कि "मैं उन लोगों का आदर्श हूं जिन्हें कुल अथवा वंश का गौरव धिक्कारेगा और जिन्हें समाज नीच-वंश-जन्मा कह कर पुकारेगा।" कर्ण कहता है कि "मैं उन दीनहीनों का आदर्श हूं जो सामाजिक विषमताओं की आग में जलते रहेंगे और जिन्हें पग-पग पर असीमित एवं असंख्य बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। मैं उन लोगों का आदर्श हूं जो अपनी मनोव्यथा को मुंह पर भी न ला सकेंगे और जब समाज उनसे उनके वंश का परिचय पूछेगा तो वे ग्लानिवश मौन ही रह जाएंगे। मैं ऐसे लोगों का आदर्श हूं जिनका इस संसार में अपना कहने को कोई भी नहीं होगा और जो जीवनभर अतृप्त आकांक्षाओं और कामनाओं के लिए तड़पते रहेंगे।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से सामाजिक विषमताओं पर करारा व्यंग्य कसा है जोकि मनोव्यथा का स्पर्श पाकर और भी अधिक तिक्त हो गया है।

मैं उनका आदर्श..............................से महादान देता हूं।

शब्दार्थ - विशिष्ट = महत्वपूर्ण। सन्धि = समझौता। संबल = सहारा।

व्याख्या—कर्ण पुनः कहता है कि "मैं उन लोगों का आदर्श हूं जो आपदाओं के बादल घिर आने पर भी नहीं घबराते हैं और अपने चरित्रबल के सहारे ही समाज में आदरपूर्ण स्थान के अधिकारी होते हैं। ऐसे चरित्र के धनी लोगों के सामने राज्य-सिंहासन ही नहीं अपितु स्वयं सुरलोक भी नतमस्तक हो जाता है। ऐसे वीर लोगों का एकमात्र व्रत धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व लुटा देना होता है।" कर्ण कहता है कि "मैं उन वीरों का आदर्श हूं जो श्रम करने से कभी नहीं घबराते और जिन्हें दुखों से भी भय

नहीं लगता। मैं ऐसे दृढ़चरित्र लोगों का आदर्श हूं जो अपार वैभव एवं सुख की प्राप्ति के लिए भी अपने साधनों की शुद्धता की बलि नहीं देते।" कर्ण एक नये धर्म की व्याख्या करते हुए बताता है कि—"कर्ण-धर्म यह होगा कि मनुष्य इस धरती पर बलिदान देने से तनिक भी न घबराये। इस नये धर्म के अनुसार मनुष्य जिस शान और गौरव से जियेगा, उसी शान और गौरव से उसे मृत्यु का वरण करना होगा। मनुष्य का यही धर्म होना चाहिए। जिस सत्पथ का वह जीवन भर अनुसरण करता है, मरते समय भी उसे उसी सत्पथ के प्रति गहन निष्ठा लिए हुए मरना चाहिए।" कर्ण कहता है कि—"मेरा एकमात्र सम्बल मेरा भुजबल है, मेरे पास जाति और वंश की उच्च परम्पराएं नहीं हैं। तथापि आज तक मुझे अपने इन कवच-कुण्डलों का बहुत भरोसा था किन्तु आज उनसे भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। हे देवराज, लीजिए ये मेरे कवच-कुण्डल भी ले लीजिए। यह मेरे जीवन का एक महादान होगा और यह विश्वास करिए कि इस महादान को देने में मुझे तनिक भी पश्चाताप नहीं हो रहा है। पूरी प्रसन्नता के साथ मैं यह महादान कर रहा हूं।"

यह लीजिए कर्ण .... हवन डालता हूं मैं।

शब्दार्थ—हेतु = कारण। कुरुपति = दुर्योधन।

व्याख्या—कर्ण अपने दिये वचन के अनुसार कवच और कुण्डल का दान देने के लिए तत्पर था। उसने देवराज इन्द्र से कहा—"यह लीजिए मेरे कवच और कुण्डल। वास्तविकता यह है कि ये केवल कवच-कुण्डल ही नहीं हैं अपितु इन्हें देकर मैं एक प्रकार से अपने प्राण और दुर्योधन की विजय भी आपको दे रहा हूं। ये कवच-कुण्डल आपके पुत्र अर्जुन की उन्नति के लिए सोने से जड़ी हुई एक बेजोड़ सीढ़ी सिद्ध होंगे। कवच-कुण्डल का दान करके मैं पाण्डवों के एकमात्र कारण का दान कर रहा हूं। इन्हीं के साथ महाभारत के युद्ध का परिणाम भी जुड़ा हुआ है। मेरा यह कवच-कुण्डल का दान किसी दानी के व्रत का अन्तिम मूल्य समझा जाना चाहिए। अपने कठिन व्रत के पालन के लिए इससे अधिक मैं और क्या दे सकता था।" कर्ण आधुनिक जगत की विषमताओं की ओर संकेत करते हुए कहता है कि—"संसार की रीति यही है। मनुष्य अपने प्राणों की आहुति देकर भी विजय प्राप्त करने के लिए आतुर होता है। प्राण रहते हुए कोई भी व्यक्ति जीवनदान नहीं करता। किन्तु मैं एक ऐसा व्यक्ति हूं जिसे प्राणों के रहते हुए भी अपने प्रण का पालन करना पड़ रहा है। अब मैं अपने प्रणरूपी यज्ञ में पूर्णाहुति देने के लिए अपनी विजय की ही आहुति दे रहा हूं।"

देवराज! जीवन में .... इन्द्र के कर में।

शब्दा॰—अमर भुवन = सुरलोक। चतुरानन = ब्रह्मा। उद्वेलित = परेशान।

व्याख्या—कर्ण देवराज इन्द्र से कहता है कि "हे देवराज, अब मैं और क्या कीर्ति लूंगा ? कवच-कुण्डल का जो दान मैं तुम्हें दे रहा हूं, उससे बढ़ कर और मैं क्या दान दे सकूंगा। अब आप जाकर अपने पुत्र अर्जुन को कहिए कि आपका मेरे पास आने का प्रयोजन वृथा नहीं हुआ है। आप अपने पुत्र अर्जुन से जाकर कहिए कि आप उनके लिए विजयश्री ले आए हैं तथापि आपसे एक विनती है कि जब आप वापिस सुरलोक में पहुंचें तो कम से कम ब्रह्मा से एक बात अवश्य कहना। यह भी मैं इसलिए निवेदन कर रहा हूं कि ऐसा करना सचाई के हित में होगा। ब्रह्मा से यह कहना कि—"जिस महाभारत के युद्ध के कारण धरती का प्रत्येक व्यक्ति चिन्ताकुल है, वह रण तो अभी आरम्भ भी नहीं हुआ है किन्तु कर्ण और अर्जुन ने पहले ही जय-पराजय का निर्णय कर लिया है। कर्ण जीत गया है और अर्जुन पराजित हुआ है।" यह कहकर कर्ण ने कृपाण उठाई और तत्क्षण अपनी त्वचा छीलकर कवच और कुण्डल निकाले और देवराज इन्द्र के हाथ में थमा दिये।

चकित, भीत चहचहा .... जड़ता में ठगे हुए-से।

शब्दार्थ—भीत = डरे हुए। विहग = पक्षीगण। गिरा = वाणी।

व्याख्या—कर्ण के इस कवच-कुण्डल के दान को देखकर वहां जो पक्षीगण बैठे थे, वे भी चकित हो गये और घबरा उठे। इस दारुण दृश्य को देखकर सारी दिशाएं भी सन्न हो गईं। स्वयं सूर्यदेवता भी अपने इस दानवीर पुत्र पर हुए नियति-आघात को सहन नहीं कर सके और बादलों में जा छिपे। तभी आकाश में 'कर्ण' की इस आदर्श दानशीलता के लिए 'साधु-साधु' की गम्भीर ध्वनि गूंज उठी। जब देवराज इन्द्र ने कर्ण के इस महान् चरित्र के साथ अपने इस कृत्य की तुलना की तो उनका मुखमण्डल आत्मग्लानि से काला पड़ गया। कवच लेकर इन्द्र किसी चिन्ता में डूब गए और ज्यों के त्यों खड़े रहे। उन्हें देखकर ऐसा लग रहा था मानो वे किसी अज्ञात चिन्ता द्वारा ठग लिये गये हों।

पाप हाथ से .... सही, स्वर्ग है ऊपर।

शब्दार्थ—प्रदाह = जलन। विशिख = बाण। सुरत्व = देवत्व।

व्याख्या—इन पदों में कवि ने देवराज इन्द्र की तीव्र आत्मग्लानि की मार्मिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि कहता है कि जब मनुष्य कोई कुकृत्य अथवा पाप कर बैठता है तो सच है कि ऐसी स्थिति में हृदय की जलन असह्य हो जाती है। पाप कमाने के पश्चात् मनुष्य का हृदय आत्मग्लानि से दहक उठता है। देवराज इन्द्र अहंकार के कारण सीधे-साधे कर्ण को छलने के लिए आए थे किन्तु उन्हें क्या ज्ञान था कि ऐसा करने के बाद उन्हें कर्ण के तेजमय

मुखमण्डल से निसृत महातेज की अग्नि में जलना पड़ेगा। किन्तु जब कर्ण का बलिदान-रूपी बाण इन्द्र के हृदय में जाकर लगा तो इन्द्र बहुत देर तक मुख से एक भी शब्द नहीं निकाल सके। उन्हें कर्ण की इस पूर्णाहुति को देखकर विस्मय हो रहा था। उन्होंने सम्भवत: पहली बार यह देखा था कि मनुष्य किस तरह अपने ही हाथों से अपनी विजय शत्रु के हाथों में सौंप देता है। अन्ततः वे कर्ण के सम्मुख नतमस्तक हो गए और कर्ण से कहने लगे—"हे दानवीर कर्ण, अब मेरे पास कहने के लिए कुछ नहीं रहा है। तथापि इतना बड़ा पाप करने के पश्चात् मैं मौन भी कैसे रह सकता हूं। बेटा कर्ण, तूने मुझे पहचानने में भूल नहीं की है। यह सच है कि मैं ही देवराज इन्द्र हूं। किन्तु मैं अपने देवत्व को भूल गया था। अब मैं केवल यही निवेदन करना चाहता हूं कि तेरी दानशीलता को देखकर मुझे ऐसा लग रहा है कि इस पृथ्वी पर तुझ जैसा दानी कोई और नहीं हो सकता। जो कुछ मैंने आज देखा है, इस धरती पर पहले कभी वैसा देखने का अवसर नहीं मिला। मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस सारे व्यापारचक्र में धरती का पलड़ा भारी है और सुरलोक हल्का पड़ता है।"

विशेष—यहां देवराज इन्द्र की आत्मग्लानि का अत्यन्त मार्मिक वर्णन है।

क्या कह करूं प्रबोध .... मुझ पर भी आन गिरेगा।

शब्दार्थ—भ्रमित = चकराई हुई। छद्म = छल।

व्याख्या—देवराज इन्द्र अपनी आत्मग्लानि को स्वर प्रदान करते हुए कर्ण से कहते हैं कि—"अब मैं अपने दुखी मन को क्या कहकर समझाऊं? मेरी जीभ कांप रही है और मेरा हृदय भी कांप रहा है। मेरे पास ऐसे शब्द भी नहीं हैं जिनसे मैं क्षमायाचना करूं। इसके लिए मुझे उपयुक्त शब्द ही नहीं मिल पा रहे हैं। अब तो मैं तेरी चरणरज लेकर ही अपने दुखी मन का परिताप हर सकूंगा। इसके अतिरिक्त मेरे पास कोई अन्य मार्ग नहीं है। मैं क्या करूं, मेरी बुद्धि तो पहले भी चकरा रही थी और अब भी भंवर में फंसी हुई है अर्थात् मेरी बुद्धि जड़ हो गई है। मुझे यह ज्ञात नहीं था कि मेरा किया हुआ यह छल इतना भयंकर सिद्ध होगा। मुझे यह पता नहीं था कि कवच-कुण्डल का दान हृदय को इतना बेधने वाला होगा। बेटा कर्ण, मैं विवश हूं, मुझे यह पता नहीं था कि मेरा पापकृत्य मेरे ही सिर पर मंडराता रहेगा और धुआं बनकर मुझे घेर लेगा। मुझे यह भी पता नहीं था कि जो वज्र तुझे भेदेगा, वही वज्र तत्क्षण मेरे पर आकर गिरेगा। मुझे इन सब बातों का ज्ञान नहीं था, अन्यथा मैं इस पाप का भागी नहीं बनता।"

तेरे महातेज के .... बन कर वापस जाऊंगा।

शब्दार्थ—मलिन = निस्तेज। क्षुद्र = हीन। तृण-सा = तिनके-सा।

व्याख्या—देवराज पुनः अपनी आत्मग्लानि का वर्णन करते हुए कर्ण से

कहते हैं—"हे कर्ण, तेरे इस महातेज के सम्मुख मैं अपने आपको अत्यन्त निस्तेज पाता हूं। कर्ण, यह सच है कि मैं आज तेरे सामने अपने आपको अत्यन्त हीन पाता हूं। तेरे उदात्त और प्रोज्ज्वल चरित्र के सामने मैं अपने को बहुत क्षुद्र पाता हूं। हे कर्ण, मुझे मेरी इस लघुता ने आज तक कभी इतनी पीड़ा नहीं पहुंचाई थी। हे दानवीर कर्ण, आज तो मैं यही कहूंगा कि मुझसे कहीं अधिक आलोकमय तेरी छाया है। यद्यपि मैं सुरपति हूं और मेरा रूप दिव्य आभा से ओतप्रोत है फिर भी तेरे समक्ष मैं अपने आपको बहुत हीन पाता हूं। हे कर्ण, मैं एक यंत्रचालित तिनके की तरह तुम्हारे शीलरूपी सागर में डूबता, बहता और तिरता हूं किन्तु उसकी गहराई का अनुमान लगा पाने में पूर्ण असमर्थ हूं। मेरा मन चक्रवात की तरह इधर-उधर घूम रहा है किन्तु तुम्हारे शीलरूपी समुद्र का किनारा नहीं मिल पा रहा। आज तुम्हारी यह परीक्षा पूर्ण हो गई और सचाई यह है कि इस अभूतपूर्व परीक्षा में मनुष्य जीता है और देवता पराजित हुए हैं।" देवराज इन्द्र अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार करते हैं कि —"हां, यह ठीक है कि मैं अपने पुत्र-प्रेम में अंधा होकर ही तुम्हारे साथ छल करने आया था। मैं तुम्हारे कवच-कुण्डल लेने के प्रयोजन से ही तुम्हारे पास आया था। अब तो मेरा यह छल सर्वविदित हो जायेगा, लोगों को मैं क्या मुख दिखलाऊंगा? यद्यपि मैं ब्राह्मण का वेश धारण करके आया था किन्तु भाग्य की गति यह है कि लौटते समय मेरी स्थिति चोर से इतर नहीं है। अब तो मुझे चोर ही समझा जायेगा।"

वन्दनीय तू कर्ण......................तू मुझको लगता है।

शब्दार्थ—वन्दनीय = पूजा के योग्य। तिग्म = प्रखर।

व्याख्या—इन पदों में देवराज इन्द्र पुनः कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि "हे कर्ण, तू वस्तुतः पूजा के योग्य है। तेरा प्रखर तेजमय मुखमण्डल देखकर मेरा मन कांप उठा था। यद्यपि मेरा मन एक देवता का मन था तो भी तेरे तेज के सम्मुख वह कांप उठा था। किन्तु अब तो स्थिति और भी दुखद हो गयी है। अब तो मेरा मन और भी अधिक भय-त्रस्त हो रहा है। मेरा हृदय सिमट कर अपने आप ही मृतप्राय होता जा रहा है। हे दानवीर कर्ण, तू मुझे दिव्य प्रकाश से चमचमाते हुए एक उज्ज्वल और सुस्थिर पर्वत की भांति लग रहा है। तुझे देखकर मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे करोड़ों जन्मों में जो पुण्य हुए हैं उनका संचित फल तेरे में सिमट आया है। तीनों लोकों में व्याप्त योगियों का प्रकाश देखकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानों वह समूचा प्रकाश तेरे अकेले के भीतर संजोया गया हो।"

खड़े दीखते जगन्नियंता..........मानव ही पा सकता है।

शब्दार्थ—चतुर्दिक = चारों दिशाओं। मेटा = मिटाया है। प्रवंचक = छली। परितापी = दुखी।

व्याख्या—देवराज इन्द्र कहते हैं कि—"मुझे ऐसा लग रहा है मानों जगत के कर्णधार पीछे की ओर खड़े हैं और बड़े प्रेम से तुझे ज्योतिर्मय आलिंगन में बांधे हुए हैं। तेरे दान, धर्म, योग, यश, तप आदि तेरे चारों ओर स्थित प्रकाश-पुंज से लग रहे हैं। तेरे अगणित व्रतों के प्रकाश में तेरी कान्ति और प्रोज्ज्वल हो रही है। यह धरती भी जब तुझे अपने निकट देखती है तो लगता है जैसे कि तुझे अपनी गोदी में बिठा कर इठला रही हो और तेरा तेजमय मस्तक सूंघकर अपने मातृ-अधिकार का परिचय दे रही हो। ऐसा लगता है कि धरतीमाता तेरे सम्बन्ध में यह कह रही हो कि मेरे इस पुत्र ने मेरे लाखों करोड़ों दीन-हीन पुत्रों के दुख का हरण किया है। लगता है कि वह बड़े गर्व से यह कह रही है कि तू सूर्य का नहीं, उसका अर्थात् धरती का पुत्र है।" देवराज इन्द्र कर्ण के उदात्त और महान् चरित्र के सन्मुख अपने आपको बहुत हीन पाते हैं और अपने इस हीनभाव को स्वीकारते हुए कहते हैं, कि—"हे कर्ण, तू दानी है और मैं एक कुटिल छली हूं। तू अत्यन्त पवित्र है और मैं पापी हूं। तू कवच-कुण्डल का दान करके भी सुखी बना हुआ है और मेरा दुर्भाग्य यह है कि मैं तुझसे कुछ प्राप्त करके भी अत्यधिक पश्चाताप का अनुभव कर रहा हूं। हे कर्ण, तूने जीवन के जितने सोपान तय किये हैं वहां तक देवतागण भी नहीं जा सकते। तेरे जैसा आदरणीय एवं गौरवपूर्ण पद कोई मनुष्य ही पा सकता है, देवता नहीं।"

देख न सकता अधिक .... माँग सोच कर वर तू।

शब्दार्थ—पावन = पवित्र। पगता हूं = डूबता हूं। बर्बर = क्रूर। दुर्धर्ष = प्रखर।

व्याख्या—देवराज इन्द्र का हृदय इस पाप कृत्य के कारण अत्यधिक ग्लानि का अनुभव कर रहा था और वे किसी न किसी तरह अपने इस व्यथा-भार को हल्का करना चाहते थे। इन पदों में यही भाव व्यक्त हुआ है। कर्ण का तो सर्वस्व लुट गया था अतः उसे देखकर देवराज इन्द्र उससे कहने लगे—"कर्ण, मैं इस दिव्य रूप को और अधिक नहीं देख सकता, मेरा पापी हृदय मुझे तिल-तिल कर कचोट रहा है। तेरे दिव्य रूप के सम्बन्ध में मैं जितना अधिक सोचता हूं मैं अपने आपको उतना ही अधिक क्रूर और बर्बर पाता हूं। अतः कर्ण, अब मुझे यहां से तत्काल जाने दे और तेरे इस प्रखर तेज से मुक्ति पाने दे। तथापि विदा देने से पहले मुझ पर एक कृपा और कर, और मुझ जैसे निष्ठुर व्यक्ति से भी एक वरदान अवश्य मांग ले।"

कहा कर्ण ने .... तू यह आशा।

शब्दार्थ—आशीष—आशीर्वाद। पूरने = पूरी करने।

व्याख्या—देवराज इन्द्र के इस प्रस्ताव को सुनकर कर्ण बोला, "हे

देवराज, मैं तो अपना सब कुछ देकर ही अपने आपको धन्य समझ रहा हूं। अब मैं और क्या नया वरदान मांगूं। बस अब तो यही निवेदन है कि कृपा करके मुझे यह आशीर्वाद दें कि मेरी रुचि धर्म में लगी रहे और मैं सत्पथ पर अडिग रहूं। मैं यही चाहता हूं कि मेरा धर्म ही मेरे लिये छत्र, मुकुट और कवच-कुण्डल सिद्ध हो।" कर्ण के इस गम्भीर वचन को सुनकर देवराज उससे कहने लगे कि—"यह तो तूने कुछ भी नहीं मांगा। भला धर्म तुझे कैसे त्याग सकेगा? यदि तुझे त्याग भी देगा तो अपनी रक्षा के लिए किस नये व्यक्ति से नया सम्बन्ध स्थापित करेगा। तू भी धर्म को नहीं छोड़ सकता क्योंकि उसीकी रक्षा हेतु ही तूने अभी-अभी अपनी विजय की बलि दे दी है। तेरे लिए धर्म का वरदान वृथा है। मैं तो यह चाहता हूं कि मैंने जो कुछ तुझसे लिया है और बदले में तुझे जितना असहाय बना दिया है, किसी न किसी प्रकार उसकी क्षतिपूर्ति करूं। तुझे यह भी ज्ञात है कि तू स्वयं मुझे अपनी यह इच्छा पूरी नहीं करने देगा।"

तू मांगे कुछ नहीं.........................कर्ण निज घर को।

शब्दार्थ—अमोघ=अकाट्य। काल=मृत्यु। शरदान=एकघ्नी नामक अस्त्र।

व्याख्या—जब कर्ण ने देवराज इन्द्र से कोई विशेष वरदान नहीं मांगा तो इन्द्र उससे कहने लगे—"तू भले ही मुझसे कुछ न मांगे, किन्तु मुझे अपने व्यथा-भार को तनिक हल्का करना ही है। इसलिए मैं तुझे एक अकाट्य अस्त्र दे रहा हूं जोकि मृत्यु को भी खा सकता है अर्थात् इसके रहते हुए मृत्यु भी तेरा कुछ अहित नहीं कर सकती। इस अस्त्र का कोई भी वार बेकार नहीं जा सकता। किन्तु इसके साथ एक विशेष बात यह है कि तू इसका प्रयोग केवल एक बार ही कर पायेगा और उसके बाद यह अमोघ अस्त्र पुनः मेरे पास लौट आयेगा। इसलिए, इसका प्रयोग बहुत सोच-विचार कर करना। तनिक-सी उत्तेजना पर इसका प्रयोग मत करना। इसका प्रयोग तभी करना जब तुम्हारे शरीर का बल चुक गया हो।" विदा होने से पहले देवराज कर्ण की दानशीलता की प्रशंसा करते हुए यह कहते हैं कि—"हे दानवीर, तेरी जय हो। सारा संसार तेरी महिमा का गान करे। तेरा प्रोज्ज्वल चरित्र देवताओं और सामान्य व्यक्तियों, दोनों के लिए आदर्श चरित्र हो।" इसके पश्चात् देवराज इन्द्र, कर्ण को वह अमोघ अस्त्र देकर सुरलोक की ओर चले गये और कर्ण अपने अखण्ड व्रत का अन्तिम मूल्य चुका कर अपने घर की ओर चला।

पांचवां सर्ग

संक्षिप्त कथावस्तु—इस सर्ग में कर्ण और उसकी माता कुन्ती के मध्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और मार्मिक संवाद का वर्णन है। महाभारत के युद्ध की विभीषिका से आशंकित कुन्ती युद्ध आरम्भ होने से ठीक एक दिन पहले कर्ण के पास जाती है। वह इस युद्ध को टालने के लिए अन्तिम तौर पर यह प्रयास और करना चाहती है। उसका कर्ण के पास जाने का एकमात्र प्रयोजन यह था कि वह कर्ण को यह विश्वास दिलाए कि कर्ण भी अन्य पांच पाण्डवों की भांति उसीका पुत्र है। वह चाहती थी कि कर्ण दुर्योधन का साथ छोड़कर पाण्डवों के अग्रज के रूप में युद्ध का संचालन करे। कुन्ती ने अपना प्रयोजन स्पष्ट करते हुए कहा है—

> 'जा भूल द्वेष के जहर, क्रोध के विष को,
> रे कर्ण! समर में अब मारेगा किसको?
> पाँचों पाण्डव हैं अनुज, बड़ा तू ही है,
> अग्रज बन रक्षा हेतु खड़ा तू ही है।'

जब कुन्ती ने कर्ण के सम्मुख उसकी सारी जन्म-कथा कही तो कर्ण के मन में वर्षों से संचित घृणा और द्वेष के भाव एक साथ उमड़ पड़े। कर्ण भगवान श्रीकृष्ण के मुख से यह सारी कथा पहले ही सुन चुका था। इस सारे प्रसंग में कुन्ती अपने मातृत्व की दुहाई देती है और कर्ण उसके उत्तर में केवल घृणा और द्वेष के भाव व्यक्त करता है। कर्ण नाना प्रकार के व्यंग्यबाणों का प्रयोग करता है जो कुछेक आलोचकों के मत से शील और शिष्टाचार के सामान्य नियमों का खुला अतिक्रमण करते हैं। अन्ततः वह अपना निर्णय इस प्रकार सुनाता है—

> 'लेकिन, यह होगा नहीं, देवि! तुम जाओ,
> जैसे भी हो सुत का सौभाग्य मनाओ।
> दें छोड़ भले ही कृष्ण कभी अर्जुन को,
> मैं नहीं छोड़ने वाला दुर्योधन को।'

कर्ण के इस दो टूक उत्तर को सुन कर मां कुन्ती का हृदय द्रवित हो गया। फिर भी वह पूरी तरह निराश नहीं हुई थी। उसने अन्तिम अस्त्र अपनाते हुए कर्ण से कहा—

> 'थी विदित वत्स! तेरी यह कीर्ति निराली,
> लौटता न कोई कभी द्वार से खाली।
> पर, मैं अभागिनी ही अंचल फैला कर,
> जा, रही रिक्त बेटे से भीख न पाकर।'

मां कुन्ती के ये शब्द कर्ण को चुभ गये। उसे लगा कि उसके समूचे पुण्य-व्रत को चुनौती दी गई है। विदा होने से पहले मां कुन्ती ने अन्तिम बार कर्ण को अंक में भर लेने की इच्छा प्रकट की। जैसे ही मां कुन्ती ने कर्ण को अपने गले लगाया उसे संजीवनी-सी छू गई। कवि ने इस विशेष मिलन का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है—

'पहली वर्षा में मही भीगती जैसे,
भीगता रहा कुछ काल कर्ण भी वैसे।
फिर कंठ छोड़ बोला चरणों पर आकर,
मैं धन्य हुआ बिछुड़ी गोदी को पाकर।'

मां कुन्ती की स्नेह-सिंचित ममता से कर्ण का कठोर हृदय पसीज गया। मां कुन्ती के कारण कर्ण ने जीवनभर अनादर और तिरस्कार सहा था, वह सब मां की ममता के ताप में तरल हो गया। कर्ण बोला—"मां, तुम चिन्ता मत करो। तुम पांच पाण्डवों की मां अवश्य बनी रहोगी। अर्जुन को तो मैं छोड़ूंगा नहीं। यदि युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन ने मुझे मार दिया तो तेरे पांचों पुत्र सुर-क्षित रहेंगे किन्तु यदि दुर्भाग्यवश अर्जुन को मेरे हाथों हताहत होना पड़ा तो—

'मैं एक खेल फिर जग को दिखलाऊंगा,
जय छोड़ तुम्हारे पास चला आऊंगा।'

कर्ण ने वस्तुतः इस वचन को पूरा भी किया। युद्ध के क्षेत्र में उसने अर्जुन के अतिरिक्त चारों पाण्डवों को जीवन-दान दे दिया।

कर्ण से यह आश्वासन पाकर मां कुन्ती विदा हो गई। कवि ने विदा के इन महत्वपूर्ण क्षणों का अत्यन्त भावपूर्ण वर्णन किया है—

'हो रहा मौन राधेय चरण को छूकर,
दो बिन्दु अश्रु के गिरे दृगों से चूकर।
बेटे का मस्तक सूंघ, बड़े ही दुख से,
कुन्ती लौटी कुछ कहे बिना ही मुख से।'

इस पांचवें सर्ग में करुणा और भावुकता का सुखद सम्मिश्रण देखने को मिलता है। 'रश्मिरथी' के इस सर्ग में मां कुन्ती के चरित्र की रेखा काफी उभर कर सामने आई है।

आ गया काल ....युग-वंचित हो जायेगा।

शब्दार्थ—खण्डप्रलय=आंशिक प्रलय। मरीचि=सूर्य किरण। संहार=विनाश।

व्याख्या—कवि महाभारत के युद्ध की पूर्व संध्या का वर्णन करते हुए युद्ध की विभीषिका की एक भयानक झांकी प्रस्तुत करता है। कवि कहता है कि अब शान्ति के नष्ट होने का भयानक क्षण आ गया है। इस पृथ्वी पर आंशिक प्रलय का निर्धारित क्षण आ पहुंचा है। नियति ने अपनी पूरी योजना तैयार

कर ली है और महाभारत का युद्ध आरम्भ होने में केवल आज की रात बाकी है। कल प्रातः जैसे ही सूर्य की पहली किरण फूटेगी वैसे ही युद्ध-क्षेत्र में महामृत्यु का ताण्डव नृत्य होगा। चारों ओर विनाश ही विनाश छा जायेगा, सर्वत्र मृत्यु की अशुभ कालिमा ही दिखाई देगी। सारा समाज अपने और पराये की विवेक दृष्टि से शून्य हो जायेगा अर्थात् उसमें अपनत्व की दृष्टि ही नहीं रह जायगी।

जन जन स्वजनों के लिए..............का हृदय फटेगा।

शब्दार्थ—स्वजनों = भाईयों। कृतान्त = यम का एक दूसरा नाम। संयोग = घड़ी।

व्याख्या—कवि युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कहता है कि इस युद्ध में भाई भाई के प्राणों का प्यासा हो जायेगा। परिवार के ही सदस्य एक-दूसरे के लिए यम-समान हो जाएंगे। कल जो महाभारत का युद्ध आरम्भ होगा उसमें भाई-भाई एक-दूसरे से जूझेंगे। मनुष्य मानवों के रक्त में स्नान करेगा अर्थात् सारी धरती पर मनुष्य का रक्त दिखाई देगा। माँ कुन्ती युद्ध की इसी विभीषिका के बारे में चिन्तित बैठी थी। उसका मातृ-हृदय आने वाले कल की कल्पना करके व्याकुल हो उठता है। वह अपनी सुध-बुध खो बैठी थी। कुन्ती मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करती हुई कहती है कि, "हे राम, क्या यह अशुभ घड़ी नहीं टल सकती? क्या यह संहार-लीला होकर ही रहेगी? क्या सचमुच मेरा मातृ-हृदय भाई-भाई के इस विकराल युद्ध को देखकर अवश्य ही फटेगा?"

विशेष—इन पक्तियों में कवि ने युद्ध के विनाशकारी रूप का वर्णन करते हुए एक महत्वपूर्ण बात यह कही है कि जब मनुष्य के सिर पर विनाश छा जाता है तो उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। सत्-असत् का विवेक समाप्त हो जाता है। एक दूसरे के प्रति भ्रातृत्व और सद्भावना के उदात्त दृष्टिकोण अपना अस्तित्व खो बैठते हैं।

एक ही गोद के लाल...................मुझे छोड़ अंगारे।

शब्दार्थ—अनुजों = छोटे भाई।

व्याख्या—माता कुन्ती चिन्तन में लीन है। वह सोच रही है कि कल जो युद्ध होने वाला है उसमें एक ही कोख से जन्मे दो भाई लड़ेंगे। क्या यह सच है कि दोनों भाई लड़ेंगे? क्या यह भी सच है कि कर्ण अपने छोटे भाईयों के प्राण लेगा अथवा अर्जुन के हाथों मृत्यु का वरण करेगा? दोनों भाईयों में से जिसका हृदय भी फटेगा अथवा जिसकी गरदन भी कटेगी, उसका प्रभाव मुझ-पर ही तो पड़ेगा। कुन्ती सोच रही है कि चाहे अर्जुन को कर्ण मारे अथवा कर्ण अर्जन को मारे, हृदय तो मेरा ही जलेगा।

चिन्ताकुल उलझी हुई .... लाल हुए जाते थे ।

शब्दार्थ—सितकेशी = उजले केशवाली । संभ्रममयी = घबड़ाहट में । सुधियों = यादों । चंग = पतंग ।

व्याख्या—कुन्ती युद्ध की विभीषिका के कारण चिन्तित थी और उसका मन व्यथाभार से दबा हुआ था । व्यथित हृदय लेकर वह विदुर भवन से निकली । कवि ने कुन्ती की इस मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि—"उजले केशों वाली कुन्ती जब विदुर भवन से बाहर निकली तो वह तनिक घबराई हुई थी । वह सकुचाई हुई चल रही थी ।" वह मन ही मन तर्क-वितर्क में डूबी हुई थी और उसे पुरानी स्मृतियां कचोट रही थीं । ऐसा प्रतीत होता था मानो उसका व्यथित हृदय तर्क-वितर्क की डोर के सहारे पतंग की तरह उड़ रहा था । उसके हृदय में आशा और भय, दोनों ही बने हुए थे क्योंकि वह आज कर्ण के पास जा रही थी । कर्ण के पास जाने का उसका प्रयोजन पूरा भी हो सकता था और यह भी सम्भव था कि उसके हाथ निराशा ही लगती । इसी प्रकार आशा-निराशा में झूलती हुई कुन्ती जान्हवी तट पर पहुंची । उस समय सूर्य पश्चिम की ओर क्षितिज के ऊपर से सुनहरी किरणों के रूप में धरती पर सोने के घड़े बिखेर रहा था । सारा वातावरण सूर्य की किरणों की लालिमा से नहा रहा था । सूर्य का रंग लाल हो चुका था और उसकी लाली देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह आज लज्जा के कारण लाल हो गया हो । उसे इसी बात की लज्जा हो सकती है कि कर्ण की माता को स्वयं कर्ण के पास जाने के लिए विवश होना पड़ रहा है ।

राधेय सांध्य पूजन .... गरुड़ पंख निज खोले ।

शब्दार्थ—युग = दोनों । बाहु = भुजाएं । अपरार्क = दूसरा सूर्य । विभाकर = सूर्य ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने संध्या-पूजन में लीन कर्ण के तेजमय रूप का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है । कवि कहता है कि जब माता कुन्ती जान्हवी तट पर कर्ण के पास आई तो उस समय वह नियमानुसार संध्या-पूजन कर रहा था । वह जल में खड़ा हुआ था और उसने अपने दोनों हाथ ऊपर को उठा रखे थे । उसका शरीर दिव्य तेज से चमक रहा था और उसके तेज-पूर्ण ललाट को देखकर दूसरे सूर्य का भ्रम हो रहा था । दोनों भुजाओं के बीच में कर्ण का ललाट ऐसा लग रहा था मानो सोने की दो पर्वत-चोटियों के बीच स्वयं सूर्य ही सिमट आया हो अथवा गरुड़ देवता अपने पंखों को फैलाए हुए हों और मस्तक पर सूर्य रखा हुआ हो ।

या दो अर्चियां .... नमन करता हूं ।

शब्दार्थ—अर्चियां = शलाकाएं । विभामण्डल = ज्योतिमण्डल ।

व्याख्या—सांध्य पूजन में लीन कर्ण की शारीरिक शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कर्ण को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो उसकी दोनों

भुजाएं पवित्र अग्नि की ऐसी दो शलाकाएं हों जो ज्योतिमण्डल की आरती उतार रही हों। अथवा मैनाक पर्वत स्वयं ही अपरिमित स्वर्ण से नहाकर आया हो और उसने अपनी भुजाएं फैला रखी हों। जब माता कुन्ती ने अपने पुत्र के इस कान्तिवान एव तेजमय शरीर को देखा तो वह क्षणभर के लिए अपनी सारी व्यथा भूल गई, उसका ममत्व उभर आया। वह एकटक उसे निहारती रही। उसकी आंखों में ममता का स्नेह-जल भर आया और वह पलकें झुकाए बिना यही अश्रुजल अपने पुत्र पर बिखेरती रही। आहट पाकर कर्ण ने अपनी आंखें खोलीं। और जब उसने सामने कुन्ती को पाया, तो वह नत-मस्तक होकर निवेदन करने लगा—"हे देवि! मैं आपके चरणों में सादर नमस्कार करता हूं। मैं राधा का पुत्र कर्ण, आपके प्रति अगाध भक्ति का भाव रखता हूं। मेरा अभिवादन स्वीकार कीजिए।"

हैं आप कौन ?...........................पर आन धरूं मैं।

शब्दार्थ—निमित्त = लिए। विभामण्डल = सूर्यमण्डल। औघट = दुर्गम मार्ग।

व्याख्या—कर्ण आगन्तुक का परिचय पूछता हुआ कहता है कि—"आप कौन हैं और आपके यहां आने का क्या प्रयोजन है? मेरे लिए आप क्या आदेश लाई हैं? आप जानती ही हैं कि यह कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि है और सूर्य अस्त होने जा रहा है। यह दुर्गम मार्ग भी नीरव है और जान्हवी का यह तट भी बहुत डरावना है। इस सबके अतिरिक्त आप यहां एकदम अकेली ही हैं। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं। आपके चरणों में मैं भक्ति की कौन-सी भेंट अर्पित करूं?"

सुन गिरा गूढ़.............................जननि हूं तेरी।

शब्दार्थ—गिरा = वाणी। गूढ़ = रहस्यमयी। तनय = पुत्र। पृथा = कुन्ती का दूसरा नाम।

व्याख्या—कर्ण की इस रहस्यमयी वाणी को सुनकर कुन्ती का धीरज टूट गया और उसके मन का व्यथाभार अश्रुओं में ढल गया। वह एकदम पसीज गई और कांपते स्वर में कर्ण से कहने लगी—"हे कर्ण, मुझ पर व्यंग्य का इतना प्रखर वाण मत चला। वास्तविकता तो यह है कि तू, जैसा कि अभी कह रहा था, राधा का बेटा नहीं है। तू तो मेरा ही पुत्र है। जो वंश धर्मराज युधिष्ठिर का है वही वंश तेरा है। तू सूतपुत्र नहीं है बल्कि तेरा सम्बन्ध राजवंश से है। तू भी अर्जुन की ही भांति कुरुवंश का बालक है।" कुन्ती अपने अन्तर की व्यथा को स्वर देते हुए कहती है कि—'हे कर्ण, जिस तरह मैंने तीन पुत्रों को पाया था (ये तीन पुत्र थे अर्जुन, युधिष्ठिर और भीम) उसी तरह तू भी सर्वप्रथम मेरी कोख में आया था, अर्थात् तू तो मेरा सबसे बड़ा पुत्र है और इस दृष्टि

से तू मेरे तीनों पुत्रों से भी ज्येष्ठ है। तुझे प्राप्त करके मैं धन्य हो गई थी। तेरी वह अभागिनी माँ कुन्ती मैं ही हूं।"

पर, मैं कुमारिका थी..................पतिता निज सुख को।

शब्दार्थ—कुमारिका=अविवाहिता। असमय=गलत समय में। योषिता=नारी। पतिता=गिरी हुई।

व्याख्या—आज कुन्ती अपने मन का सारा बोझ हल्का कर लेने को आतुर है। वह कर्ण के सामने उसके जन्म के समय की अपनी सारी परिस्थितियां रखकर कर्ण की सहानुभूति प्राप्त करना चाहती है। वह कर्ण से कहने लगी—"तथापि जब मैंने तुझे जन्म दिया, उस समय मैं अविवाहित थी। यह मेरा दुर्भाग्य ही है कि मैंने तुझ जैसा अमूल्य पुत्र गलत समय में प्राप्त किया था। इसलिए, मुझे समाज के भय के कारण तेरे जैसे दुधमुंहे बच्चे का त्यागपत्र करना पड़ा।" इसके पश्चात् कुन्ती भारतीय नारी की दुर्बलता और दुर्भाग्य का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कहती है कि—"बेटा कर्ण, तुझे ज्ञान नहीं है कि संसार में नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती है। विशेष रूप से जब कुंवारी कन्या माता बन जाती है तो वह और भी अधिक अबला हो जाती है। उसका जीवन तो स्वयं उसी के लिए भार बन जाता है। यदि नारी से कोई दोष हो जाता है तो सारा समाज उसकी भर्त्सना करता है। ऐसे समय में समाज का मुख बन्द करना कठिन हो जाता है। नारी के लिए मृत्यु की-सी दुर्वह स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वह गौरव से अपना सिर ऊपर उठा कर चल ही नहीं सकती।"

उस पर भी बाल......................जो प्रलय घिरेगा।

शब्दार्थ—अबोध=नासमझ। शोध=उपाय। मंजूषा=पेटी।

व्याख्या—कर्ण के जन्म की यथार्थ परिस्थितियों का विश्लेषण करने तथा सचाई कहकर अपने मन के व्यथा भार को हल्का करने की दृष्टि से कुन्ती अपने पुत्र कर्ण को समझाती हुई कहती है कि, "इस सबके अतिरिक्त एक कठिनाई उस समय यह भी थी कि मैं एक अबोध बालिका थी। उस समय मैं बच्ची ही तो थी, इसलिए मैं इस पाप को छिपाने का कोई अधिक अच्छा उपाय नहीं ढूंढ पाई। मुझे कोई अन्य मार्ग सूझा ही नहीं। समाज के भय से बचने के लिए मेरे सामने केवल एक ही उपाय था और वह था कि मैं तुझ भाग्य के सहारे छोड़ दूं। मैंने वही किया और अपने हृदय पर पत्थर रखकर तुम्हें एक मंजूषा में बन्द करके नदी की धार में प्रवाहित कर दिया। यह संयोग ही था कि सूतपत्नी राधा ने तुम्हारा पालन-पोषण किया। उस दयालु सूतपत्नी के प्रति मेरे मन में तनिक भी दुर्भावना नहीं है। मुझे तुम उसके पास ले चलो, मैं सदैव उसे अपनी बड़ी बहन जसा आदर दूंगी। किन्तु आज मैं तुझे एक और बात कहने आई हूं। यह भी कोई आदेश नहीं है। (यद्यपि

माता होने के नाते मैं तुम्हें आदेश देने की स्थिति में भी हूं), प्रार्थना भर है। तुझे ज्ञात ही है कि कल कुरुक्षेत्र में भारी संग्राम का सूत्रपात होगा। सारे क्षत्रिय समाज पर प्रलय के बादल घिर आएंगे। मुझे उसी के सम्बन्ध में कुछ कहना है।"

उसमें न पाण्डवों.............................समग्र भुवन को।

शब्दार्थ—प्रतिशोध=बदला लेना। मूक=चुप।

व्याख्या—पर्याप्त भूमिका बांधने के बाद माता कुन्ती कर्ण से कहने लगी, "मैं अपने साथ यह प्रार्थना लेकर आई हूं कि कल जो महाभारत का युद्ध होने वाला है उसमें तू पांडवों के विरुद्ध होकर मत लड़ना। मैं यह नहीं चाहती कि तेरे हाथों से पाण्डव मरें अथवा पांडवों के हाथों तुझे मृत्यु प्राप्त हो। मेरे लिए वह अत्यन्त असह्य दृश्य होगा जबकि मेरे ही पुत्र एक दूसरे को मारकर अपनी प्रतिशोध की आग को बुझाएंगे। अब मैं और अधिक चुप नहीं रह सकती। मैंने वर्षों तक मौन साधा किन्तु मैं अब इस भीषण युद्ध की मूक दर्शक नहीं रह सकती। जो व्यथा वर्षों से मेरे मातृमन को कुरेदती रही है, वह मैं आज सबको बता दूंगी।"

भागी थी तुझको.............................न देर लगा तू।

शब्दार्थ—हेरा=देखा। विरंचि=ब्रह्मा, ईश्वर। विध्वंस=नाश।

व्याख्या—अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कुन्ती कहती है—"बेटा कर्ण, जिस समाज के भय के कारण मैं तुझे नदी की धार में प्रवाहित कर आई थी और जिस लोकलाज के कारण तुझे पुनः देखा भी नहीं, अब मुझे वैसी कोई चिन्ता नहीं रह गई है। अब तो मैं उस समाज के सिर पर कदम रखकर चलने का आत्मबल रखती हूं। मैं इस समाज से बहुत डर चुकी हूं, किन्तु अब मैं और अधिक,नहीं डरूंगी। यद्यपि मैं अपने भाग्य की बाजी तो उसी दिन हार चुकी थी जिस दिन मैंने तुझे नदी की धार में प्रवाहित कर दिया, किंतु मेरा ईश्वर भी मेरे प्रति प्रतिकूल ही रहा। तभी तो मैं आज तक तेरे निकट नहीं आ सकी और तेरे जन्म का यह गोपन रहस्य भी तुझे न बतला सकी। किंतु बेटा कर्ण, मेरी बातों का कोई अन्य अर्थ मत लगा, कभी-कभी जीवन में ऐसा भी होता है। बेटा कर्ण, अब जो कुछ होना था हो गया। अब आ तुझे अंक में भर लूं। विनाश के क्षण बहुत निकट है, देर मत लगा।"

जा भूल द्वेष.............................भोग संपदा सारी।

शब्दार्थ—अनुज=छोटे। सूत्र=नेतृत्व।

व्याख्या—कुंती आग्रहपूर्ण भाषा में कर्ण से कहने लगी—"बेटा कर्ण, अब द्वेष और क्रोध को त्याग दो। तुम्हीं बताओ कि युद्ध में तुम किन्हें मारोगे। पांचों पांडव वस्तुतः तेरे ही छोटे भाई हैं। तू उनका बड़ा भाई है,

अतः तुझे उनकी रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिये और कल जो युद्ध होने वाला है उसमें पाण्डवों का नेता बनकर युद्ध-संचालन करना चाहिए। अपने से छोटे इन पांचों पाण्डव भाईयों पर तुझे अपने अपार पौरुष और पराक्रम की छत्रछाया रखनी चाहिए। जब तू इनका नेता बनकर युद्ध-क्षेत्र में उतरेगा तो विजयश्री निश्चित रूप से पांडवों को ही मिलेगी। इस भारी विजय का श्रेय भी तुझे ही मिलेगा। विजयमुकुट पहनकर तू इस अपार सम्पदा को भोगना।''

यह नहीं किसी..................अवश्य तुम मानो।

शब्दार्थ—कनकाभ=सोने-सी आभा वाले। वसन=कपड़े। अंशुधर=सूर्य।

व्याख्या—माता कुन्ती कर्ण के मन को जीतना चाहती है और अब उसके पास एकमात्र मार्ग यही रह गया है कि वह नितान्त निष्कपट और निश्छल रूप में कर्ण के सम्मुख अपना मन्तव्य प्रकट करे। कुन्ती कर्ण से कहती है—''बेटा कर्ण, यह सच मान कि मैंने जो कुछ तुझ से कहा है उसमें किसी प्रकार का छल-कपट नहीं है। मेरी बात पर विश्वास कर। यदि तुझे अब भी मेरे इस कथन की सत्यता पर विश्वास नहीं आता तो बता मैं किसकी शपथ उठाकर तुझे विश्वास दिलाऊँ।'' माता कुन्ती ने अपने कथन की सत्यता के प्रमाणस्वरूप पश्चिमी तट पर चमकते हुए सूर्य की ओर संकेत करते हुए कहा कि ''पश्चिमी तट की ओर आकाश में चमकते हुए सूर्य की ओर देख। वह सूर्य देवता है जोकि सोने की आभावाली सूर्य-किरणों के कपड़े पहने हुए शोभित हैं। उनके प्रताप की किरणें सदा-सदा से विजयी रही हैं। बेटा कर्ण, अपने कथन के साक्षी के तौर पर मैं यही कहती हूं कि तू उसी तेजवान सूर्य का तेजस्वी पुत्र है।'' यह कहकर कुन्ती रुक गई। उसकी आंखें डबडबा आईं अतः वह अपने आंचल से अश्रुजल पोंछने लगी। इसी समय आकाशवाणी हुई कि—''कुन्ती जो कुछ कह रही है, उसे सत्य मानो और मां की आज्ञा को शिरोधार्य करो। मां का आदेश अवश्य मानो।''

विशेष—उल्लिखित आकाशवाणी वस्तुतः कुन्ती की निश्छलता एवं निष्कपटता की प्रतीक है। साथ ही कवि ने नाटकीय ढंग से सूर्य की (जो कर्ण का पिता और कुन्ती का पति माना जाता है) हार्दिक इच्छा को अभिव्यक्त किया है। अगले पद में कवि ने यह स्पष्ट भी कर दिया है।

यह कह दिनेश..................आई किस मुख से।

शब्दार्थ—दिनेश=सूर्य। तिरोहित=लुप्त।

व्याख्या—यह आकाशवाणी करने के पश्चात् कि—''कुन्ती की सारी बात को सत्य मानो और उसके आदेश को मां का आदेश मानकर स्वीकार

करो" सूर्य देवता आकाश से उतरकर किसी लहर में लुप्त हो गए। कवि ने इस घटना को भावात्मक स्वरूप देने का प्रयत्न किया है। कवि कहता है कि जब सूर्य देवता यह आकाशवाणी करके लुप्त हो गये तो उनके इस प्रकार लुप्त हो जाने से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह कुन्ती के व्यवहार को देखकर इस सबके लिए अपने आपको उत्तरदायी समझ रहे हों और अब इस दुर्वह दायित्व से बचने के लिए कहीं लुप्त हो गए हों। कर्ण ने अस्त होते हुए सूर्य को नमस्कार किया और माता कुन्ती की चरणरज को अपने माथे पर लगाते हुए अत्यन्त दुखी स्वर में कहने लगा—'तुम किस मुख से मुझे अपना पुत्र कहने आई हो ?"

क्या तुम्हें कर्ण .... मैं दुर्भार बना था।

शब्दार्थ—अपूत = कपूत। मल = निकृष्ट वस्तु। जना = जन्म दिया।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण के मन में वर्षों से संचित अपमान और तिरस्कार के विषघूंट व्यंग्य बाणों के रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। उसके अंतर के द्वेष और प्रतिशोध के भाव अपने उग्रतम रूप में प्रकट हुए हैं। जब माता कुन्ती कर्ण को अपना बेटा स्वीकारती है और अपने इस कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिए हर सम्भव यत्न करती है तो कर्ण प्रत्युत्तर में कुन्ती से पूछता है—"मैं तो सूतपुत्र हूं, मुझसे आपका क्या प्रयोजन हो सकता है ? मैं तो मां के शरीर से उत्पन्न निकृष्ट कपूत हूं। आप तो बहुत बड़े वंश की ठकुरानी हो। आप अर्जुन समान पराक्रमी वीर की माता हो, कुरुवंश की साम्राज्ञी हो। इसके विपरीत मैं नाम-गोत्र से हीन और अत्यन्त दीन एवं प्रताड़ित हूं। एक सारथिपुत्र होने के नाते मैं सामाजिक दृष्टि से बहुत छोटा हूं। आप तो ठकुरानी हो, मुझे लेकर क्या करोगी ? इस निकृष्ट व्यक्ति को अपनी पवित्र गोद में कैसे स्थान दोगी ? मुझे अपने जन्म की दुखद कथा के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान है, उस बात को और आगे मत बढ़ाओ। इस प्रकार निरर्थक बातें कह-सुन कर मुझे और अधिक दुखी मत करो। मैं इस बात को बहुत अच्छी तरह जानता हूं कि मुझे किसने जन्म दिया था और किसके लिए मैं असह्य भार सिद्ध हुआ था।" कर्ण के इस कथन का आशय यही है कि वह यह जानता है कि कुन्ती ने ही उसे जन्म दिया था किन्तु उसे यह भी भूला नहीं है कि वह कुन्ती के लिए ही एक असह्य भार बन गया था। तभी तो कुन्ती ने उसे एक मंजूषा में बन्द करके जल में प्रवाहित कर दिया था।

सह विविध यातना .... दे पायी तुम।

शब्दार्थ—पयपान = दुग्धपान। क्लांति = दुखी। पय = दूध।

व्याख्या—कर्ण अपने मन की व्यथा को स्वर प्रदान करते हुए कुन्ती से कहता है कि—"मनुष्य विविध प्रकार की यातनाएं और कष्ट सहकर संसार में पदार्पण करता है। जब मनुष्य पहले-पहल इस संसार में पग रखता है तो

वह भूखा और प्यासा होता है, आते ही वह अपनी भूख और प्यास को प्रकट करने के लिए रोता और चिल्लाता है। तथापि माता ममता के पवित्र स्नेह के वशीभूत होकर नवजात शिशु का सारा दुखभार हरण कर लेती है। उसे अपने हृदय से लगाकर दुग्ध पान कराती है। उसके मुख पर स्नेहसिंचित चुम्बनों की झड़ी लगाकर वह उसकी सारी क्लान्ति मेट देती है। जब माता ममता-भरे नेत्रों से बालक को निहारती है तो उसके अंग-अंग में अमृत-सा छलकने लगता है। कर्ण कुन्ती से पूछता है कि "किन्तु यह सत्य है कि तुमने उस दिन मुझे अपने हृदय से नहीं लगाया था। यहां तक कि तुमने मुझे दुग्धपान तक नहीं कराया। अब तुम्हीं बताओ कि तुम किस आधार पर अपना स्वत्व लेकर आई हो।"

उलटे मुझको असहाय .... हुई मरघट में।

शब्दार्थ---आयुर्बल = आयु का बल। काल-कवल = मृत्युग्रास।

व्याख्या---कुन्ती के प्रति अपने घृणा और द्वेष के भावों को अभिव्यक्त करते हुए कर्ण उससे कहता है कि---"तुमने मुझे हृदय से लगाने के बजाय नदी की धार के हवाले कर दिया था। मुझे इस प्रकार असहाय छोड़कर तुम सामाजिक मान और मर्यादा के सुन्दर महल में जाकर छिप गईं अर्थात् तुमने पुत्र-प्रेम की अपेक्षा सामाजिक मान-मर्यादा को ही अधिक महत्वपूर्ण समझा था। यदि तुम्हारे ऐसा करने पर भी मैं जीवित बच गया तो वह अपने आयु-र्बल के कारण बचा अन्यथा मेरे जीवित बचने का कोई प्रश्न ही नहीं था। किसी ने भी मुझे मृत्यु से नहीं बचाया। तुमने भी मेरा अहित करने में क्या कमी रक्खी थी, असहाय नदी की धार में छोड़ दिया था। इस प्रकार तुमने मुझे जीवन नहीं अपितु स्पष्टतः मृत्यु ही दी थी। तथापि मनुष्य का भाग्य उसे कहीं का कहीं ले जाता है। तुमने तो अपने कलेजे पर पत्थर रखकर मुझे नदी की धार में छोड़ दिया था। किन्तु मेरा भाग्य मुझे मेरी वास्तविक मां (अर्थात् राधा) के पास ले गया। अब तो सब-कुछ निपट चुका है। युद्ध होने में कुछ ही क्षण बाकी हैं। जीवन अन्तिम दांव पर लगा हुआ है। अब तुम मेरे लिए प्यार का उपहार लेकर आई हो किन्तु अब मेरे पास कुछ भी तो नहीं है। तुम तो एक प्रकार से मरघट में धन खोजने आई हो जोकि असंभव है।"

अपना खोया संसार .... हृदय लगा कर सेंका।

शब्दार्थ---स्वत्व = अधिकार। सुकीर्ति = सम्मान।

व्याख्या---इन पंक्तियों में कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में कुन्ती से यह कह देता है कि वह राधा का गौरवपूर्ण स्थान कभी भी नहीं पा सकती क्योंकि राधा ने बिना किसी स्वार्थ के उसका पालन-पोषण किया था और बिना

कोख से जन्म दिये ममता का स्नेहांचल फैलाया था। कर्ण अपना संकल्प सुनाते हुए कहता है—"हे मां कुन्ती, अब तुम अपना खोया हुआ कर्ण कभी नहीं प्राप्त कर सकोगी। राधा माता का गौरवपूर्ण स्थान भी तुम नहीं पा सकोगी। यद्यपि तुम आज राधा मां का अधिकार छीनने आई हो किन्तु तुमने क्या कभी भी संतुलित मन से यह सोचा है कि उसे सेवा प्यारी थी और तुम्हें केवल सामाजिक मान-मर्यादा से ही प्यार था। तुममें और राधा में यही अन्तर है कि तुम्हें मुझसे अधिक अपने सम्मान की चिन्ता थी जबकि राधा को मुझसे असहाय एवं अनाथ की चिन्ता थी। यही कारण है कि तुम ठकुरानी अथवा राजरानी बनने की धुन में नारी के सहज रूप की भी रक्षा नहीं कर सकीं। तुमने तो जन्म देकर मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दिया था किन्तु उसने मुझे अभावों से उठाकर हृदय से लगाया, वास्तविक माँ का प्यार दिया।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने भारतीय नारी के निश्छल एवं परोपकारी रूप की भी एक भव्य झाँकी प्रस्तुत की है। साथ ही सामाजिक मान-मर्यादा के मिथ्याडम्बरों का थोथापन भी उजागर किया है।

उमड़ी न स्नेह की .... आज अपना कर ?

शब्दार्थ—कुलहीन = जिसका कोई कुल-वंश न हो।

व्याख्या—कर्ण पुनः कुन्ती के मातृ-हृदय को झकझोरते हुए उससे कहता है कि—"हे माँ कुन्ती, जब तुमने मुझे जन्म दिया था, मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में स्नेह की उज्ज्वल धारा नहीं उमड़ी थी बल्कि सच तो यह है कि मुझे पाकर तुम चिन्ता और भय के कारण सूख गई थीं। दूसरी ओर, जिस दिन राधा ने मुझे पाया था, कहते हैं कि उसे दूध उतर आया था। हे माँ कुन्ती, तूने मुझे जन्म देकर भी मुझे अपना पुत्र नहीं समझा और राधा ने मुझे धूल में से उठाकर अपने पुत्र जैसा प्यार दिया। अब तुम्हीं कहो, मैं कैसे राधा के उपकारों को भूल जाऊं ? कैसे अपनी आत्मा को मारकर तुम्हें माँ का आदर और सम्मान दूं ? आपके ये सारे प्रयत्न बेकार हैं, मैं अब तुम्हारा पुत्र कभी भी नहीं बन सकता। अपनी सारी आयु तो मैंने कुलहीन, जाति और गोत्र-विहीन कहलाकर बिता दी, सारे जीवन इसी कारण तिरस्कार और अपमान का विष पीता रहा। अब यदि मैं तुम्हारा पुत्र बन भी गया तो उससे क्या अन्तर पड़ने वाला है।"

विशेष—कवि ने पहले पद की 'कहते हैं, उसको दूध उतर आया था' पंक्ति में राधा के ममतामय हृदय का अत्यन्त भावात्मक वर्णन किया है। 'दूध उतर आना' मातृत्व की पहली पहचान है। अन्तिम दो पंक्तियों में कर्ण की मनोव्यथा भी साकार हो उठी है।

यद्यपि जीवन की .... जग पड़ा अचानक मेरा।

शब्दार्थ—हेरा = देखा।

व्याख्या—कर्ण अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कुन्ती से कहता है कि—"यद्यपि मेरे जीवन की कथा अत्यन्त दुखद और कलंकमयी है किन्तु बराबर अपमान और तिरस्कार सहते रहने के कारण मुझे अब उसके कारण दुख नहीं होता। तुमने दुखपूर्वक जो कथा मुझे सुनाई है, यह कथा तो मैं केशव के मुख से पहले ही सुन चुका हूं। अर्थात् मेरे लिए तुम्हारी वह कथा नई नहीं है और तुम्हारा मन्तव्य सुनकर मुझे आश्चर्य नहीं हुआ है। मुझे पता नहीं कि अब सहसा क्या हो गया है कि तुम सभी का प्रेम अनायास ही मेरे लिए उमड़ आया है। आज तक तो आप में से किसी ने भी मेरी ओर स्नेह से नहीं देखा, अचानक ही मेरा यह सौभाग्य कैसे जाग पड़ा।"

मैं खूब समझता हूं .... नहीं लायी थी।

शब्दार्थ—असमय = गलत समय। अंक = गोदी।

व्याख्या—कुन्ती, केशव आदि के व्यवहार में हुए इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर कर्ण समझ गया कि इस सब के पीछे कोई रहस्यमय भेद अवश्य है। कर्ण प्रत्युत्तर में कुन्ती से कहता है कि—"नीति के सम्बन्ध में मुझे पूरा ज्ञान है। मैं यह भी जानता हूं कि अचानक ही मेरे प्रति आप सब में यह प्रेम क्यों उमड़ आया है? आप वस्तुतः पाण्डव-कुल से अलग हुए कर्ण को पुनः पाण्डव-कुल में मिलाने नहीं आई हो बल्कि आपके यहां आने का मूल प्रयोजन यही है कि आप मुझे दुर्योधन से अलग करना चाहती हैं। अब जबकि रण छिड़ने में कुछ ही समय बाकी रह गया है, उसके भीषण परिणामों को सोचकर तुम काँप उठी हो। मुझे यह ज्ञान है कि तुम मुझे अपनी गोदी में लेने नहीं बल्कि मुझे दुर्योधन से अलग करके दुर्योधन की शक्ति दुर्बल करने आई हो। और यदि तुम वस्तुतः पुत्र-वियोग से दुखी होकर मेरे पास आई होतीं तो जो स्नेह की अविरल धारा तुममें आज अचानक ही उमड़ आई है वह उस दिन कहां थी जबकि तुमने मुझे पत्थर का हृदय करके नदी की धार में बहा दिया था। उस दिन तुमने सामाजिक नियमों को तोड़कर, नैतिक सिद्धांतों की अवहेलना करके मुझे हृदय से क्यों नहीं लगा लिया था। आज से पहले तुम्हारी यह स्नेहधारा क्यों नहीं उमड़ी थी? आज ही अचानक तुम्हारा यह हृदय-परिवर्तन कैसे हो गया है?"

केशव पर चिन्ता .... छोड़ने वाला दुर्योधन को।

शब्दार्थ—सुत = बेटा।

व्याख्या—इन पंक्तियों में अर्जुन के प्रति कर्ण की तीव्र प्रतिशोध की भावना देखी जा सकती है। कर्ण कहता है कि—"अर्जुन जैसा भाग्यशाली कौन हो सकता है? जब स्वयं श्रीकृष्ण उसके साथ हैं तो उसे किसका भय हो सकता है। यही नहीं, उसके सौभाग्य की पराकाष्ठा तो यह है कि उसके पिता मुझे भी कवच-कुण्डलविहीन कर गये हैं और इस प्रकार अर्जुन का

मार्ग बहुत सरल हो गया है। जो थोड़ी-बहुत कमी रह गई थी उसे पूरा करने के लिए उनकी माता कुन्ती आई है। कुन्ती का प्रयोजन शत्रुदल अर्थात् दुर्योधन के दल को दुर्बल करना है। तथापि देवि, यह सब नहीं होगा। तुम जा सकती हो। जाओ और जैसे भी हो, अपने पुत्र के सुखद भविष्य के लिए प्रार्थना करो। मेरा तो दृढ़ संकल्प यही है कि भले ही श्रीकृष्ण अर्जुन का साथ छोड़ दें किन्तु मैं दुर्योधन का साथ कभी नहीं छोड़ूंगा।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण की चारित्रिक दृढ़ता के दर्शन होते हैं।

कुरुपति का मेरे .... नहीं मिलती थी।

शब्दार्थ—नैवेद्य = देवता पर चढ़ा हुआ पदार्थ। प्रसून = फूल।

व्याख्या—दुर्योधन के प्रति अपने मनोभावों का वर्णन करते हुए कर्ण कुन्ती से कहता है—"मैं दुर्योधन का साथ कभी भी नहीं छोड़ सकता क्योंकि मेरे शरीर का रोम-रोम उसका ऋणी है। जब भरी सभा में मैं अपमानित किया जा रहा था, उस समय दुर्योधन ने मुझ पर जो भारी उपकार किया था, उससे मैं जीवन भर उऋण नहीं हो सकता। यदि मैंने अब उसके साथ छल किया और पाण्डवों के साथ जाकर मिल गया तो संसार में मुझे यश नहीं मिलेगा, सभी लोग मुझे धिक्कारेंगे। यदि मैं उसके लिए अपने प्राण भी दे दूं, वह भी कम है। मां कुन्ती, मैं तो अधर्म के मार्ग पर पग बढ़ा चुका हूं। मेरी स्थिति तो वही है जो किसी देवता की वेदी पर चढ़े हुए पूजा के फूल की होती है अर्थात् मैं दुर्योधन के प्रति वचनबद्ध हूं। इसलिए जो कर्ण अब किसी और का हो चुका है, उसे प्राप्त करने की इच्छा त्याग दो। जो फूल पूजा की वेदी पर पहले ही अर्पित हो चुका है उसे प्राप्त करने की बात मत सोचो। इस प्रकार का लोभ दुखदायी ही होगा।" यह सारी बात कहकर कर्ण मौन हो गया और उसकी आंखों से अश्रु की धारा अनवरत वह चली। इधर कुन्ती भी किंकर्तव्यविमूढ़ बनी हुई थी। वह कहना तो बहुत कुछ चाहती थी किन्तु कहने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं था।

अम्बर पर मोती गुंथे .... छप-छप करती थी।

शब्दार्थ—अम्बर = आकाश। चिकुर = केश। स्तब्ध = मौन। नीरव = शान्त। झिल्ली = झींगुर।

व्याख्या—इन पदों में कवि ने प्रकृति के अत्यन्त सुरम्य चित्र चित्रित किये हैं। निशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि रात होने पर आकाश में असंख्य तारे चमचमाने लगे जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानों वे निशा-सुन्दरी के बालों में गुंथे हुए सितारे हों। सारे संसार पर रात्रि की कालिमा छा गई थी जोकि ऐसी लग रही थी जैसे कि निशासुन्दरी ने अपनी आंखों का अंजन बिखेर दिया हो। आकाश में फैले हुए अनन्त सितारे देख

कर ऐसा प्रतीत होता था मानों वे सितारे निशासुन्दरी की काली साड़ी के आंचल में टँके हुए हों। सारी दिशाएँ चुप थीं और सारा वातावरण शान्त था। कहीं भी कोई ध्वनि सुनाई नहीं दे रही थी। बागों में कोई भी पक्षी नहीं चहचहा रहा था। केवल झींगुर की ध्वनि जब तब सुनाई पड़ती थी, अथवा जल में छपछप करती मछली का भान होता था।

विशेष—(१) 'रश्मिरथी' में प्रकृति वर्णन अत्यल्प है—जितना कुछ भी है अत्यन्त सुन्दर और मनोरम है। एक सुन्दरी के रूप में निशा का उपर्युक्त चित्रण निस्सन्देह कवि की असाधारण काव्य-प्रतिभा का परिचायक है।

(२) रात्रि का अंधकार और दिशाओं की स्तब्धता कुन्ती के प्रयोजन की असफलता की ओर भी संकेत करती है। कवि ने कुन्ती के पराजित एवं निराश मन के वर्णन के लिए उपयुक्त प्राकृतिक पृष्ठभूमि तैयार की है।

इस सन्नाटे में ....कुसुम न आज खिलेगा।

शब्दार्थ – सरित किनारे = नदी के किनारे। सिलावत् = चट्टान की तरह। कुत्सा = निन्दा। पर धन = दूसरे का धन।

व्याख्या—कर्ण और कुन्ती की इस असफल वार्ता के क्रम में ही कवि आगे की स्थिति का वर्णन करते हुए कहता है कि इस सन्नाटे के वातावरण में जान्हवी-तट पर केवल दो व्यक्ति (कर्ण और कुन्ती) चट्टानों की तरह मूक और शान्त खड़े हुए थे। लगता था कि भाग्य ने इन दोनों की वाक्-शक्ति को कुँठित कर दिया है। कर्ण को इस बात का बहुत कष्ट था कि अनायास ही उसने कुन्ती के प्रति इतने विषैले शब्दों का प्रयोग क्यों किया? उसे, कुन्ती के प्रति कहे गये अपने व्यंग्यपूर्ण शब्दों के लिए ग्लानि का अनुभव हो रहा था। वह सिसक रहा था। दूसरी ओर कुन्ती, कर्ण के मुख से अपनी निन्दा सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब कर्ण से क्या कहा जाए। अन्ततः उसने अपने भीतर साहस बटोरा और कर्ण से कहने लगी, "बेटा कर्ण, मैं किसी वेदी पर अर्पित फूल को उठाने नहीं आई। मैं किसी अन्य व्यक्ति के फूल अथवा पूंजी को भी हथियाने नहीं आई। मैं तो अपने ही रक्त और मज्जा से बने कर्ण को ढूंढने आई थी। अपने ही शरीर के अंश को खोजने आई थी। पर अब मेरे मन में कोई द्विविधा नहीं रही है। अब मुझे यह निश्चय हो गया है कि मेरा कर्ण मुझे नहीं मिलेगा। जिस मां से वह बिछुड़ गया है उस मां को अब वह नहीं पा सकेगा।"

तब जाती हूं क्या..............................करुणा का अभिमानी है।

शब्दार्थ—अमोध करुणा—अपार दया।

व्याख्या—कर्ण के दो-टूक उत्तर से निराश होकर कुन्ती ने अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक और युक्ति सोची। वह कर्ण से कहने लगी—"ठीक

है, अब मैं जाती हूं क्योंकि अब मेरे पास तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए कुछ भी नहीं है। मैंने जो कुछ भी कहना था कह दिया है। मैं यह भी जानती हूं कि मैंने जीवन भर तेरे प्रति जो क्रूरता दिखलाई है, और इस प्रकार मेरे भाल पर जिस अक्षम्य दोष का टीका लगा रहा है, उसे मैं क्षण भर में क्या कहकर मेट सकती हूं; मेरा दोष वस्तुत: इतना गंभीर है कि क्षण भर कुछ कह-सुनकर वह समाप्त नहीं हो सकेगा।" कुन्ती पुन: कर्ण को कहती है कि—"यूं तो मैं अपने मन में बहुत आशा लेकर आई थी किन्तु वास्तविकता यह है कि मैं केवल अपने बल के सहारे ही तेरे पास नहीं आई थी। मुझे यह भी ज्ञात था कि तू एक बहुत बड़ा दानी है और तेरे में दया एवं करुणा का विशाल सागर समाया हुआ है। इसी भरोसे पर मैं तेरे पास आई थी।"

थी विदित वत्स .... कहीं से मन में।

शब्दार्थ—प्रस्रवण = झरना।

व्याख्या—कुन्ती कर्ण की दानशीलता की दुहाई देती हुई उससे कहती है कि "बेटा, मुझे यह भी ज्ञात था कि तेरे द्वार से कभी भी कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता। तेरी इसी सुकीर्ति के बल पर मैं यहां तक चली आई थी। किन्तु मैं वस्तुत: अभागिनी हूं कि तेरी मां होते हुए भी मुझे तेरे द्वार से खाली हाथ लौटना पड़ रहा है। तथापि, मेरे मातृहृदय से तेरे लिए आशीष-वचन ही निकल रहे हैं। मेरी कामना है तू जीता रहे और मुझे कभी भी अपयश अथवा अपमान न सहना पड़े। कभी न कभी तो संसार तुझे मेरे पुत्र के रूप में पहचानेगा ही। अब जाने से पूर्व मेरे पास आ, मेरे हृदय से लग जा। कम से कम अंतिम बार तो अपने पुत्र को अपने हृदय से लगा लूं।" यह कहकर कुन्ती ने कर्ण को हृदय से लगा लिया। हृदय से लगाते ही कर्ण की काया खुशी से पुलक उठी। उसे ऐसा लगा जैसे किसी संजीवनी-शक्ति ने उसे स्पर्श किया हो। उसके शरीर में प्राणों का नवसंचार हो गया और उसके व्याकुल मन में से मानों अश्रुजल का स्निग्ध झरना बह चला हो। वर्षों बाद प्राप्त हुई मां की ममता ने कर्ण के कठोर हृदय को विगलित कर दिया। उसका हृदय अनायास ही पसीज उठा।

पहली वर्षा में .... दे न सकूंगा।

शब्दार्थ—मही = धरती। स्वत्व = अधिकार।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने वर्षों बाद हुए मातृ-पुत्र मिलन का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है। कवि कहता है कि जब कुन्ती ने कर्ण को हृदय से लगाया तो कर्ण का हृदय एक स्निग्ध झरने की तरह फूट पडा। जिस प्रकार पहली वर्षा के बाद सूखी और तप्त धरती एक दिव्य शीतलता का अनुभव करती है, ठीक उसी प्रकार जब कर्ण ने पहली बार माता कुन्ती के हृदय का स्पर्श किया तो कुछ समय तक वह अपने ही अश्रुजल में भीगता रहा।

अपने समूचे उपेक्षित जीवन में माता की पावन गोदी में बैठने के ये दो-चार क्षण, कर्ण की सम्भवतः सबसे बड़ी उपलब्धि थी। कुछ समय के पश्चात् उसने कुन्ती के चरणों को स्पर्श किया और भरी हुई वाणी में बोला—"हे माता, आज मैं इस बिछुड़ी गोदी को पाकर धन्य हो गया हूं किन्तु मैं क्या करूं, विवश हूं। मुझे दुख है कि तुम मेरे पुत्र-अधिकार समय पर लेकर नहीं आई—सच, तुम बहुत देर से आई। अब तो सब कुछ समाप्त हो चुका है। अतः अब मैं तुम्हारी ममता का मूल्य तो नहीं दे पाऊंगा, फिर भी तुम्हें खाली हाथ नहीं लौटने दूंगा।"

विशेष—पहले पद में कवि ने मानवीय भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का अत्यन्त सशक्त और सफल प्रयोग किया है। सम्भवतः समूचे 'रश्मिरथी' काव्य में प्रकृति का इतना सुन्दर और प्रभावात्मक प्रयोग अन्यत्र न हुआ हो। ये चार पंक्तियां 'रश्मिरथी' की श्रेष्ठतम पंक्तियों में परिगणित की जा सकती हैं।

की पूर्ण सभी की.......................ही उलट-पलट जायेगा।

शब्दार्थ—निमित्त=कारण। समर=युद्ध।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण पुनः इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि उसका एकमात्र शत्रु अर्जुन है और उसके जीवन का एकमात्र उद्देश्य अर्जुन से प्रतिशोध लेना है। अर्जुन के प्रति कर्ण की प्रतिशोध-भावना आद्योपान्त एक-सी प्रखरता लिए रही है। कर्ण अपनी माता कुन्ती से कहता है—"हे माता, जब सभी लोग मेरे द्वार से सन्तुष्ट और तृप्त होकर जाते हैं, सभी की सब अभिलाषाएं, आशाएं पूर्ण होती हैं, तो भला मैं तुम्हें निराश क्यों जाने दूंगा? तथापि मेरा निवेदन है कि तुम हठ मत करो। मैं तुम्हारे पैरों में पड़ता हूं, मुझे मेरे सत्यपथ से मत हटाओ। इतनी कठोर मत बनो कि मैं तुम्हें तुम्हारी मांगी हुई वस्तु ही न दे सकूं। वस्तुस्थिति यह है कि कल जो युद्ध होने जा रहा है, वह मेरा और अर्जुन का युद्ध है। दुर्योधन तो केवल कारण मात्र है, वास्तविक द्वेष और वैमनस्य मेरे और अर्जुन के मध्य है। अब इस सुअवसर को मुझसे मत छीनो। अपनी ममता का इतना बड़ा मूल्य मत मांगो। सच तो यह है कि यह मूल्य इतना बड़ा होगा जोकि मैं तुम्हारे द्वारा दिए जाने वाले यश, मान, सत्ता, सिंहासन, जाति एवं कुल-प्रतिष्ठा सबके संचित रूप के बदले भी नहीं दे सकूंगा। यदि मैं अर्जुन से नहीं लड़ा तो मेरी कीर्ति नष्ट हो जायेगी। मैं स्वयं अपनी दृष्टि में गिर जाऊंगा। यदि मैं अर्जुन से नहीं लड़ा तो संसार मेरे चरित्र का सही मूल्यांकन नहीं कर पायेगा। मेरी सारी साधना नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी। मेरे पास अपना कहने के लिए कुछ भी नहीं बच रहेगा।"

तुम दान-दान रट रही.......................पुरातन प्रण को।

शब्दार्थ—पुरातन = पुराने। प्रण = प्रतिज्ञा।

व्याख्या—कर्ण अब एक महत्वपूर्ण रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहता है कि—"हे माता, तुम बार-बार मेरी दानशीलता की दुहाई दे रही हो किन्तु क्या सदैव पुत्र ही दान करता रहेगा ? यह ठीक है कि मैं और सभी के लिए दानवीर हूं किन्तु क्या मैं तुमसे कुछ नहीं मांग सकता ? कभी-कभी तो पुत्र भी माता से मांग लेता है। अत: मैं तुमसे एक कर्ण मांग लेता हूं, और उस एक कर्ण के बदले में तुम्हें चार कर्ण देता हूं। जहां तक अर्जुन का प्रश्न है उसे तो मैं छोड़ूंगा नहीं किन्तु तुम्हारे अन्य चार पुत्रों को मैं जीवनदान देता हूं। अर्जुन के प्राण लेने का तो मेरा बहुत पुराना प्रण है। भला उस प्रण को मैं कैसे त्याग सकता हूं।"

विशेष—यहां भी अर्जुन के प्रति कर्ण का प्रखर प्रतिशोध सुस्पष्ट है।

पर अन्य पाण्डवों पर.......................मान मोद में फूलो।

शब्दार्थ—हर्षित हृदय = प्रसन्न हृदय। वाम = उल्टा। मोद = खुशी में।

व्याख्या—कर्ण अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए कुन्ती से कहता है कि—"अर्जुन के अतिरिक्त जो तुम्हारे अन्य चार पुत्र हैं उन्हें मैं जीवनदान देता हूं। अवसर प्राप्त होने पर भी मैं उन्हें नहीं मारूंगा। अब तुम खुश होकर विदा हो। मैं तुम्हें यह भी विश्वास दिलाता हूं कि मैंने तुम्हें जो वचन यहां दिया है, रण-क्षेत्र में भी मैं उसका आदर करूंगा।" कर्ण के ये वचन सुन कुन्ती कातर शब्दों में बोल उठी "ओ हठी कर्ण, तूने यह क्या किया ? मैं तो तुझे लेने आई थी और जब तू ही मेरे साथ नहीं चल रहा तो सब वृथा है। स्वयं को लेकर तूने क्या कुछ नहीं ले लिया ? मैं तो यहां इस आशा से आई थी कि तू भी मेरा छठा पुत्र बन जायेगा। और इस प्रकार मैं पांच की नहीं बल्कि छः पुत्रों की माता बनूंगी। किन्तु मैं क्या करूं, मेरा भाग्य ही मुझसे रूठा हुआ है। एक को तो मैं पा नहीं सकी, एक को मैं खो रही हूं—इस प्रकार मैं तो केवल चार पुत्रों की ही माता रह गई। कर्ण, तुमको तो मैं पा नहीं सकी और अर्जुन को इसलिए नहीं पा सकूंगी क्योंकि तू उसके प्राणों का भूखा है, अतः मेरे पुत्रों की संख्या तो चार ही रह गई।" माता कुन्ती के इन शब्दों को सुनकर कर्ण कहने लगा—"हे माता तुम छः और चार की बात भूल जाओ। जो कुछ मेरा निश्चय है उसे ही प्रसन्न होकर स्वीकार करो।"

जीते जो भी.......................की बनी रहोगी।

शब्दार्थ—समर = युद्ध। वीरगति = मृत्यु। पुत्रिणी = पुत्रों वाली माता।

व्याख्या—कर्ण अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए कुन्ती से कहता है कि—"इस युद्ध में कोई भी जीते अथवा हारे, तुम्हारी विजय निश्चित है। मां, अन्ततः तुम ही विजयी होगी। इस युद्ध में कितने भी पाण्डव कटें-मरें किन्तु तुम्हारे पुत्रों की संख्या पांच से कम नहीं होगी। पाण्डव पूर्ववत् पांच

के पांच बने रहेंगे। यदि किसी प्रकार दुर्योधन इस युद्ध में हार गया और मुझे अर्जुन के हाथों मृत्यु का वरण करना पड़ा तो भी तुम पांच पाण्डवों की माँ अवश्य बनी रहोगी। मेरे मर जाने के पश्चात् तुम्हारे पांचों पुत्र तो सुरक्षित हैं ही। इस प्रकार तुम पांच पाण्डवों की माता अवश्य बनी रहोगी।"

पर, कहीं काल..................केवल मैं जिसे हरूंगा।

शब्दार्थ—काल = मृत्यु। कोप = क्रोध। निर्दलित = निर्धन। प्रताड़ित = तिरस्कृत। विधि = भाग्य। त्रास = डर।

व्याख्या—इसी प्रसंग में कर्ण एक अन्य सम्भावना का वर्णन करते हुए कुन्ती से कहता है कि—"यदि किसी प्रकार स्थिति विपरीत हो गई अर्थात् यदि कहीं अर्जुन की ही मृत्यु हुई और दुर्योधन रण में जीत गया तो मैं संसार को एक नया खेल दिखाऊंगा और दुर्योधन को प्राप्त हुई विजयश्री का मोह त्याग कर, तुम्हारे चरणों की शरण लूंगा। माँ, मैं विजय का भूखा नहीं हूं, मैं तो उनका साथी हूं जो संसार में निर्धनता, अपमान, तिरस्कार, अभाव, निन्दा आदि के अभिशापों से ग्रसित हैं। मैं तो सदा-सदा से दीन-हीनों का साथी रहा हूं और मैंने भी उनकी भाँति जीवन भर भाग्य के विरुद्ध संघर्ष किया है। यह ठीक है कि पाण्डवों को राज्य का सुख प्राप्त नहीं है किन्तु जब स्वयं श्रीकृष्ण उनके साथ हैं तो उन्हें क्या दुःख हो सकता है। जब स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उनकी पीठ पर हैं तो भला मैं ही उनका क्या उपकार कर सकूंगा? ऐसा कौन-सा भय है जो केवल मैं ही हर सकता हूं। श्रीकृष्ण के साथ रहते हुए मेरी उन्हें क्या आवश्यकता पड़ सकती है।"

विशेष—इन पदों में कर्ण के उदात्त चरित्र की एक भव्य झांकी प्रस्तुत है। जब वह अपने आपको दीन-हीनों का साथी कहता है तो यह निर्विवाद है कि वह साम्राज्य और सत्ता का लोभी नहीं है। इन पदों में कर्ण एक जनवादी नेता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है।

हां अगर पाण्डवों की..................रात अंधेरी होगी।

शब्दार्थ—निःस्व = दरिद्र। सह-जेता = विजय प्राप्त करने वाला साथी।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण पुनः अपनी माता को आश्वस्त करते हुए कहता है कि "यदि किसी प्रकार इस युद्ध में पाण्डवों को विजय प्राप्त न हो सके और वे किसी भी प्रकार दुर्बल पड़ गये तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि मैं दुर्योधन के साथ विजयोल्लास का भागीदार नहीं बनूंगा। मैं पुनः दरिद्र और दलितों का नेता बनूंगा। तथापि तुम्हारे लिए चिन्तित होने का कोई कारण नहीं है। यह समय तो पाण्डवों के लिए अत्यन्त अनुकूल समय है, सर्वत्र उनकी कीर्ति-पताका फहरा रही है। सभी परिस्थितियां इस समय पाण्डवों के अनुकूल हैं। मेरे लिए विजय की घड़ी अनुकूल नहीं है। मैं तो तुम्हारे पास उस समय आऊंगा जबकि अंधेरी रात जैसी भयावह स्थिति होगी।" कर्ण का आशय यह

है कि जब दुर्योधन जीत जायेगा और पांचों पाण्डव पराजित हो जायेंगे, और जब इस प्रकार समूचे पाण्डव-कुल पर दुर्भाग्य की काली रात छा जायेगी, उस समय मैं पाण्डव-पक्ष में सम्मिलित हो जाऊंगा।

यश, मान, प्रतिष्ठा.................अन्धकार क्यों होगा?

शब्दार्थ—परिभव=दुख। प्रदाह=जलन। अच्युत=श्रीकृष्ण। क्षार=नष्ट।

व्याख्या—कर्ण पुनः कुन्ती को आश्वस्त करते हुए कहता है कि—"जब सभी पाण्डव पराजित हो जायेंगे, मैं उनका भाई बनकर आऊंगा। किन्तु तब मेरे आने का प्रयोजन यश, मान, सिंहासन और सत्ता लेना नहीं होगा। मैं वैभव-विलास के इन सभी स्वार्थों से बहुत ऊपर हूं। उस समय मैं पाण्डवों को अभय करने आऊंगा, उनके दुखों, जलन, श्रम तथा भय आदि हरने के लिए आऊंगा। दुख के समय अपने छोटे भाईयों को अपना प्यार देने आऊंगा क्योंकि दुख में मनुष्य सामान्य से सामान्य व्यक्ति की सहानुभूति का भी स्वागत करता है। हे माता, जब मेरे उन छोटे भाईयों पर घोर विपत्ति के पहाड़ टूटेंगे तब मैं उन्हें 'भाई' कह कर पुकारूंगा। उन्हें अपने हृदय से लगाऊँगा, उनके दुख को हरूँगा। उनके निस्तेज एवं संत्रस्त शरीर में ज्योति की नवीन आभा भरने आऊँगा। उनके दुर्भाग्य को पलटने के निमित्त आऊँगा। किन्तु नहीं, यह सब तो मात्र कल्पना है। ऐसा तो होगा ही नहीं। पाण्डवों के पराजित होने का तो प्रश्न ही नहीं है। जब पाण्डवों पर श्रीकृष्ण का वरदहस्त है, जब उनकी रक्षा के लिए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण विद्यमान हैं तो उनसे अधिक भाग्यवान कौन होगा? ऐसे भाग्यवान व्यक्तियों को पराजय क्यों देखनी होगी? ऐसे भाग्यवानों को पराजय के अंधकार का सामना नहीं करना होगा।"

विशेष—इन पंक्तियों में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कर्ण को अपने अंधकारमय भविष्य के सम्बन्ध में कोई द्विविधा नहीं। वह मन ही मन इतना अवश्य जनता है कि अन्ततः पाण्डव ही विजयी होंगे और उसे तथा दुर्योधन को पराजय देखनी होगी। यह जानते हुए भी दुर्योधन का साथ देना और आद्योपान्त धर्म के सत्पथ पर अडिग रहना कर्ण के चरित्र की पराकाष्ठा कही जा सकती है।

मैं देख रहा.............................बार निकल जाता है।

शब्दार्थ—विलग्न=दुखी। निर्बाध=बेरोकटोक। पाश=बन्धन।

व्याख्या—कर्ण अपने अंधकारमय भविष्य की दुखद कल्पना करते हुए कहता है कि "माता, मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूं कि कुरुक्षेत्र के भयंकर रण में मानवसमूह पर मृत्यु की विनाशलीला मँडरा रही है। सारी धरती पर रक्त बिखरा हुआ है। मनुष्य के रक्त से लथपथ धरती वेदना से कराह रही है। तथापि मैं देख रहा हूं कि कर्ण का रथ बिना किसी रोक-टोक के आगे बढ़

रहा है।" कर्ण कल्पना में श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कह रहा है कि "हे श्रीकृष्ण, मैं देख रहा हूं कि आप अर्जुन के लिए अंधकार का बन्धन काट रहे हैं। अर्जुन के कल्याण के लिए आज युद्ध की गति ही विपरीत हो रही है। शत्रुदल अर्जुन एवं अन्य पाण्डवों को बार-बार बन्धनों में बांधना चाहता है किन्तु वह हर बार उस जाल से निकल जाता है। निस्सन्देह यह सब आपकी अपूर्व कृपा का फल है।"

मैं देख रहा हूं.........................भिन्न राह पायेंगे।

शब्दार्थ—महासमर=महाभारत का युद्ध। पटह=नगाड़े।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से युद्ध के दुखद परिणामों की ओर संकेत किया है। कर्ण अपनी माता को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—"हे माता, जो कुछ कल होना है, उसके सम्बन्ध में मेरे मन में कोई भी द्विविधा नहीं है। मुझे यह भी ज्ञात है कि महाभारत के भयानक युद्ध का क्या परिणाम होगा। मुझे पता है कि मैं पराजित होऊंगा. फिर भी मेरे मन में कोई घबराहट नहीं है। बल्कि, सच तो यह है कि मेरे भीतर दुगुना उत्साह बढ़ता जा रहा है। हे माता, युद्ध के नगाड़े बज चुके हैं, समूचा वातावरण भयानक बना हुआ है। सर्वत्र युद्ध की विनाशलील मंडरा रही है। चहुँ ओर मृत्यु का कराल मुख दीख रहा है। इस भयंकर प्रलय को वही लोग झेल सकेंगे जिनके हृदय में अमित उत्साह और मनोबल होगा। अत्यन्त उच्च मनोबल वाले पराक्रमी वीर ही इस प्रलय की लपटें खींचेंगे। तथापि इस भयानक युद्ध का अन्त भी सुस्पष्ट है। युद्ध में जो भी पक्ष विजयी होगा, वह अपनी किस उपलब्धि पर संतोष का अनुभव कर पायेगा। इस महानाश के बाद तो कुछ भी नहीं बच रहेगा। यदि कौरव पराजित हुए और विलीन हो गये तो भी क्या पाण्डवों को पूर्ण संतोष मिल सकेगा? निस्सन्देह नहीं।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने युद्ध की विभीषिका और उसके परिणामों की भयंकरता का भरा-पूरा परिचय दिया है। युद्ध के सम्बन्ध में इन पंक्तियों में जिस महान ऐतिहासिक और अकाट्य तथ्य का संकेत दिया गया है वह है—"युद्ध में कोई भी जीते, हानि दोनों पक्षों को होती है।" भारतीय इतिहास के महान सम्राट अशोक के हृदय परिवर्तन का रहस्य भी यही था।

हैं एक पंथ.........................उधर झुकते हैं।

शब्दार्थ—पंथ=मार्ग। निस्सार—सारहीन।

व्याख्या—कवि ने इन पंक्तियों में कर्ण के माध्यम से युद्ध सम्बन्धी गहन चिन्तन का परिचय दिया है कर्ण ने यह सिद्ध किया है कि युद्ध अन्ततः विनाशकारी होता है। कर्ण अपनी माता कुन्ती को सम्बोधित करते हुए कहता है—"माँ कुन्ती, युद्ध में कोई-सा भी पक्ष जीते अथवा हारे, स्वयं मरे अथवा शत्रु को मारे, दोनों ही स्थितियां अशुभ हैं। युद्ध की स्थिति में दोनों पक्ष एक ही

विनाशकारी मार्ग के पथिक हैं और दोनों का गन्तव्य भी एक ही है। अब इस युद्ध के टलने का कोई भी उपचार नहीं रह गया है। वस्तुतः विद्रोह का भाव ही सारहीन है। यह रण भी बेकार है। यह निर्विवाद है कि यह परस्पर बैर-भाव, यह युद्ध और रण की विभीषिका किसी उच्च लक्ष्य से अनुप्राणित नहीं है। मेरा और अर्जुन का, एक दूसरे को पराजित करने का प्रण भी तो खोखला है। किन्तु हम क्या करें, पता नहीं, क्यों हम इस युद्ध की आग में कूदने को आतुर हैं। वस्तुतः हम दोनों मृत्यु के इंगितों पर नाच रहे हैं। एक-दूसरे के रक्त की प्यास ही हमें इधर- उधर भटका रही है!"

लेकिन, चिन्ता यह.........................बिना ही मुख से।

शब्दार्थ—प्रभात=सवेरा। धूमकेतु=पुच्छल तारा।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कर्ण का रूप बहुत-कुछ एक तत्वज्ञानी का-सा बना। वह अपनी माता को कहता है कि "हे माता कुन्ती, फिर भी तुम इन सब चिन्ताओं में मत पड़ो। कल जो कुछ होना है, होने दो। सच, आज चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा दीख रहा है। आज की रात वस्तुतः बहुत काली है।" कर्ण सम्भवतः प्रलय की कालिमा की ओर संकेत कर रहा है। वह कहता है कि—"प्रलय के दुखद समय में जब सूर्य और चन्द्र भी अंधेरे में छिप जाते हैं और चारों ओर प्रलय की अंधेरी रात की तमिस्रा छा जाती है उस समय किरण अर्थात् ज्ञानरूपी प्रकाश की खोज करने वाले ज्ञानी लोग तड़प उठते हैं। प्रलय की ऐसी कालिमा में ज्ञानियों एवं तपस्वियों का मन भी व्याकुल हो उठता है। तब इसी प्रकार धूमकेतु थोड़ा-सा आलोक बिखेरते हुए प्रकट होता है और विध्वंस एवं विनाश के मरघट में तनिक आलोक प्रकट होता है।" यह कहकर कर्ण ने कुन्ती के चरणों का स्पर्श किया और फिर वह मौन हो गया। उसकी आंखों से दो अश्रुकण बह उठे। कुन्ती ने भी कर्ण के मस्तक को सूंघा और बड़े दुख के साथ बिना कुछ कहे-सुने लौट गई।

विशेष—(१) पहले पद की अन्तिम पंक्ति अर्थात् 'सत्य ही आज की रात बड़ी काली है' ऐतिहासिक महत्व रखती है। महाभारत का युद्ध अमावस्या के दिन आरम्भ हुआ था और अमावस्या की रात अंधेरी होती ही है।

(२) दूसरे पद में कवि ने एक सुन्दर रूपक बांधकर युद्ध की प्रलयंकारी प्रकृति का विवेचन किया है। इस पद में प्रयुक्त 'मरघट' अन्धकार का प्रतीक है। धूमकेतु का आगमन भी प्रलय का परिचायक है।

छठा सर्ग

कथावस्तु—भीष्म और कर्ण के मध्य काफी कटुता थी। भीष्म कर्ण के प्रति द्वेष-भाव रखते थे और इसका कारण यही था कि दुर्योधन कर्ण के कहने में अधिक था। एक प्रकार से इन दोनों की शत्रुता दुर्योधन के विश्वास को लेकर थी। युद्ध आरम्भ होने से पूर्व भीष्म ने कर्ण के पुत्र को रथी कहकर पुकारा किन्तु कर्ण को अर्द्ध रथी के नाम से संबोधित किया। कर्ण ने अपने आपको अपमानित अनुभव किया। युद्ध से पूर्व यह निश्चित हुआ कि दोनों एक साथ युद्ध में नहीं कूदेंगे। अन्ततः यही निश्चित हुआ कि महारथी भीष्म पहले लड़ेंगे और उनके बाद ही कर्ण युद्ध के मैदान में उतरेगा। छठे सर्ग के आरम्भ में ही युद्ध का वर्णन मिलता है। भीष्म युद्ध में धराशायी हो गए हैं। कर्ण उनसे युद्ध में उतरने की अनुमति लेने आता है। भीष्म, कर्ण को युद्ध की विभीषिका से अवगत कराते हुए पुनः युद्ध रोकने के लिए प्रयत्न करने का आग्रह करते हैं। कर्ण इस समय किसी प्रकार का उपदेश सुनने के लिए तैयार नहीं था। अन्ततः भीष्म ने कर्ण को युद्ध में जाने की अनुमति दे दी।

कर्ण के आ जाने से कौरवों की सेना में प्रबल उत्साह भर गया। कौरवों ने पांडवों के दल में खलबली उत्पन्न कर दी। इसी प्रसंग में कवि ने युद्ध की विभीषिका के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन भी प्रस्तुत किया है। युद्ध अन्ततः धर्म का लक्ष्य नहीं हो सकता। हिंसा के शोणित में सना हुआ युद्ध कभी भी धर्म-युद्ध नहीं हो सकता। लक्ष्य से कहीं अधिक महत्वपूर्ण साधनों की शुद्धता होती है। इस सर्ग में इसी प्रकार का गहन चिन्तन व्यक्त हुआ है।

युद्ध की स्थिति यह थी कि दूसरी ओर भीम का बेटा घटोत्कच युद्ध में उतर आया। वह राक्षसी बल और शक्ति से ओत-प्रोत था। उसके आते ही कौरवों की सेना में भगदड़ मच गई। दुर्योधन घबरा जाता है और वह कर्ण को इन्द्र द्वारा दिए गए अमोघ अस्त्र का प्रयोग करने के लिए विवश करता है। वस्तुतः यह भी सब कर्ण को पराजित करने की कुटिल योजना का ही एक अंश था। एकघ्नी का प्रयोग हो चुकने के बाद कर्ण के पास आत्म-रक्षा के लिए कुछ भी नहीं बच रहता। यह एकघ्नी उसने केवल अर्जुन के लिए सुरक्षित रखी हुई थी किन्तु भगवान श्रीकृष्ण किसी न किसी प्रकार अर्जुन को कर्ण के सामने नही आने दे रहे थे। उनकी 'योजना थी कि अर्जुन, कर्ण का सामना तभी करे जब कर्ण का वह अमोघ अस्त्र नष्ट हो जाए। अन्ततः वे अपनी योजना में सफल हो गए और दुर्योधन के कहने पर कर्ण ने घटोत्कच पर ही एकघ्नी का प्रयोग कर दिया। जब कर्ण ने इस एकघ्नी का प्रयोग किया तो उसका मन सहज ही अर्जुन के सौभाग्य के लिए कह उठा—

'मन-ही-मन बोला कर्ण, पार्थ ! तू वय का बड़ा बली निकला,
या यह कि आज फिर एक बार मेरा ही भाग्य छली निकला।'

इस एकघ्नी के प्रयोग से पांडवों में त्राहि-त्राहि मच जाती है। कौरवों में हर्ष की लहर दौड़ जाती है। तथापि दो व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी हंसी और विषाद विशेष अर्थ रखते हैं। पांडवों की सेना में श्रीकृष्ण मन ही मन बहुत प्रसन्न हैं क्योंकि उन्हें पता है कि अब एकघ्नी के प्रयोग हो जाने के पश्चात् कर्ण को विजित करना सरल हो गया है। कौरवों की सेना हंस रही है किंतु उनका वीरनायक कर्ण मन ही मन बहुत दुःखी है क्योंकि उसे ज्ञात है कि अब वह अर्जुन के प्राण नहीं ले सकेगा।

गिरि का उदग्र.............................आलोकवरण।

शब्दार्थ—उदग्र = उन्नत। शृंग = पर्वत की चोटी।

व्याख्या—इन पंक्तियों में महाभारत के युद्ध में धराशायी हुए भीष्म का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब भीष्म पितामह धराशायी हुए तो ऐसा लगा मानो कोई अत्यन्त ऊंचे पर्वत की विशालकाय चोटी गिर पड़ी हो अथवा आकाश को सूना करके तेजमय सूर्य धरती पर गिर पड़ा हो। भीष्म पांडव-पक्ष के वीरों का दर्प-दलन कर चुके थे। इस प्रकार विशाल पर्वताकार भीष्म धरती पर गिर पड़े।

कुरुकुल का दीपित.............................नायक आचार्य हुए।

शब्दार्थ—दीपित = तेजमय। भूलुंठित = धराशायी। विलोक = देखकर। दुर्जेय = अजेय, जिसे जीतना असंभव हो। गुरु-आर्य = गुरु द्रोणाचार्य।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि भीष्म पितामह की विशाल काया, अपार शौर्य, दिव्य तेज आदि का वर्णन करते हुए कहता है कि जब कुरुवंश के महान् पराक्रमी भीष्म पितामह धराशायी हुए तो ऐसा लगा मानो कुरुवंश का तेजमय ताज गिर पड़ा हो अथवा कोई बाज लड़ता-लड़ता थक कर धरती पर गिर गया हो। भीष्म पितामह को धराशायी हुआ देखकर सारे युद्ध-क्षेत्र में शोक की लहर दौड़ गई। उनके धराशायी हो जाने का दुःख केवल दुर्योधन को ही नहीं था अपितु अर्जुन भी इस अपार क्षति पर रो रहा था। अर्थात भीष्म पितामह का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि उनके धराशायी होने पर दोनों ही पक्ष दुखी थे। भीष्म पितामह की क्षति पर सारे युद्धक्षेत्र में रोना-धोना मच गया। उसके पश्चात् कर्ण का नया तेज युद्ध में उतर आया। कर्ण को देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो दूसरा सूर्य ही युद्ध में उतर रहा हो। कौरव-पक्ष का दुर्जेय कर्ण युद्ध के लिए तत्पर था। श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य ने सेनापतित्व का कार्यभार सम्भाला।

राधेय, किन्तु जिनके.............................अश्रु का लाया है।

शब्दार्थ—लांछित = तिरस्कृत। उपहार = भेंट।

व्याख्या—जैसा कि पहले बताया जा चुका है कर्ण और भीष्म के मध्य यह निश्चय हो चुका था कि जब तक भीष्म युद्धक्षेत्र में होंगे कर्ण युद्ध में नहीं

उतरेगा। अब जबकि भीष्म पितामह धराशयी हो चुके थे, कर्ण युद्ध में उतरने से पहले उनका आशीर्वाद लेने आया है। कवि कहता कि कर्ण अभी तक भीष्म पितामह के कारण ही मौन धारण किए था। अब उनका आशीर्वाद पाने और दिए वचन को पूरा करने के लिए वह उनके निकट पहुंचा। भीष्म शरशैय्या पर लेटे थे। कर्ण पूरी नम्रता के साथ उस शरशैय्या तक पहुंचा और भीष्म पितामह के चरण स्पर्श करके अत्यन्त सहज भाव में बोला —"हे तात ! आज तक आपने मुझे प्रोत्साहन नहीं दिया और मुझे सदैव तिरस्कृत ही किया है। वही तिरस्कृत कर्ण आज आपका आशीर्वाद पाने हेतु आपकी सेवा में आया है, साथ में वह अश्रुओं का उपहार भी लाया है।"

आज्ञा हो तो ………………आंसू ही शेष बचा।

शब्दार्थ वीरगति = मृत्यु का वरण करना। अनुचर = सेवक। वरदपाणि = वरदहस्त। आर्द्र = तरल।

व्याख्या—कर्ण भीष्म से निवेदन करता है—"हे तात ! आपकी अनुमति हो तो मैं भी युद्ध-क्षेत्र में उतरूं ? मैं भी वहां जाकर देखूं कि ऐसा कौन-सा प्रलयंकारी वीर वहाँ आ गया है जिसके कारण सारी धरती कांप उठी है। आपकी आज्ञा हो तो दुर्योधन को विजय दिला दूं अथवा स्वयं अपने प्राणों की आहुति दे दूं।" कर्ण पुनः भीष्म से कहने लगा—"अपनी कृपा का वरदहस्त रखिए और इस सेवक के सभी दोष क्षमा करिए। सम्भवतः मैं अब अन्तिम बार आपके दर्शन कर रहा हूं, पता नहीं फिर आपके दर्शन हों अथवा न हों। मेरा मन बहुत अकेला अनुभव कर रहा है। आज तो मैं सब प्रकार का मद-मोह त्यागने आया हूं, आपका आशीर्वाद लेने आया हूं।" कर्ण के इन कातर वचनों को सुनकर शरशैय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह ने अपनी गीली आँखें खोलीं और उसे अपने हृदय से लगाकर कहने—"अब मेरे पास देने को कुछ भी नहीं रहा। केवल आँसू ही शेष बचे हैं।"

मैं रहा रोकता………………यह कौन मारता-मरता है।

शब्दार्थ—विभोर = चूर। घोर = भीषण।

व्याख्या—शरशैय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह युद्ध की निस्सारता का वर्णन करते हुए कर्ण से कहते हैं कि "मैं प्रतिक्षण इस रण को रोकने का प्रयत्न करता रहा किन्तु यह हठी दुर्योधन स्वविवेक से काम नहीं ले सका। उसने मेरा कहा नहीं माना और क्रोध, मद तथा स्वार्थों में अंधा हो गया। यह भीषण संग्राम दुर्योधन की स्वार्थान्धता का ही कुपरिणाम है। अब क्या पता कि इस युद्ध का परिणाम क्या होगा। यह किस समाज का रुदन है ? पता नहीं आज किसका गौरव, शृंगार संघर्षरत है ? इस छोर से उस छोर तक केवल संघर्ष ही संघर्ष दीखता है। क्या पता, किसका सुख-वैभव नष्ट हो रहा है ? पता नहीं, मरने और मारने के इस हिंसक दृश्य का सूत्रधार कौन है ?"

फूटता द्रोह दव का .... बड़ा प्रशंसी था ।

शब्दार्थ—द्रोहदव = द्रोह की जंगली आग । महासमर = भीषण युद्ध । अलभ = अप्राप्त । अवशंसी = निन्दा करने वाला ।

व्याख्या—भीष्म पितामह युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कर्ण से कहते हैं कि—"जब द्रोह-रूपी जंगली आग भड़कती है तो सारे का सारा समाज नरकतुल्य हो जाता है। सबका सुख, वैभव इस विकराल अग्नि में स्वाहा हो जाता है। युद्ध की यह भीषण अग्नि स्त्रियों के सुहाग और पुरुषों के वैभव—सब-कुछ को हड़प कर लेती है।" भीष्म महाभारत के युद्ध के परिप्रेक्ष्य में पुन: कर्ण से कहते हैं कि—"जब भाई ही भाई के शत्रु बन जाते हैं तो सारे का सारा परिवार रोता है। भाई-भाई की शत्रुता का विष समूचे परिवार के लिए घातक सिद्ध होता है। इसलिए हे कर्ण, मैं फिर कहता हूं कि अपने मन में पुनः विचार करो। जरा सोचो कि यह महाभारत का भीषण युद्ध तुम्हें किस ओर ले जायेगा ? इस युद्ध को जीतने पर तुम्हें कौन-सी अप्राप्य उपलब्धि मिल जायेगी ? सचाई तो यह है कि यह भीषण युद्ध समूची मानवता की आहुति ले लेगा। कुछ भी नहीं बचा रहेगा। समूची मानवता के मिट जाने पर यदि तुम्हें विजयश्री मिल भी गई तो उसका क्या लाभ ? ओ मेरे मान्य प्रतिद्वन्द्वी, तू वस्तुतः निश्छल, ज्ञानी और गुणवान व्यक्ति है। उस समय मेरे तिक्त वचनों को सुनकर तुम बेकार ही दुःखी होते थे। कर्ण, मैं केवल तुम्हारी निन्दा ही नहीं करता था, मन ही मन तुम्हारी वीरता और पराक्रम की बहुत प्रशंसा भी करता था।"

सो भी इसलिए .... मिले कौरवों को वैसे ।

शब्दार्थ—प्रवर = महान। पार्थोपम = अर्जुन के समान। धर्मज्ञ = धर्म का ज्ञाता। विहित = सोच-समझ कर किया हुआ।

व्याख्या—भीष्म पितामह पहले कर्ण के प्रति किंचित द्वेष का भाव रखते थे और इसीलिए कभी-कभी उसे तिक्त वचन भी कह देते थे। तथापि मन ही मन वे कर्ण के महान गुणों, अपरिमित शौर्य एवं पराक्रम की प्रशंसा भी करते थे। भीष्म अपने इसी व्यवहार की पृष्ठभूमि का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कर्ण से कहते हैं कि—"उस समय जो मैं कभी-कभी तुम्हारे प्रति तिक्त वचनों का प्रयोग कर देता था, उसका कारण भी यही था कि दुर्योधन अधिकतर तेरे ही कहने में चलता था और मेरी तनिक भी चिन्ता नहीं करता था। हर क्षण मुझसे रूठा रहता था और तेरे पर बहुत प्रीति दिखाता था। तेरे प्रति मेरा जो द्वेष भाव था उसका एकमात्र कारण यही था। अन्यथा हे पुत्र कर्ण, मैं तुझे ही सर्वाधिक पराक्रमी और शौर्यवान मानता था। मैं तो तुझे अर्जुन जैसा धनुर्धर, श्रीकृष्ण जैसा महान योद्धा और धर्म का ज्ञाता मानता था। मैं तुझे एक उच्च चरित्र वाला महान व्यक्ति और दीन-हीनों का एक सोचसमझ कर बनाया गया

मित्र माना करता था, मैं तो यह मानता था कि जिस प्रकार अर्जुन को श्रीकृष्ण का वरदहस्त प्राप्त है उसी प्रकार कौरवों के लिए तुझसे बढ़कर मित्र कौन होगा। मुझे इस सब में कोई द्विविधा नहीं थी।"

पर हाय, वीरता .... सारी सन्तान रहे।

शब्दार्थ—संबल = सहारा। शुचि = पवित्र। त्राता = रक्षक।

व्याख्या—भीष्म अपने अन्तर की पीड़ा को स्वर देते हुए कर्ण से कहते हैं कि—"हे कर्ण, क्या वीरता का एकमात्र आधार केवल धनुष ही रह जायगा अर्थात् क्या किसी के पराक्रम अथवा शौर्य का मापक केवल उसकी विध्वंसात्मक शक्ति ही रह जायेगी? अथवा क्या कभी ऐसी शुभ घड़ी भी आएगी जबकि वीर और शौर्यवान व्यक्ति शान्ति और मानव-कल्याण के लिए युद्ध की भीषण ज्वाला को बुझाने के निमित्त पवित्र परिश्रम भी करेगा?" भीष्म अपने अन्तर्मन की निराशा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि "मुझे तो ऐसा लगता है कि मनुष्य एक दूसरे से लड़-लड़ कर ही मर जाएंगे। इसलिए हे बेटा कर्ण, यदि तेरा वश चले तो दुर्योधन को सद्बुद्धि दे। इस प्रकार तू नये सुयश का अधिकारी होगा। मेरी तो यही इच्छा है कि तुम इस युद्ध-क्षेत्र में मत उतरो बल्कि उससे अधिक महत्वपूर्ण कार्य करो। शान्ति स्थापना का कार्य युद्ध में लड़ने से निस्सन्देह श्रेयस्कर है। यदि तुम इस भीषण युद्ध को रोक सके तो संसार तुम्हें अपने रक्षक के रूप में स्मरण करेगा। इसलिए मैं यही चाहता हूं कि तुम दुर्योधन से यह द्वेष और प्रतिशोध के भाव त्यागने का आग्रह करो। उससे कहो कि वह पाण्डवों में जाकर मिल जाय और इस प्रकार यह भीषण रक्तपात समाप्त हो जाये। यदि तुम यह सब कर सके तो मैं अवश्य ही शान्ति के साथ मृत्यु का वरण कर सकूंगा। तब मेरा यह बलिदान अन्तिम हो जायेगा अर्थात् मेरे कहने पर युद्ध बन्द हो जायगा और फिर कोई मृत्यु नहीं होगी। किन्तु मेरा यह बलिदान वृथा नहीं जायेगा। सारी सन्तान अर्थात् कौरव और पाण्डव सुख से रहेंगे और युद्ध की विनाशलीला टल जायेगी।"

विशेष—इन पदों में कवि ने भीष्म पितामह के माध्यम से युद्ध की निस्सारता का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। भीष्म एक गम्भीर विचारक और शान्ति के अग्रदूत के रूप में चित्रित हुए हैं।

हे पुरुष सिंह कर्ण .... पार उतार सकूं।

शब्दार्थ—पंथ = मार्ग। भव्य = श्रेष्ठ।

व्याख्या—भीष्म के इस प्रवचन का कर्ण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। कर्ण युद्ध के लिए कृतसंकल्प था। प्रत्युत्तर में वह भीष्म से कहने लगा कि—"हे सिंह के समान वीर पुरुष, अब इस युद्ध को रोकने का कोई भी उपाय नहीं रहा है। जिस प्रकार विपत्तियों से घिरा हुआ मानव-जीवन संत्रस्त होता है, ठीक उसी प्रकार कौरवों का महायान समुद्र में डगमगा रहा है। यदि मैं आपकी

आज्ञा मानता हूं तो शान्ति स्थापित हो सकती है किन्तु विजय का आकर्षण भी कम नहीं है। अब इस द्विविधापूर्ण स्थिति में भला क्या निश्चय किया जा सकता है। अब तो केवल रण को विजय प्राप्त किये बिना चैन नहीं है। अब ऐसी स्थिति आ गई है कि संधि का प्रश्न नहीं उठाता। अब तो कृपया मुझे यही आशीर्वाद दीजिए कि मैं रण में विजय प्राप्त करके आपके इन श्रेष्ठ चरणों के पुनः दर्शन कर सकूं और कौरवों के इस डगमगाते हुए जलयान को समुद्र से पार कर सकूं। कृपया मुझे यह आशीर्वाद दें कि मैं सभी कौरवों को इस संकटापन्न स्थिति से उबार सकूं।'

कल तक था ························रहा समर मुझको।

शब्दार्थ—दुर्गम = कठिन। अरिदल = शत्रु दल। प्रतिभट = प्रतिद्वन्द्वी।

व्याख्या—कर्ण भीष्म पितामह को कहता है कि—"हे पिता, कल तक तो शान्ति का यह पथ सरल था अर्थात् यदि पहले ऐसे प्रयत्न किये जाते तो सम्भवतः युद्ध टल जाता किन्तु अब यह सम्भव नहीं है। और अब जब कि शान्ति मिल ही नहीं सकती तो उसे देखकर ललचाना और युद्ध-क्षेत्र से वापिस आना भी बुद्धिमत्ता नहीं कही जा सकती। अब तो हमें युद्ध में विजय पाने का लक्ष्य पूरा करना है। शत्रु दल का संहार करना ही हमारा लक्ष्य है। इसलिए हे महाभाग ! मेरा निवेदन है कि कुछ दिन जीकर आप भी महाभारत का युद्ध देखें। इस युद्ध में मुझे भी तो अपनी वीरता का परिचय देना है और कुछ नये पराक्रम दिखलाने हैं। इसलिए अब कृपा करके मुझे युद्ध से लौटने के लिए मत कहिए। मुझे हतोत्साहित मत कीजिए। मुझे अर्जुन को जीतने का मेरा व्रत पालन करने दें और अपने प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन से जूझने की आज्ञा दे दें। मुझे अर्जुन को अवश्य जीतना है और दुर्योधन की मनोव्यथा को दूर करना है। हे पिता, वह देखो, यह युद्ध मुझे इसलिए निमंत्रण दे रहा है जिससे कि इतिहास में मेरा नाम अमर हो जाए।"

गंगेय निराशा में························गर्जन घनघोर चला।

शब्दार्थ—गंगेय = भीष्म। शमित = शीतल करना। तूर्ण = शीघ्र।

व्याख्या—कर्ण के इस दो-टूक उत्तर को सुनकर भीष्म निराश हो गये और कर्ण से कहने लगे—"हे श्रेष्ठवीर, यदि तुम्हारा यही निश्चय है तो ठीक है। अपनी इच्छानुसार काम करो और युद्ध में लड़कर अपनी सुकीर्ति का और विस्तार करो। मेरी तो भगवान से यही प्रार्थना है कि युद्ध का यह विषैला वातावरण शीघ्र ही शान्त हो। भगवान को जो कुछ दिखाना है, दिखाएं।" तत्पश्चात् कर्ण ने भीष्म के चरणों का स्पर्श किया और सूर्य को नमस्कार करके चल पड़ा। कर्ण के सुबलिष्ठ शरीर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कर्ण को देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो कोई वज्र धनुर्धारी अथवा अभय सिंह जा रहा हो। इस प्रकार कर्ण युद्ध-क्षेत्र की ओर चल पड़ा।

पाकर प्रसन्न आलोक.........................सेना भाग चली।

शब्दार्थ—प्रसन्न = उन्मुक्त। शयन = शैय्या। गंगानन्दन = भीष्म।

व्याख्या—कर्ण के आगमन से युद्ध का पासा पलट गया। कवि कहता है कि कर्ण रूपी उन्मुक्त आलोक के कारण कौरव-सेना का सारा शोक भाग गया। कौरव-पक्ष में नई उमंग तैर उठी। सारे युद्ध में नया आलोक छा गया। कर्ण के आगमन पर ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वयं भीष्म पितामह शरशैय्या से उठकर आ गये हों। उसके आते ही सारी सेना कर्ण की जय-जयकार कर उठी। सर्वत्र उन्मुक्त उल्लास छहर उठा। रण रूपी सागर हिलोरें मारने लगा। चारों ओर युद्ध की भीषण हुंकार बज उठी और इस प्रकार विकराल युद्ध होने लगा। कर्ण सागर की तरह गरज करके शत्रु-दल पर टूट पड़ा। उसके भीतर उग्र क्रोध की ज्वाला धधक रही थी। जब वह शत्रु-दल पर कूद कर पड़ा तो ऐसा लगा जैसे कि किसी ने महामरण को धनुष पर चढ़ाकर छोड़ दिया हो। यही युद्ध की पहली आग थी जिसे देखकर पाण्डवों की सेना भयत्रस्त होकर भाग गई।

झंझा की घोर.........................बड़ी भीषण हलचल।

शब्दार्थ—प्लावन = प्रलयंकारी बाढ़। कगार = नदी के किनारे। चक्रवात = झंझावात। कीर्ण = चूर-चूर होकर। विकीर्ण = तितर-बितर हो जाना।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि कर्ण की वीरता का वर्णन करते हुए कहता है कि कर्ण के युद्ध में उतरने से सारी पांडव-सेना कांप उठी। कर्ण के तीक्ष्ण बाणों से आहत होकर पाण्डवों की सेना में भगदड़ मच गई। इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि कर्ण के आगमन पर पाण्डव-सेना उसी प्रकार तितर-बितर हो गई जिस प्रकार भीषण आंधी बड़ी-बड़ी डालियों को तोड़-मरोड़ देती है, पेड़ों की जड़ें उखड़ जाती हैं। पाण्डव-सेना के बड़े-बड़े वीरों का उत्साह समाप्त हो गया। कर्ण का आगमन एक प्रचण्ड तूफान की तरह सिद्ध हुआ जिसके कारण पर्वत भी दहल गए। कवि पुनः कर्ण की वीरता का वर्णन करते हुए कहता है कि जिस प्रकार प्रलयंकारी बाढ़ के कारण नदी के किनारे कांप उठते हैं अथवा जिस प्रकार भीषण आंधी में पेड़ों के पत्ते चूर-चूर होकर इधर-उधर बिखर जाते हैं ठीक उसी प्रकार कर्ण के आगमन से पाण्डव-सेना कांप उठी। सर्वत्र भीषण हलचल मच गई।

सब रथी व्यग्र.........................शेष रह जाता है।

शब्दार्थ—रथी = योद्धा। मधुसूदन = श्रीकृष्ण। कालानल = मृत्यु रूपी आग। वड़वानल = समुद्र की आग। उच्छिष्ट = बचा-खुचा।

व्याख्या—युद्ध की भयंकरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि "पाण्डवों की सेना के सभी योद्धा भय के कारण चीख रहे थे, कोलाहल कर

नहीं पाता था।" जब भगवान श्रीकृष्ण ने पाण्डवों की सेना की यह विकट स्थिति देखी तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो मृत्यु स्वयं सामने उपस्थित हो गई है। उनका धीरज टूटने लगा और वे गरज कर अर्जुन से कहने लगे—"हे अर्जुन, अब तू सावधान हो जा। तू कर्ण को जानता ही है, कर्ण शत्रु पर कभी भी दया नहीं करता। इसका शौर्य और पराक्रम अत्यन्त प्रचण्ड है। यह साधारण मनुष्य नहीं बल्कि साक्षात् मृत्यु की अग्नि है। समुद्र की आग, यम अथवा प्रलयंकारी पवन भी जब क्रोधित होते हैं तो कुछ न कुछ छोड़ देते हैं। सर्वनाश नहीं करते। किन्तु जब इस कर्ण को क्रोध आता है तो कुछ भी शेष नहीं रहता।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के महान् शौर्य एवं वीरता का अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन किया है। जब कवि कहता है कि कर्ण का क्रोध समुद्र की आग और यहां तक कि स्वयं यमराज से भी अधिक प्रलयंकारी है तो कर्ण का पराक्रम और शौर्य सहज ही अनुमेय है।

यह महामत्त मानव कुंजर·····················परस्पर दो सुपर्ण।

शब्दार्थ—मानवकुंजर=मानवों में हाथी की तरह बलवान। शैथिल्य=ढील। सुपर्ण=गरुड़।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सचेत करते हुए कह रहे हैं कि—"हे अर्जुन, यह कर्ण एक मस्त हाथी की तरह निर्भय होकर प्रहार कर रहा है। जिस ओर भी वह जाता है, उधर ही लोग भाग खड़े होते हैं और मार्ग बन जाता है। हे अर्जुन, तू यदि इसी घड़ी धनुष-बाण नहीं उठाएगा तो मस्त हाथी की तरह निर्भय बढ़ रहे इस कर्ण पर अंकुश कैसे लगेगा। अब देर करना उचित नहीं है। तनिक-सी भी शिथिलता प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। इसलिए हे अर्जुन, मूर्ख मत बन और धनुष-बाण को संभाल। यदि आज तू क्रोध में आकर धनुष-बाण नहीं संभालेगा तो यह निश्चित है कि यह युद्ध यूं ही समाप्त हो जायेगा। आज ही इसका अन्त हो जायेगा क्योंकि यदि तूने कौरव-सेना का तनिक भी विरोध नहीं किया तो तेरे पक्ष की पराजय अवश्यम्भावी होगी और इस प्रकार यह युद्ध स्वतः ही समाप्त हो जायेगा।" श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर उनका अर्जुन रूपी सिंह दहाड़ उठा। अर्जुन के धनुष-बाण संभालने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानों बाणों की झड़ी ही लग गई हो। अर्जुन की गरज ऐसी लग रही थी जैसे कि पहाड़ ही चिंघाड़ रहा हो। अर्जुन के इस पराक्रम का परिणाम यह हुआ कि पाण्डवों की जो सेना कौरवों के तीक्ष्ण प्रहारों से भयभीत हो भाग रही थी, वह पुनः जम गई। इस प्रकार अर्जुन और कर्ण का युद्धारम्भ हो गया। जूझते हुए ये दोनों भाई ऐसे लग रहे थे मानों दो गरुड़ आपस में लड़ रहे हों।

एक ही वृन्त .... के पग धोकर।

शब्दार्थ—वृन्त = डाली। कुड्मल = कलियाँ। कुक्षि = कोख। विभ्राट = कठोर। किंशुक = पलाश का फूल जो लाल रंग का होता है। पावक = अग्नि।

व्याख्या—इन पंक्तियों में युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि युद्ध में जूझते हुए कर्ण और अर्जुन ऐसे लगते हैं मानों एक ही डाली की दो कलियां अथवा एक ही कोख से जन्मे दो वीर, एक ही कुल के दो भूषण आपस में युद्धरत हों। दोनों ही पर्वत जैसी आकृति के उद्भट पराक्रमी थे। यद्यपि ये दोनों एक ही कोख से जन्मे दो भाई थे किन्तु दोनों आपस में एक-दूसरे के शरीर को तीक्ष्ण बाण से बेधने लगे। क्रोध में दोनों का मुखमण्डल पलाश के फूल की तरह लाल हो गया था और दोनों में एकों दूसरे को समाप्त करने की अग्नि दहक रही थी। दोनों ओर युद्ध की मस्ती फैली हुई थी। दोनों पक्षों में एक दूसरे को जीतने का उन्माद व्याप्त था। दोनों ओर जयजयकार की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। ऐसा लग रहा था मानों दोनों पक्षों के वीरों पर भैरवी सवार हो गई हो। कवि युद्ध की विभीषिका का वर्णन करते हुए कहता है कि युद्ध-क्षेत्र में दोनों पक्षों के योद्धाओं के सिर उनके धड़ों से अलग-अलग होकर गिरने लगे। युद्ध के क्षेत्र में इतना रक्तपात हुआ कि आस-पास के जीव-जन्तुओं के पैर भी मनुष्य के रक्त से सन गए।

विशेष—इन दो पदों में कवि ने कर्ण और अर्जुन के युद्ध की भयंकरता का अत्यन्त सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।

लेकिन था कौन .... उन्होंने स्वयं वरण।

शब्दार्थ—छद्मों = कपट। युग = दोनों।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने यह सिद्ध किया है कि मनुष्य पर जब युद्ध का विनाश मंडराने लगता है तो उसके भीतर के उदात्त भाव तिरोहित हो जाते हैं। युद्ध के उन्माद में मनुष्य अपने पराये का विवेक भूल जाता है। कवि कहता है कि युद्ध के इस नग्न विनाश को देखकर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जिसका मन न कांप उठा हो। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था जो कि युद्धक्षेत्र में पड़े शवों को रौंदकर न चलता हो। सर्वत्र विनाश और मृत्यु की ही कालिमा छाई हुई थी। इसी प्रकार गुरु द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में पांच दिन तक यह विनाशलीला चलती रही। यह बताना सम्भव नहीं था कि कौरवों अथवा पाण्डवों में से किसने धर्म-पथ का अनुसरण किया और किसने धार्मिक मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का विरोध किया। अर्थात् निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि दोनों पक्षों में से कौन-से पक्ष ने अधर्म का आश्रय लिया। कवि अपनी इस धारणा की पुष्टि में एक-दो प्रसंगों की चर्चा करता है। कवि कहता है कि जिस प्रकार भीष्म ने छलपूर्वक पाण्डवों पर

प्रहार किया था कुछ उसी प्रकार के छल-कपट द्वारा अर्जुन के पुत्र को मृत्यु के घाट उतारा गया। तथापि भीष्म पितामह दोनों पक्षों के लिए पूज्य थे, उनकी विशाल छत्रछाया के नीचे दोनों पक्षों को शरण मिली हुई थी। ऐसी कथा आती है कि उन्हीं भीष्म पितामह ने अन्ततः व्याकुल होकर स्वयं मृत्यु का वरण किया था

विशेष—इन पंक्तियों में युद्धोन्माद का सजीव वर्णन प्रस्तुत है।

अर्जुन कुमार की…………………………पिता का चूर्ण हुआ।

शब्दार्थ—अन्तक = यम। ज्यायान् = वृद्ध। विपर्यस्त = उलटा।

व्याख्या—कवि कहता है कि अर्जुन के पुत्र की मृत्यु की दुखद कथा अभी भी दिल दहला देती है। जिस छल एवं कपट के साथ अर्जुन-कुमार की मृत्यु की गई, वह सभ्यता के नाम पर आज भी एक गहरा कलंक बना हुआ है। किन्तु इन सब बातों का युद्ध के प्रसंग में कोई महत्व नहीं है। युद्ध की आग अंधी होती है। युद्ध स्वयं यम की तरह कठोर होता है अर्थात् उसे बाल, वृद्ध अथवा किशोर का विवेक नहीं होता। उसके लिए सभी एक से हैं। बाल किशोरों की किलकारियां, युवकों की हुंकार, वृद्धों की असहायता-- यही सब युद्ध की उपलब्धियां हैं। जब अर्जुन ने अपने पुत्र की मृत्यु की दुखद कथा सुनी तो उसका शोकाकुल हृदय प्रतिशोध की भावना से दहक उठा। अन्ततः उसने मन ही मन एक अत्यन्त लोमहर्षक निश्चय किया। पुत्र की मृत्यु की सूचना पाकर अर्जुन ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि –"यदि कल सूर्यास्त से पहले मैं जयद्रथ का वध नहीं कर सका तो मैं स्वयं आग में कूदकर अपने प्राण दे दूंगा।" अर्जुन ने मन ही मन में धर्म की सौगंध ले ली। कहते हैं कि अर्जुन की इस वचन पूर्ति की रक्षा के लिए प्रकृति का क्रम भी पलट गया अर्थात् अगले दिन तब तक सूर्यास्त नहीं हुआ जब तक कि अर्जुन का यह प्रण पूरा नहीं हो गया। अन्ततः जयद्रथ का वध तो हुआ किन्तु उसके वध का भारी मूल्य उसके निर्दोष पिता को चुकाना पड़ा।

विशेष—(१) 'सिर कटा जयद्रथ का, मस्तक निर्दोष पिता का चूर्ण हुआ।' पंक्ति में एक प्रासंगिक कथा है जो इस प्रकार है—कहते हैं कि जयद्रथ कौरव-पक्ष का वीर योद्धा था। उसके पिता ने भगवान शंकर से यह वरदान प्राप्त कर रखा था कि जो व्यक्ति मेरे पुत्र के मस्तक को धरती पर फेंकेगा उसी के मस्तक के सौ टुकड़े हो जाएंगे। श्रीकृष्ण इस महत्वपूर्ण रहस्य को जानते थे। जब अर्जुन ने जयद्रथ का वध किया तो उस समय जयद्रथ के पिता कुरुक्षेत्र के मैदान में किसी एक कोने में समाधि लगाए हुए बैठे थे। किसी प्रकार अर्जुन ने जयद्रथ के कटे हुए सिर को उसके पिता की गोद में डाल दिया। समाधि की स्थिति में बैठे हुए जयद्रथ के पिता चौंक गये और

घबराकर उन्होंने अपने ही पुत्र के सिर को धरती पर फेंक दिया। दिये हुए
वरदान के अनुसार जयद्रथ के निर्दोष पिता के सौ टुकड़े हो गये।

(२) अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की हत्या भी एक हृदयविदारक घटना कही
जा सकती है क्योंकि कहते हैं कि अर्जुन-कुमार अभिमन्यु को सात महारथियों ने
मिलकर मृत्यु की राह दिखाई थी। उस समय अभिमन्यु भी निहत्था ही था।

हाँ यह भी..........................किस प्रकार से जाता है।

शब्दार्थ—विग्रह = युद्ध। ग्रथन = गूँथना।

व्याख्या—जैसा कि पिछले पदों में कहा जा चुका है कि कवि यह सिद्ध
करना चाहता है कि दोनों पक्षों में से कोई भी पूर्णतः धर्मसम्मत पथ का
अनुयायी नहीं था। कवि एक और प्रसंग की चर्चा करते हुए कहता है कि जिस
समय भूरिश्रवा सात्यिकी से युद्ध कर रहा था उस समय अर्जुन ने उसकी दाहिनी
भुजा धड़ से अलग कर दी। जब इसके विरोध में भूरिश्रवा मुनियों की भांति
अनशन करके बैठ गया तो सात्विकी ने ऐसे समय उसका मस्तक काटा जबकि
वह एकदम समाधिस्थ था। कवि कहता है कि इन सभी तथ्यों को ध्यान में
रखते हुए युद्ध के संदर्भ में धर्म की बात करना अर्थहीन है। धर्म का सम्बन्ध
करुणा से है अर्थात धर्म की रक्षा वही कर सकते हैं जिनके भीतर करुणा और
दया के पुनीत भाव उछाले मारते हों। पुत्र की हत्या को लेकर हिंसा का
उत्पात मचाना भी हृदय की मलिनता का परिचायक है। यद्यपि सारे समाज
का एकमात्र और अन्तिम ध्येय सुख की प्राप्ति करना होता है किंतु अब महा-
भारत के इस युद्ध में यही देखना है कि कौन सा पक्ष इस सुख को प्राप्त
करता है।

विशेष—भूरिश्रवा-सात्यिकी कथा—ऐसी कथा आती है कि भूरिश्रवा
कौरवों की ओर से और सात्यिकी पांडवों की ओर से लड़ रहे थे। कहते हैं
कि युद्ध में भूरिश्रवा ने सात्यिकी को पराजित किया और वह उसके वक्ष पर
चढ़ बैठा। यह दृश्य देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहने लगे कि—
'सात्यिकी मृत्यु के निकट है। भूरिश्रवा शीघ्र ही उसके प्राण ले लेगा।''
अर्जुन ने यह सुनते ही भूरिश्रवा की भुजा काट डाली। इस अन्याय के
विरुद्ध भूरिश्रवा ने आमरण अनशन का व्रत धारण किया। कहते हैं कि जब
भूरिश्रवा एकदम शान्त और निश्चेष्ट बैठे हुए थे, सात्यिकी ने स्थिति का लाभ
उठाते हुए उनका मस्तक ही अलग कर दिया।

है धर्म पहुँचता..........................दुश्चिन्त्य कृत्य करवाता है।

शब्दार्थ—प्रधन कर्म = हिंसा के कार्य। संयुग = युद्ध।

व्याख्या—युद्ध-क्षेत्र में भी धर्म की अवस्थिति होती है। वहां भी धर्म
और धर्म-विरुद्ध आचरण होता है। कवि धर्म के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन
व्यक्त करते हुए कहता है कि—''धर्म कोई साध्य नहीं होता, वह तो एक

अनवरत संघर्ष है। जीवन भर सत्पथ का अनुसरण करना ही धर्म है। धर्म की रक्षा करने में मनुष्य को अपने सुखों, अपनी आशाओं-आकांक्षाओं की आहुति देकर सर्वत्र स्निग्ध ज्योति का प्रसार करना होता है। मनुष्य को दीपक की तरह जलकर प्रकाश की स्निग्ध ज्योति बिखेरनी होती है। यदि धर्म की एकमात्र कसौटी विजय होती तो पापी को भी प्राप्त हो जाती। जीवन में तनिक वैभव-सुख की प्राप्ति मनुष्य की धार्मिक वृत्ति की परिचायक नहीं है। पुत्र, पत्नी, धन, यश आदि तो पापियों को भी मिल जाते हैं।" कवि साधनों की शुद्धता पर बल देते हुए कहता है कि धर्म साध्य में नहीं साधनों की शुद्धता में निहित है। परिणाम कुछ भी हो सकता है किन्तु मूल बात यही है कि मनुष्य साधनों के प्रयोग में किस सीमा तक निष्ठावान रहा है। धर्म हिंसक कर्मों, हिंसा अथवा रणों में नहीं ढूंढा जा सकता। कवि कहता है कि फिर भी जो व्यक्ति मनुष्य-संहार में ही धर्म की खोज करता है वह कोमल फूलों को जलते हुए अंगारों से गूंथने जैसा दुष्कर कार्य करता है। युद्ध का आरम्भ मनुष्य को वासना रूपी अग्नि से होता है। मनुष्य की साम्राज्य विस्तार की इच्छा ही अन्ततः एक भीषण अग्नि का रूप धारण कर लेती है। अतः स्वाभाविक है कि इस वासना के गर्भ से उत्पन्न युद्ध कोमल नहीं हो सकता। आग की लपटों से अग्नि शीतलता की अपेक्षा करना ही भ्रामक होता है। जब मनुष्य के भीतर से युद्ध एवं हिंसा की यह भीषण आग धधकती है तो भला उसे करुणा, दया, अहिंसा आदि उदात्त भावों की क्या चिन्ता रह जाती है। युद्ध के अंगारों से बिंधे हुए पथ पर चलने वाले हिंसकों के समक्ष करुणा एवं दया अर्थहीन हो जाते हैं। जब विजय प्राप्त करने का लोभ मनुष्य के सिर पर मंडराता है तब मनुष्य बड़े-बड़े दुष्कृत्य कर सकता है। सत्ता और लोभ मिलकर मनुष्य की विवेक-शक्ति को शून्य कर देते हैं। हिंसा की आग मनुष्य से कुछ भी करवा सकती है।

विशेष—(१) इन पंक्तियों में कवि ने साधनों की शुद्धता की महत्ता प्रतिष्ठित की है। 'धर्म' केवल विजय प्राप्ति नहीं है। धर्म का मूल तो साधनों की शुद्धता में छिपा हुआ है।

(२) कवि ने युद्ध के संदर्भ के बारे में गहन चिन्तन का परिचय दिया है। धर्म वस्तुतः गति का परिचायक है।

फिर क्या विस्मय .... नाम अमर करता।

शब्दार्थ—सत्पथ = धर्मसम्मत पथ।

व्याख्या—कवि कहता है कि ऐसी स्थिति में यदि कौरव और पांडव, दोनों पक्ष ही सत्पथ से डगमगा गए तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। युद्ध की आग बड़े से बड़े धर्मरक्षकों के आत्मबल को खण्डित कर देती है। जब युद्ध का उन्माद सिर पर चढ़ जाता है तो बड़े से बड़े महारथी भी धर्म की समुचित रक्षा नहीं कर पाते। अतः यदि उस युद्धोन्माद की कालिख कौरव-

पांडवों के हाथों में भी लग गई तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दोनों पक्षों ने विजयश्री पाने के लोभ में युद्ध को जीतने की झोंक में सभी धार्मिक एवं नैतिक मानदण्डों का खुला अतिक्रमण किया था। कवि कहता है कि दोनों ही पक्ष, विजय-बिन्दु तक जाने के लिए सत्पथ से डगमगा गए। विजय पाने की इस होड़ में यह दारुण युद्ध कई दिनों तक चलता रहा किन्तु कर्ण और द्रोणाचार्य के रहते हुए विजय प्राप्त करना दुस्साध्य था। पांडवों में कोई भी तो ऐसा नहीं था जो सत्पथ का अनुसरण करते हुए उन दोनों से उचित युद्ध कर पाता। कोई भी ऐसा नहीं था जो धार्मिक दृष्टि से पराजित करके अपने आपको अमर बना लेता।

है कहाँ पार्थ ? .... पाण्डव-समाज की फूटेगी।

शब्दार्थ—प्रतिभट = प्रतिद्वन्द्वी। द्वैरथ रण = द्वन्द्व-युद्ध।

व्याख्या—कर्ण अर्जुन से युद्ध करने के लिए व्याकुल हो रहा था। वह बार-बार गरजकर पूछ रहा था—"अर्जुन कहाँ है। वह अपने विकट प्रतिद्वन्द्वी से लड़ने के लिए क्यों नहीं सामने आता है। क्या मैं केवल इन्हीं गाजर-मूलियों (छोटे-छोटे वीर) को काटता रहूँगा अथवा किसी अर्जुन जैसे वीर से भी मेरा सामना होगा ? मेरी युद्ध-कला वीरों के लिए है।" कर्ण पुनः गरजकर कहता है कि "अर्जुन जहाँ कहीं भी हो, सुन ले। अब मैं अपने हाथ समेट रहा हूँ और सबके समक्ष उसे द्वन्द्व-युद्ध के लिए चुनौती दे रहा हूँ। यदि उसमें वस्तुतः साहस हो तो उसे व्यूह से निकलकर सामने आना चाहिए। ऐसे छिप रहने से कब तक काम चलेगा ? उसे अब सामने आना चाहिए जिससे मैं अपना जन्म सार्थक कर सकूं और वह भी अपने साहस एवं शौर्य-बल का प्रदर्शन कर सके।" तथापि अर्जुन का सामने आना कोई सरल बात नहीं थी। चतुर सारथी श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को इधर-उधर घुमाए फिरते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि कर्ण और अर्जुन का सामना हो क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास था कि द्वन्द्व-युद्ध में अर्जुन कर्ण के हाथ से नहीं बच सकेगा क्योंकि कर्ण के पास एकघ्नी नामक अमोघ अस्त्र था जिसके रहते हुए कर्ण किसी को भी मार सकता था। उन्हें यह चिन्ता थी कि यदि द्वन्द्व-युद्ध में कर्ण ने एकघ्नी का संधान कर दिया तो अर्जुन मृत्यु का ग्रास बनेगा और फिर पाण्डव-समाज का भाग्य फूट जायेगा।

नटनागर ने इसलिए .... कर्ण के बाण प्रखर

शब्दार्थ—नटनागर = श्रीकृष्ण। युक्ति = चाल। एकघ्नीहव्य = एकघ्नी का हवन। विशिख वृष्टि = बाण वर्षा।

व्याख्या—इस एकघ्नी को निष्फल करने के लिए श्रीकृष्ण ने एक नई चाल खेली। एकघ्नी को निष्फल करने के लिए उन्होंने घटोत्कच को बुलाकर कहा—"अरे बेटा, यह क्या देख रहा है ? विजयश्री हमारे हाथों से

निकली जा रही है। हम सभी अब केवल तेरे पराक्रम को देखने को आतुर हैं। अब तो तू ही एकमात्र सहारा रह गया है। यह देख, कर्ण किस प्रकार अग्नि-वर्षा कर रहा है। पाण्डवों की सेना हाहाकार कर रही है। कर्ण के आग्नेय बाणों की वर्षा से डरकर पाण्डवों की सेना उसी तरह भाग रही है जैसे कि कोई निरीह गाय भयात्रस्त होकर भागती है। सारे युद्धक्षेत्र में तिल भर भी ऐसा स्थान नहीं रहा है जहां मनुष्य क्षणभर के लिए विश्राम कर ले। सर्वत्र कर्ण के तीक्ष्ण बाणों का प्रहार हो रहा है। उसके प्रखर बाण पाण्डवों के लिए मृत्यु का आह्वान सिद्ध हो रहे हैं।

यदि इसी भांति·························कर हाहाकार उठी।

शब्दार्थ—संगर=युद्ध। असुर=राक्षस। कौरवी=कौरव-सेना।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण कर्ण की एकघ्नी के प्रभाव को निष्फल करने के लिए दृढ़-संकल्प हैं। अपने इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए वे घटोत्कच से पुनः कहते हैं कि "यदि इसी प्रकार कर्ण के प्रखर बाण पाण्डवों की सेना को धराशायी करते रहे तो कल प्रातः इस युद्धक्षेत्र में आने लिए कोई भी पाण्डव नहीं बचा रहेगा। हे घटोत्कच, इस समय पाण्डवों पर घोर विपत्ति आई हुई है। तू ही इसका समाधान कर सकता है। अतः खड़ा हो, कर्ण के इस भीषण प्रहार को रोक। जैसे भी हो पाण्डवों के इस संहार को रोक।" कहते हैं कि श्रीकृष्ण का यह आदेश पाकर घटोत्कच युद्ध-भूमि में उतर आया। घटोत्कच में अपार आसुरी-शक्ति संचित थी। कवि घटोत्कच की आसुरी-शक्ति का वर्णन करते हुए कहता है कि जब घटोत्कच युद्ध में उतरा तो ऐसा लगा मानो ज्वाला-मुखी पर्वत फूट पड़ा हो अथवा किसी समुद्र में प्रलयंकर ज्वार उठ गया हो। घटोत्कच एक भीमकाय दानव की तरह गरजकर युद्ध में उतर आया। कवि कहता है कि उसके आते ही सचमुच रण की स्थिति बदल गई। भागती हुई पाण्डव-सेना में नवशक्ति का संचार हो गया। दूसरी ओर, घटोत्कच के भीषण प्रहार के कारण कौरवों की सेना में हाहाकार मच गया। उनका मनोबल टूटने लगा। कवि कहता है कि ऐसी कथा आती है कि इस भीमकाय दानव के साधन बहुत ही कठोर और प्रखर थे। मनुष्य के लिए घटोत्कच को काबू में करना दुस्साध्य था। घटोत्कच की आसुरी-शक्ति के कारण कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। सभी कर्ण को पुकारने लगे। उनका धैर्य टूटने लगा और व्याकुल होकर वे कर्ण का आह्वान करने लगे।

लेकिन अजस्र-शरवृष्टि-निरत··········संहार करेगा यह।

शब्दार्थ—अजस्र=निर्बाध। विवर्ण=कान्तिहीन। अविद्ध=बिना बिंधा हुआ। दस्यु=दानव।

व्याख्या—घटोत्कच की आसुरी-शक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि निरंतर बाण-वर्षा और सतत् रूप से युद्ध लड़ने वाले कर्ण का हृदय भी

इस दानवीय शक्ति को देख कर घबरा उठा । यद्यपि बाह्य रूप से कर्ण अभी भी युद्ध कर रहा था फिर भी उसका मनोबल टूट चुका था। रण की इस विचित्र गति को देखकर कर्ण घबरा उठा । यद्यपि घटोत्कच के शरीर का कोई भी अंग ऐसा नहीं बचा था जिस पर कर्ण के तीक्ष्ण बाणों का प्रहार नहीं हुआ हो, फिर भी उसकी आसुरी-शक्ति भीषण से और अधिक भीषण होती जा रही थी । जब इस विशाल दानव की आसुरी-शक्ति को रोकने का कोई भी मार्ग नहीं रह पाया, और कौरव-दल की समूची सैन्य शक्ति घटोत्कच के दानवी प्रभाव को अवरुद्ध नहीं कर सकी तो कौरवों के भयाक्रान्त रूप को देखकर स्वयं दुर्योधन ने कर्ण से कहा—"हे मित्र कर्ण, तुम क्या देख रहे हो ? यह महादानव ऐसे ही मरने वाला नहीं है । यदि तुमने जल्दी ही इसे मृत्यु के घाट नहीं उतारा तो यह निश्चित है कि घटोत्कच सारी कौरव-सेना को खा जायेगा ।"

हे वीर ! विलपते..............................जुगाये चलता था ।

शब्दार्थ—सैन्य = सेना शक्ति । अचिर = तत्काल । त्राण = रक्षा । मरणपाश = मृत्यु का बन्धन । आनन = मुखमण्डल ।

व्याख्या—दुर्योधन पुनः कर्ण को प्रबोधन करते हुए कहता है कि, "हे वीर कर्ण, तत्काल ही अपने सैन्यदल की रक्षा करो । अब कोई भी और मार्ग नहीं रहा गया है । घटोत्कच की दानवी-शक्ति का संहार करने के लिए अब एकमात्र उपचार यही है कि तुम आंख बन्द करके एकघ्नी का प्रहार करो । अभी अर्जुन दिखाई नहीं पड़ रहा है, तब तक अपनी सेना की तो रक्षा करो । मृत्यु का यह पहला बन्धन तो किसी तरह छुड़ाओ । अर्जुन का संहार तो तुम बाद में करना, पहले घटोत्कच के आसुरी रूप से तो हमारी रक्षा करो ।" दुर्योधन की इस कातर वाणी को सुनकर कर्ण भी सहम गया । उसने चकित नयनों से दुर्योधन की ओर देखा और जब दोनों की आंखें मिलीं तो दुर्योधन का अपराधी मुखमण्डल नीचे की ओर झुक गया । दुर्योधन यह जानता था कि कर्ण ने एकघ्नी को केवल अर्जुन के लिए सुरक्षित रखा हुआ है अतः जब दुर्योधन ने उससे घटोत्कच पर एकघ्नी-संधान की बात कही तो कर्ण का विस्मित होना स्वाभाविक था । अतः कर्ण मन ही मन सोचने लगा कि—"हे अर्जुन, तू आयु का बली निकला अन्यथा मैं यह कहूंगा कि मेरे भाग्य ने मेरे साथ एक बार फिर से छल किया है ।" जिस एकघ्नी के रहते हुए कर्ण हर समय प्रसन्न रहता था और जो वस्तुतः एक अपराजेय अस्त्र था, कर्ण को अब वही एकघ्नी घटोत्कच पर चलानी पड़ रही थी । उसने यह अमोघ अस्त्र केवल अर्जुन के लिए बचा रखा था । उसी एकघ्नी के बल पर उसने विजय का दृढ़ विश्वास संजोया हुआ था । यह एकघ्नी उसने अपने कवच-कुण्डलों का दान देकर प्राप्त की थी अतः इसकी उपादेयता एक अभय सम्बल से कम नहीं थी । कर्ण को

आज यही दुख था कि जो एकघ्नी उसने अर्जुन के लिए सुरक्षित रखी हुई थी, परिस्थितिवश उसे उसका प्रयोग अन्य प्रयोजन के लिए करना पड़ रहा था।

वह काल-सर्पिणी .... उद्भासित करके।

शब्दार्थ—स्वसा = बहन। तूणीर = तरकस। उद्भासित = प्रकाशित।

व्याख्या—एकघ्नी नामक अमोघ अस्त्र की प्रखरता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब कर्ण ने उस एकघ्नी का संधान किया तो ऐसा प्रतीत हुआ मानों मृत्युरूपी सर्पिणी की लपलपाती जिह्वा अथवा मृत्यु की सगी बहन अथवा यम की प्रचण्ड दाहिनी शक्ति अथवा मृत्युरूपी आग की जिह्वा साकार हो गई हो। वह एकघ्नी लपलपाती हुई आग की तरह तरकस में से निकली और उसके छूटने पर रात्रि की चांदनी मंदी पड़ गई। सारे आकाश में लाली कौंध गई। सारा आकाश ही मानों जल उठा हो। इसके साथ ही कर्ण ने अपने भाग्य को कोसा क्योंकि उसके भाग्य ने इस बार भी उसके साथ छल ही किया था। दुखी होकर कर्ण ने घटोत्कच पर एकघ्नी का वार कर दिया। एकघ्नी का वार कर देने के बाद कर्ण अपने अंधकारमय भविष्य की कल्पना मे विह्वल हो उठा। उसने दुर्योधन की ओर देखा और फिर किसी अन्य दिशा में देखने लगा। कवि कहता है कि वह एकघ्नी उस महादानव घटोत्कच के लिए मृत्यु का कारण बन गई। सर्वत्र भय का वातावरण छा गया। उसके पश्चात् आकाश में कौंधती हुई वह एकघ्नी आकाश में ही विलीन हो गई।

विशेष—कवि ने एकघ्नी की प्रचण्डता का अत्यन्त सजीव वर्णन किया है।

पा धमक धरा .... तरह विगत संशय।

शब्दार्थ—दस्यु = राक्षस।

व्याख्या—एकघ्नी के संधान के बाद की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि जब वह पर्वत की-सी विशाल काया वाला राक्षस धरती पर गिरा तो धरती भी उछल-सी पड़ी। समूचे पाण्डव-दल में त्राहि-त्राहि मच गई। पाण्डवों की सेना के लिए घटोत्कच की मृत्यु एक कभी न पूरी होने वाली क्षति थी। समूचा पाण्डव-दल भयात्रस्त हो गया। युधिष्ठिर, नकुल, भीम आदि उद्भट वीर भी घटोत्कच की मृत्यु देखकर धैर्य खो बैठे। जो लोग जहां भी खड़े थे, रो पड़े। सारी सेना चीख रही थी, सभी व्याकुल और व्यग्र हो रहे थे। किन्तु एक बड़ी विचित्र बात यह थी कि पाण्डवों में भगवान श्रीकृष्ण घटोत्कच की मृत्यु पर मन ही मन मुस्करा रहे थे। श्रीकृष्ण को हसते देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो उनके सिर पर से कोई भारी विपदा टल गई है अथवा उन्हें मन ही मन विजय प्राप्त हो गई है। कवि इस रहस्य को और अधिक रहस्यमय बनाता हुआ कह रहा है कि ऐसा क्या कारण है कि श्रीकृष्ण, घटोत्कच की मृत्यु से बिल्कुल अभय हो गए है, उनके मन में किसी भी प्रकार की शंका नहीं रह गई है।

विशेष—श्रीकृष्ण की इस हंसी का भेद यही था कि घटोत्कच की मृत्यु के साथ ही कर्ण की एकघ्नी का भय भी समाप्त हो चुका था। श्रीकृष्ण इस रहस्य को जानते थे और इसीलिए घटोत्कच की मृत्यु उनके लिए प्रसन्नता का कारण बन गई थी।

लेकिन समर को .... बहुत खोया हुआ।

शब्दार्थ—वाहिनी = सेना। वलयित = घिरा हुआ।

व्याख्या—कवि कहता है कि इस प्रकार महाभारत के युद्ध में क्षणिक विजय प्राप्त करके और इस प्रकार घटोत्कच जैसे महादानव को मृत्यु के घाट उतारकर कर्ण अपनी सेना में और अधिक प्रिय हो गया था। सर्वत्र जय-जयकार की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। फिर भी अपनी जय-जयकार की ध्वनि से घिरा हुआ कर्ण प्रसन्न नहीं दिखाई दे रहा था। जब वह एकघ्नी का संधान करके युद्ध से चलने लगा तो उसका मन किसी अंधकारमय भविष्य की दुखद कल्पना में खोया हुआ था। जय-जयकार की भीषण झंकार भी मानो उसके लिए कोई महत्व नहीं रखती थी। स्वभावतः इसका कारण यही था कि अब उसे अपनी विजय पर तनिक भी विश्वास नहीं रह गया था। एकघ्नी का संधान करने के पश्चात् उसकी विजय का अन्तिम और एकमात्र विश्वसनीय साधन खो गया था।

हारी हुई पाण्डव-चमू .... आनन्द के उच्चार में।

शब्दार्थ—पाण्डव चमू = पाण्डव-सेना।

व्याख्या—घटोत्कच की मृत्यु महाभारत के युद्ध की एक महत्वपूर्ण घटना हो गई क्योंकि उसकी मृत्यु की प्रतिक्रियाएं बड़ी विचित्र थीं। एक ओर तो समूची पाण्डव-सेना व्याकुल थी, दूसरी ओर, श्रीकृष्ण मन ही मन प्रसन्न थे। उसी प्रकार घटोत्कच की मृत्यु से कौरव-दल बहुत प्रसन्न था किन्तु कर्ण का मन गहरे दुख और चिन्ता में डूबा हुआ था। उसी स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि हारी हुई पाण्डव-सेना में श्रीकृष्ण हंस रहे थे और कर्ण इस जीत पर भी निष्प्राण-सा हो गया था। इसका कारण यही था कि श्रीकृष्ण को अब कर्ण की एकघ्नी का एकमात्र भय नहीं रह गया था और कर्ण अपना एकमात्र अमोघ अस्त्र खो चुका था। कवि कहता है कि क्या वस्तुतः विजय के लिए केवल शक्ति ही नहीं, कुछ बुद्धि, कुछ छल-कपट आदि भी आवश्यक होते हैं। यह सब भाग्य की बात है। घटोत्कच की मृत्यु पर श्रीकृष्ण और कर्ण की इन विचित्र प्रतिक्रियाओं का काव्यात्मक वर्णन करते हुए कवि कहता है कि श्रीकृष्ण को देखकर ऐसा लग रहा था मानों उनके आंसुओं में मोतियों की-सी विजय आभा छिपी हुई हो और कर्ण की उस भयमिश्रित हंसी में स्वयं अभिशाप ही हंसता हुआ दीख रहा था।

"मोती छिदे आते किसी के आंसुओं के तार में,
हंसता कहीं अभिशाप ही आनन्द के उद्गार में।"

इन दो पंक्तियों में कवि ने घटोत्कच की मृत्यु पर श्रीकृष्ण और कर्ण की प्रतिक्रियाओं का अत्यन्त सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है।

मगर यह कर्ण..............................जो जोर करके।

शब्दार्थ — नियति = भाग्य। इंगित = संकेत।

व्याख्या—कवि कहता है कि यह वस्तुत: कर्ण की जीवन-कथा है। उसकी जीवन-कथा ही ऐसी है कि जब-जब विजयश्री उसके निकट आई है, भाग्य ने उसके साथ छल किया है। कवि कहता है कि कर्ण के संघर्षमय जीवन को देखकर भाग्य अथवा नियति को दोष देना उचित नहीं है। जो जैसा होना था, वैसा ही हुआ है। कवि कहता है कि वीर वही हो सकता है जो मुसीबतों पर छा जाए और निराशा को तनिक भी न पनपने दे। कर्ण ऐसा ही पराक्रमी वीर था जिसने जीवन भर आपदाओं के साथ संघर्ष किया। उसके जैसे वीर पुरुष लोहे की शृंखलाओं को भी तोड़कर अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करते हैं। वीरों का पराक्रम शृंखलाओं में नहीं बांधा जा सकता।

सातवां सर्ग

कथावस्तु—घटोत्कच की मृत्यु के बाद गुरु द्रोणाचार्य भी मृत्यु के ग्रास बन गये। कौरव-पक्ष का सेनापतित्व कर्ण के कंधों पर आ गया। कर्ण के सेनापति बनने पर कौरवों का मनोबल द्विगुणित हो गया। पाण्डवों की सेना हाहाकार कर उठी। कर्ण पूरे प्राणपन से युद्ध में जूझ रहा था। कर्ण की यह इच्छा थी कि अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों को बन्दी बनाया जाय। वह दुर्योधन का राज्य-तिलक कराकर ही चैन से बैठना चाहता था। इसी बीच कर्ण का सामना धर्मराज युधिष्ठिर से हो गया। कर्ण उन पर बाज की तरह टूट पड़ा। युधिष्ठिर की मृदुल काया कर्ण के भीषण प्रहार को सहन नहीं कर पाई। कर्ण ने उन्हें किसी निर्जन वन में जाकर साधना करने की सलाह दी और मुक्त कर दिया। कर्ण के समक्ष सहदेव, नकुल, भीम भी आए और कर्ण ने अपनी माता कुन्ती को दिए वचन के अनुसार उन सभी को मुक्त कर दिया। कर्ण के सारथी शल्य ने पाण्डव-पक्ष के इन चारों योद्धाओं को अभयदान देने का कारण पूछा तो कर्ण ने अत्यन्त मार्मिक शब्दों में कहा :

'समझोगे नहीं शल्य इसको, यह करतब नादानों का है,
यह खेल जीत से बड़े किसी मकसद के दीवानों का है।
जानते स्वाद इनका वे ही जो सुरा स्वप्न की पीते हैं।
दुनिया में रह कर भी दुनिया से अलग खड़े हो जाते हैं।

अन्ततः कर्ण के जीवन का चिर-प्रतीक्षित क्षण आ पहुंचा। कर्ण और अर्जुन का आमना-सामना हो गया। अर्जुन के सामने आने पर कर्ण ने कहा कि अब 'जन्म-जन्मों का वह निर्धारित क्षण' आ गया है जबकि दोनों को अन्तिम निर्णय कर ही लेना है। कर्ण के शब्दों में :

शत्रु का याकि अपना मस्तक काट कर यहीं धर देना है।

इसके उत्तर में अर्जुन ने कर्ण को ललकारा और धनुष-बाण का संधान किया। कर्ण पर अर्जुन के बाण बेकार सिद्ध हुए। इसके पश्चात् कर्ण ने अर्जुन पर वार किया। इस प्रकार इन दोनों उद्भट वीरों का द्वन्द्व-युद्ध चलता रहा। इतने में ही कर्ण के तरकस में अश्वसेन नामक सर्प उपस्थित हुआ और कर्ण से कहने लगा—"आप मुझे धनुष पर चढ़ाकर मारिए और आप देखेंगे कि अर्जुन निश्चय ही मृत्यु का ग्रास बनेगा।" कर्ण ने अश्वसेन नामक सर्प का यह प्रस्ताव इस आधार पर ठुकरा दिया कि वह साध्य से अधिक, साधनों की शुद्धता का पक्षधर है। इस प्रसंग में कर्ण का चरित्र अपने चरमोत्कर्ष में पहुंचा प्रतीत होता है। कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में अश्वसेन को कह देता है :

'अगला जीवन किसलिए भला तब हो द्वेषान्ध बिगाड़ूं मैं,
सांपों की जाकर शरण सर्प बन क्यों मनुष्य को मारूं मैं।'

इसके पश्चात् कर्ण पुनः पाण्डवों पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता रहा। कर्ण के अपरिमित शौर्य के समक्ष पाण्डव समूह कांप रहा था। समूची पाण्डव-सेना भयात्रस्त थी। ऐसी स्थति को देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन के मनोबल को जागृत किया। बहुत समय तक कर्ण और अर्जुन का भीषण युद्ध चलता रहा।

धीरे-धीरे कर्ण का रथ श्रीकृष्ण और अर्जुन के रथ के निकट जा पहुंचा। इसी घड़ी कर्ण के रथ का पहिया धरती में धंस गया। कर्ण के सारथी शल्य ने बहुत जोर लगाया किन्तु रथ का पहिया टस-से-मस नहीं हुआ। अन्ततः शल्य ने कर्ण को ही रथ से उतर कर जोर लगाने का आग्रह किया। कर्ण रथ से उतरा और पहिया निकालने का प्रयत्न करने लगा किन्तु दुर्भाग्य कर्ण का पीछा नहीं छोड़ रहा था। पहिया और अधिक धंसता गया। इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्ण पर प्रहार करने के लिए कहा। कर्ण एकदम निहत्था था अतः निहत्थे शत्रु पर वार करने में अर्जुन को तनिक संकोच हुआ। श्रीकृष्ण ने पुनः अर्जुन से कर्ण पर वार करने को कहा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा :

'कहूं जो पाल उसको, धर्म है यह
हनन कर शत्रु का, सत्कर्म है यह।'

अन्ततः अर्जुन ने श्रीकृष्ण का आदेश पालन किया और कर्ण पर प्रहार किया। कर्ण ने इसी संदर्भ में महाभारत के युद्ध के कारणों की निस्सारता के सम्बन्ध में गंभीर चिंतन का परिचय दिया है। कर्ण को अपनी मृत्यु निकट दीख

रही थी। उसने सूर्यदेवता को स्मरण किया और इधर अर्जुन के बाण ने कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया। कर्ण का स्वागत करने के लिए 'आलोक स्यन्दन' आ पहुँचा था। कर्ण उसी 'आलोक स्यन्दन' पर सवार होकर इस लोक से विदा हो गया। उसकी मृत्यु पर दुर्योधन रो रहा था और पाण्डवों में हर्षोल्लास का वातावरण छाया हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को बताया कि कर्ण पराजित होकर भी विजयी रहा है। कर्ण के सम्बन्ध में श्रीकृष्ण के निम्न शब्द इस तथ्य के परिचायक हैं कि कर्ण केवल कौरवों में ही नहीं अपितु पाण्डवों में अर्थात् शत्रुपक्ष में भी अत्यन्त लोकप्रिय था :

'समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत से ज्योति का जेता उठा है।'

'रथ सजा, भेरियां .... लिए क्षुब्ध सैनिक-समूह।

शब्दार्थ—स्यन्दन = रथ। पटह = नगाड़े। कम्बु = शंख।

व्याख्या—इस पद में घटोत्कच और गुरु द्रोणाचार्य के निधन के पश्चात् के महाभारत का वर्णन है। कर्ण पर सेनापतित्व का भार डाला गया है। कर्ण के सेनापति बनने के दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सेनापति का सजा हुआ रथ लाया गया, भेरियाँ धमक उठीं और विशाल आकाश भी हर्षित हो उठा। कर्ण मृत्यु की भांति उस सजे हुए रथ पर आसीन हो गया। कर्ण के रथ में विराजते ही नगाड़ों की ध्वनि और शखं बज उठे। कौरव-पक्ष के वीरों में नया उत्साह आ गया। क्रुद्ध कौरव समूह कर्ण को एक हिलोरें मारते हुए सागर की भांति ले गया।

अंगार, वृष्टि पा धधक .... सहमे सब जाते थे।

शब्दार्थ—कानन = जंगल। नवनीत = मक्खन। लवा = तीतर। मसृण = कोमल। रोषण = रोषपूर्ण।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के अभूतपूर्व शौर्य का अत्यन्त सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि जिस प्रकार अंगारों की वर्षा सूखे जंगल के तिनकों को भस्म कर देती है उसी प्रकार कोमल मक्खन का बहुत बड़ा ढेर भी शस्त्र की तीखी धार को सहन नहीं कर पाता। जिस प्रकार यमराज के सामने मनुष्य का कोई वश नहीं चलता, ठीक उसी प्रकार पाण्डवों की सेना भी कर्ण के तीक्ष्ण बाणों के दुर्दम्य प्रहारों से विंध गई थी। उसे कोई भी मार्ग नहीं सूझ रहा था। कवि कर्ण की शूरवीरता का वर्णन करते हुए कहता है कि वह जिधर भी मुड़ता था उधर ही पाण्डवों के बड़े-बड़े योद्धा भयात्रस्त होकर भाग पड़ते थे। कर्ण के प्रखर बाणों के कारण पाण्डव-सेना में उसी प्रकार भगदड़ मच गई जिस प्रकार रोषपूर्ण गरुड़ को देखकर तीतरों का दल

भाग उठता है। आज पांडवों के योद्धा मन ही मन इसलिए पछता रहे थे कि वे आज युद्ध में ही क्यों आए। उनका मन इतना भयात्रस्त हो गया था कि कर्ण को देखने मात्र से ही पाण्डव-सेना के बड़े-बड़े पराक्रमी वीर सहम उठते थे।

विशेष---कर्ण की वीरता का अत्यन्त सजीव वर्णन किया गया है।

काटता हुआ रण-विपिन ....मुनिकल्प, मृदुल काया

शब्दार्थ---विपिन = जंगल। निनाद = आवाज। कौन्तेय = अर्जुन। कृतान्त = यम। कोक = चकवा।

व्याख्या कवि पुनः कर्ण के महान् शौर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि कर्ण युद्ध रूपी जंगल को काटकर प्रतिक्षण गरज रहा था। उसकी भीषण हुंकार को सुनकर पांडवों में प्रतिक्षण भय का साम्राज्य छाता जा रहा था। जब कर्ण ने देखा कि उसके प्रखर वाणों से शत्रुदल व्याकुल हो उठा है तो वह द्विगुणित उत्साह को लेकर आगे बढ़ा। कर्ण के इस पराक्रम को देखकर उसकी सेना की भुजाएं और अधिक प्रलयंकारी समुद्र की तरह फड़क उठीं। कर्ण पूरी तरह निर्भय होकर रण का संचालन कर रहा था। वह अपने सारथी शल्य से कहने लगा -- "तुम आज देखो कि मैं क्या-क्या करता हूं। तुम देखना कि मैं आज श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों को जीवित ही बन्दी बना लूंगा और शाम तक दुर्योधन को राज्यतिलक करवा दूंगा। हे शल्य, हमारी विजय निश्चित है और तुम देखना कि हम इस रण में विजय की हर्षध्वनि करते हुए ही लौटेंगे। इतने में ही धर्मराज युधिष्ठिर का दुर्भाग्य उन्हें कर्ण के समक्ष ले आया। उनको देखते ही कर्ण उन पर उसी तरह टूट पड़ा जैसे कि कोई बाज किसी चकवे को देखकर टूट पड़ता है। तथापि कर्ण और युधिष्ठिर का युद्ध बहुत समय तक नहीं चल सका क्योंकि युधिष्ठिर की मुनि जैसी कोमल काया कर्ण के कठोर प्रहारों को कैसे सहन कर सकती थी।

भागे वे रण.......................झपटों से खेला करिए।

शब्दार्थ---गहा = पकड़ा। ग्रीव = गरदन।

व्याख्या---इन पंक्तियों में भी कर्ण धर्मराज युधिष्ठिर को समझाते हुए कहता है कि "हे धर्मराज, आप तो अत्यन्त कोमल शरीरधारी सिद्ध हुए।" वस्तुतः युधिष्ठिर कर्ण को देखकर घबरा गये थे और वे रण से भाग खड़े हुए। भागकर कर्ण ने उन्हें गर्दन से पकड़ा और कहा, "आपको मैं भीरु कह-कर अपमानित नहीं करना चाहता। मैं आपको कोमल ही कहूंगा क्योंकि ऐसा कहने से आपके सम्मान की रक्षा भी हो सकेगी। अब भविष्य के लिए मैं तुम्हें एक सरल मार्ग भी सुझाए देता हूं। आप एक ब्राह्मण हैं, कहीं दूर जंगल में किसी पेड़ के नीचे बैठकर भजन-पूजन करिए। आप तो मूलतः एक साधु हैं और इसलिए आपके जैसे साधु को युद्ध में लड़ना शोभा नहीं देता है। इस विनाशकारी युद्ध की आग कभी मत झेलिए। अब तो मैं तुम्हें जीवन-दान दे

देता हूं, किन्तु भविष्य में कभी भी गरुड़ की प्रलयंकारी झपटों में मत आ जाना।"

भागे बिपन्न हो..........................कुछ इंगित पाकर।

शब्दार्थ—विपन्न = दुखी। आमरण = जीवनपर्यन्त।

व्याख्या—कर्ण के इस उपदेश को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर के मन में अपार ग्लानि के भाव भर गये और वे अत्यन्त दुखी होकर युद्ध-क्षेत्र से चल पड़े। वे मन ही मन सोचने लगे कि पता नहीं, वीरों का यह समाज मुझे क्या कहेगा। मन ही मन वीर लोग मुझे धिक्कारेंगे। क्यों नहीं कर्ण ने मेरे प्राण हरके मुझे सम्मानित किया। इस प्रकार जीवन-दान देकर तो कर्ण ने मुझे जीवन-भर के लिए ग्लानि और दुःख में डुबो दिया है।" अर्जुन को कर्ण का यह व्यवहार अत्यन्त अप्रत्याशित लगा। उनके सामने कर्ण का यह व्यवहार बहुत विचित्र था। उन्हें यह समझ में नहीं आ रहा था कि कर्ण ने क्या सोच कर युधिष्ठिर को जीवन-दान दे दिया। कवि कहता है कि वास्तविकता यह है कि कर्ण ने अपने दिये वचनों का पूर्ण पालन किया। कर्ण ने अपनी खड्ग के ग्रास को अपनी माता कुन्ती को दिये वचन के अनुसार जीवन-दान दिया। कर्ण के शील की प्रशंसा करते हुए कवि कहता है कि कर्ण जब युद्ध के क्षेत्र में जूझता रहा, उसके मन में माता कुन्ती की प्रतिमा घूमती रही। माता कुन्ती को दिये वचन के अनुसार जब कर्ण के सामने सहदेव, युधिष्ठिर, नकुल और भीम आदि पाण्डव आए, तब कर्ण ने उन्हें जीवन-दान दे दिया। उसने अपने मन से कुछ संकेत पाकर इन चारों शत्रुओं को जीवन-दान दे दिया। शत्रुओं को भी जीवन-दान देकर कर्ण आज अत्यन्त प्रसन्न था।

देखता रहा सब..........................मन-ही-मन डरता है।

शब्दार्थ – पवितन = भीम। अरियों = शत्रुओं।

व्याख्या—कर्ण का सारथी शल्य इस रहस्य को नहीं समझ पा रहा था। जब कर्ण ने भीम को भी इसी प्रकार जीवन-दान देकर छोड़ दिया तो शल्य बहुत चकित हुआ और कर्ण से कहने लगा—"हे सूतपुत्र, तूने यह मृत्यु रूपी धनुष-बाण क्यों धारण कर रखा है? यदि तू पाण्डवों को इसी प्रकार जीवन-दान देता रहेगा तो तेरी वीरता बेकार है। यदि तू इन्हें मारता नहीं है तो फिर इन्हें पकड़ता ही क्यों है? यदि तू इसी प्रकार करता रहा तो संध्या तक युद्ध विजय कैसे करेगा? यदि तू इसी प्रकार शत्रुओं को जीवन-दान देता रहा तो क्या तेरी इच्छा स्वयं अपनी आहुति देने की है?" शल्य पुनः कर्ण से कहता है कि—"युद्ध-क्षेत्र में तेरा यह विचित्र व्यवहार मेरी समझ में नहीं आता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तू अवश्य ही अर्जुन से भयभीत है और यही कारण है कि तू बराबर युद्ध को टाल रहा है।"

हंस कर बोला ....तेज हरेंगे क्या ?

शब्दार्थ—भीति = डर। मृषा = झूठी। बुभुक्ष = भूख। पंकिल = कीचड़।

व्याख्या—जब शल्य ने कर्ण को इस प्रकार व्यंग्यपूर्ण चुनौती दी तो कर्ण हँसते हुए शल्य से कहने लगा कि—"अर्जुन का भय तो उसको होगा जो नाशवान एवं क्षणभंगुर शरीर के प्रति झूठी प्रीति करता होगा। कर्ण का आशय यह है कि वह तो उनमें से है जो प्राणों को हथेली पर रख कर युद्ध में उतरते हैं। इसलिए हे शल्य, मैं अपने चार दिनों के जीवन को कुछ भी नहीं समझता। जो कुछ मेरी आत्मा ठीक समझती है वही करता हूं। अपने जीवन के प्रति मेरा कोई लोभ नहीं है। जब मैं अपने इन बाणों के अत्यन्त भूखे मुख से ग्रास छीन लेता हूं तो निस्सन्देह मेरा अन्तर्मन किंचित हर्षित हो उठता है। मैं जब अपने बाणों का आहार छीनता हूं तो किसी आन्तरिक सुख के कारण प्रसन्न हो जाता हूं।" कर्ण वस्तुत: यह भेद किसी को प्रकट नहीं करना चहता था कि उसने चार पाण्डवों को जीवन-दान दिया है। यह तो धर्म का निर्वाह करने की मौन व्यथा जैसे है जोकि प्रकट भी नहीं की जाती। साथ ही इस व्यथा को सहन करने में भी अभूतपूर्व सुख और तृप्ति मिलती है। कर्ण अपने जीवन के उच्चादर्शों का वर्णन करते हुए कहता है कि —"सारा ससार केवल इसी लोक में विजय पाने के लिए लड़ता है किन्तु मेरा जीवन तो उच्चतर उद्देश्यों के लिए है। मैं किन्हीं उच्चतर आदर्शों का निर्वाह करने के लिए कृतसंकल्प हूं। यदि और लोग विजय के लिए पाप की कीचड़ में पांव रखते हैं तो क्या कर्ण भी वैसा ही करेगा ? निस्सन्देह नहीं, क्योंकि वह जीवन के भौतिक वैभव-विलास का लोभी नहीं है। वह तो सत्य का अनुयायी है। क्या इस संसार के ये भौतिक सुख एवं वैभव कर्ण की आत्मा का तेज भी हर लेंगे ?" कर्ण वस्तुत: जीवन के भौतिक सुख-विलास के प्रति तनिक भी आकर्षण नहीं रखता था। उसका समूचा जीवन उच्चतर लक्ष्यों, मानवीय भावों से सम्बद्ध है।

यह देह टूटने.......................हंसते होंगे अन्तर्यामी।

शब्दार्थ—मृत्तिका = मिट्टी। खमडण्ल = आकाशमण्डल। प्रच्छन्न = छिपा हुआ। अदृष्ट = भाग्य। कामी = कामना करने वाला।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण जीवन की क्षणभंगुरता का वर्णन करते हुए शल्य को उत्तर देता है कि—"मेरा शरीर क्षणभंगुर है। इस मिट्टी के शरीर का क्या विश्वास। एक दिन इस शरीररूपी मिट्टी को त्यागकर मुझे भी आकाश में जाना है। हे शल्य, मैंने जो इन चार पाण्डवों को जीवन-दान दिया है, वह वस्तुत: आकाशमण्डल अर्थात् देवलोक में जाने के लिए सोपान तैयार किया है। हे शल्य, मैंने इन चार पाण्डवों को केवल जीवनदान ही नहीं दिया है अपितु इस प्रकार मैंने अपनी देवलोक-यात्रा को सजाने के लिए चार

फूल ऊपर फेंके हैं।" कर्ण पुन: शल्य को समझाते हुए कहता है कि –"ये चार फूल किन्हीं कातर नयनों के पानी का मूल्य है। ये चार फूल किसी महादानी द्वारा दिया गया गुप्तदान है।" यहाँ कर्ण का यही आशय है कि संसार इस दान के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। यह माता कुन्ती को दिये हुए एक वचन की पूर्तिस्वरूप दिया गया दान है। एक समय मेरे भाग्य ने यह चाहा था कि ये चार पाण्डव मेरे हाथों न मारे जाएं अर्थात् मुझे चलाने वाली नियति मेरे ही हाथों से इन चार पाण्डवों की रक्षा कराना चाहती थी। कर्ण पुन: शल्य को कहता है कि—"ये चार फूल प्राप्त करके अन्तर्यामी भगवान भी प्रसन्न हो जायेंगे।"

विशेष—'ये चार फूल हैं मोल किन्हीं कातर नयनों के पानी के'—इस पंक्ति में कवि ने एक निष्ठावान मातृभक्त पुत्र के बलिदान को अत्यन्त सजीव अभिव्यक्ति प्रदान की है।

समझोगे नहीं शल्य...............समर की पूर्ण करो।

शब्दार्थ—प्रलाप = निरर्थक बातचीत। शायक = तीर। पूर्ण = शीघ्र।

व्याख्या—कर्ण पुन: शल्य को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—"हे शल्य, तुम इस रहस्य को नहीं समझ पाओगे। यह तो नादानों का कार्य है। शल्य, यह कार्य तो उन दीवानों का है जिनके समक्ष युद्धविजय से कहीं उच्चतर लक्ष्य विद्यमान हैं। इसका स्वाद वही लोग जानते हैं जो स्वप्नों का अमृत-पान करते हैं और संसार में रहकर भी संसार से अलग दिखाई देते हैं।" कर्ण का आशय यह है कि यह सारा खेल समर्पण और बलिदान का खेल है। वस्तुत: शल्य इस रहस्य को नहीं समझ सका और कर्ण से कहने लगा—"हे कर्ण, यह प्रलाप बन्द करो। यदि तुम में साहस हो तो युद्धक्षेत्र में धनुष-बाण को धारण करो और अपने अपार पौरुष एवं पराक्रम का परिचय दो। लो वह देखो, बानरी ध्वजा दूर से दिखाई दे रही है।" बानरी ध्वजा अर्जुन की सेना का प्रतीक है क्योंकि ऐसा कहते हैं कि अर्जुन के रथ पर हनुमानजी विराजते थे। शल्य कहने लगा कि – "वह देखो, अर्जुन के विशाल रथ की ध्वनि सुनाई पड़ रही है।" अर्जुन के विशाल रथ का वर्णन करते हुए शल्य कहता है कि—"यह देखो, इस रथ के घोड़े कितने तेज हैं इनकी गति तो विद्युत से भी तेज है। रथ के सामने की सेना तितर-बितर होती जा रही है और तेज गति से चलते हुए रथ के पीछे गर्द उड़ रही है जोकि घटा की तरह लग रही है। इसलिए हे कर्ण, मृत्यु अब बहुत निकट पहुंच चुकी है, तत्काल धनुष-बाण को धारण करो। अर्जुन को जीतने और युद्ध लड़ने की जो लालसा तुम्हें अभी तक व्याकुल किये हुए थी, अब उस लालसा को पूर्ण करने का समय आ गया है।"

पार्थ को देख.................... जी भर सत्कार करें।

शब्दार्थ उच्छल = उत्साहपूर्ण । दंभोलि-नाद = बिजली की कड़क । अन्तक = यम । अनलतत्व = क्रोध के भाव ।

व्याख्या— जब कर्ण ने अर्जुन को देखा तो उसका हृदय अपरिमित उत्साह और उमंग से परिपूर्ण हो गया । अर्जुन को देखते ही कर्ण एक बिजली की तरह कड़ककर क्रोधान्ध हो गया । वह यम की भांति भीमकाय लग रहा था । अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कर्ण कहने लगा—"हे अर्जुन, ईश्वर ने जिस कारण हम दोनों का निर्माण किया है और जिस दिन के लिए हम दोनों ने प्रकृति के क्रोध-भाव का पान किया है, वह दिन अब आ पहुंचा है । जिस दिन के लिए हम दोनों ने अपार साधना की थी, आज सौभाग्य से हम दोनों का वह चिर-प्रतीक्षित क्षण आ पहुंचा है । जिस क्षण की हम जन्म-जन्म से प्रतीक्षा कर रहे थे, वह आ पहुंचा है । आओ, हम दोनों मिलकर बाण रूपी अग्नि से एक दूसरे की पूजा और जयजयकार करें तथा एक दूसरे को काट कर जी-भर सत्कार करें ।"

पर सावधान, इस.................. निनद से दिशाकाश ।

शब्दार्थ—अतिकाल = बहुत समय । रविकान्त = सूर्यकान्त मणि । मूढ़ = मूर्ख । विपक्षी = शत्रु । निनद = ध्वनि ।

व्याख्या—अर्जुन को ललकारते हुए कर्ण पुनः उससे कहता है कि तथापि एक बात के बारे में तुम्हें सावधान करना चाहता हूं और वह यह है कि अब मुझे और तुम्हें इस मिलन-बिन्दु से अलग नहीं होना होगा । आज हम दोनों में से एक को निश्चित रूप से यहीं सोना होगा अर्थात् दोनों में से एक को अपने प्राणों की बलि अवश्य देनी होगी । बहुत लम्बा समय बीत गया है, आज तो हम यह अन्तिम निर्णय कर ही लेंगे । आज या तो मुझे अपना अथवा शत्रु का मस्तक काटकर यहीं रख देना है अर्थात् आज मेरे या तुम्हारे में से किसी एक को प्राणों की आहुति देनी पड़ेगी ।" कर्ण के इन गर्वपूर्ण शब्दों को सुन-कर अर्जुन का सूर्यकान्तमणि जैसा सुन्दर हृदय जल उठा और वह कर्ण को सम्बोधित करते हुए कहने लगा—"हे सारथि-पुत्र कर्ण, तूने ठीक ही निश्चय किया है । किन्तु दोनों में से कौन जीवित रहेगा और कौन मृत्यु का ग्रास बनेगा, यह तो अभी निश्चित नहीं है ।" क्रोध में आकर अर्जुन कर्ण से कहने लगा—"मैं यह प्रश्न अभी निश्चित किये देता हूं और तेरे धड़ से तेरा सिर अलग किये देता हूं ।" यह कहकर अर्जुन ने पूरे बल के साथ धनुष-बाण का संधान किया । उसे यह पूरा विश्वास था कि इस बाण का प्रहार करने के पश्चात् विपक्षी अर्थात् कर्ण निश्चय ही मृत्यु को प्राप्त करेगा । किन्तु कर्ण भी कम बलशाली नहीं था । वह अर्जुन के उस भीषण बाण को सहन कर अट्टहास करके उठ खड़ा हुआ । उस बाण के चलने पर सारी दिशाओं और आकाश में अद्भुत शान्ति दौड़ गई । सारे आकाश में बाण के छूटने की ध्वनि छा गई ।

बोला, शाबाश वीर........................**शरासन पर धर के ।**

शब्दार्थ—दुर्भेद्य = जिसको भेधना कठिन हो । घातिका = विनाशकारी ।

व्याख्या—अर्जुन के वाण चला देने पर भी जब कर्ण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो कर्ण व्यंग्यपूर्ण भाषा में अर्जुन से कहने लगा,—"शाबाश अर्जुन ! आपने मेरा अच्छा सत्कार किया किन्तु वास्तविकता यह है कि तुम्हारा यह प्रहार मेरे लिए बेकार रहा क्योंकि इससे मेरे शरीर को तनिक भी क्षति नहीं पहुंची है । तुमने भ्रमवश यह समझ लिया था कि मेरा कवच-कुण्डल विहीन शरीर अत्यन्त कोमल होगा और तुम्हारे एक ही बाण से क्षत-विक्षत हो जायेगा । अर्जुन, मेरे इस तपाए हुए शरीर को अभी भी दुर्भेद्य समझो । अभी भी मेरा यह साधनादीप्त वक्षस्थल वज्र के समान है । अब मेरी ओर से भी उपहार स्वीकार करो । मेरा यह उपहार तुम्हें निश्चय ही यमलोक पहुंचा देगा और इस प्रकार जीवन का सारा स्वाद मिल जायेगा ।" यह कहकर कर्ण ने अपने होंठों को दबाकर धनुषबाण संभाला । उस समय उसके धनुष-बाण में विकराल विनाशकारी शक्ति भरी हुई थी । कर्ण क्रोध में हुंकार उठा !

'संभलें जब तक........................**का विकट युद्ध ।**

शब्दार्थ—विद्ध = बिधा हुआ । अचिर = तत्काल । प्रबुद्ध = जागृत । प्रावृट = वर्षाऋतु । मार्तण्ड = प्रचण्ड सूर्य । मिस = बहाने । शितिकंठी = शंकर ।

व्याख्या—जब कर्ण ने अर्जुन पर वाण चलाया, भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ को इधर-उधर घुमाते रहे किन्तु उनके सम्भलने से पूर्व ही अर्जुन मूर्छित होकर अपने रथ में गिर पड़ा । युद्धक्षेत्र में कर्ण के इस अभूतपूर्व शौर्य को देखकर सर्वत्र हाहाकार मच गया । सभी लोग चिन्तित होकर एक दूसरे से यही पूछ रहे थे कि कहीं अर्जुन वस्तुतः मृत्यु का ग्रास तो नहीं बन गया है । तथापि ऐसा नहीं हुआ और अपार शौर्य एवं पराक्रमधारी अर्जुन शीघ्र ही सचेत हो गया । होश में आने पर अर्जुन पूरे क्रोध में भरकर कर्ण के साथ द्वन्द्व-युद्ध में लग गया । दोनों एक-दूसरे पर वर्षा की तरह गरज-गरज कर प्रहार कर रहे थे और दोनों के अपार शौर्य को देखकर यह कह सकना कठिन था कि दोनों में से कौन विजयी होगा । कवि ने इस अनिश्चय की स्थिति का वर्णन करते हुए यही कहा कि दोनों की हार-जीत तराजू के पलड़े की तरह कभी इधर कभी उधर झुकती थी । इस ओर तो प्रचण्ड सूर्य की तरह कर्ण था और दूसरी ओर यम-सा विकराल अर्जुन था । दोनों को युद्धरत देखते हुए ऐसा लग रहा था मानों युद्ध के बहाने स्वयं प्रलय ही साकार हो उठी हो । कर्ण और अर्जुन के इस भीषण युद्ध को देखकर दोनों पक्षों की सेनाओं ने लड़ना छोड़ दिया और सभी लोग चकित होकर कर्ण और अर्जुन का यह युद्ध देखने लगे । उन दोनों के युद्ध को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे कि स्वयं भगवान शंकर अपने ही दो रूपों में युद्धरत हों । सारी सेना एकटक इस

विकराल युद्ध को देखती रही। सभी विस्मय में डूबे हुए थे।

विशेष—'रण के मिस ......समर में मूर्तिमान' इस पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार का सफल प्रयोग मिलता है।

इतने में शर.............................पार्थ को मारूंगा।

शब्दार्थ—शर=बाण। निषंग=तरकस। भुजंग=सर्प। हितकामी=भला चाहने वाला। शरव्य=बाण का लक्ष्य अर्थात् अर्जुन।

व्याख्या—जब कर्ण अपने तरकस में से बाण निकालने लगा, तभी एक अश्वसेन नामक सांप फुंकार उठा। यह अत्यन्त प्रचण्ड विषधर कर्ण से कहने लगा—"हे कर्ण, मेरा नाम अश्वसेन है और मैं सर्पों का राजा हूँ। मैं जन्म से ही अर्जुन का शत्रु और तेरा हित चाहने वाला हूँ। मैं बहुत दृष्टियों से तेरा हितैषी हूं। अब मैं यही चाहता हूं कि एक बार मुझे अपने धनुष पर चढ़ाकर अर्जुन पर वार कर दे। मेरी यही इच्छा है कि मेरा यह महाशत्रु तत्काल ही रथ में सो जाए अर्थात् मैं इसकी मृत्यु का कामी हूं। अपना विष निकाल कर मैं जीवन भर का संचित प्रतिशोध उतारूंगा। मुझे तनिक सहारा दे दे और तू देखेगा कि मैं एक क्षण में ही अर्जुन की मृत्यु का कारण बन जाऊंगा।"

विशेष—खाण्डव-वन-दाह के समय अर्जुन ने अश्वसेन नामक सर्प की माता को मार डाला था। अश्वसेन इसी कारण अर्जुन से प्रतिशोध लेने को आतुर था। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए अश्वसेन नामक सर्प कर्ण की सेवा में उपस्थित हुआ है।

राधेय जरा हंस..............................ने सहाय्य किया।

शब्दार्थ—सुकृत=पुण्य। क्षार=बेकार।

व्याख्या—जब अश्वसेन ने अर्जुन-वध के लिए अपनी सेवा समर्पित की तो कर्ण तनिक हंसकर उससे कहने लगा—"हे कुटिल अश्वसेन, तुम यह कैसी विचित्र बात करते हो। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि विजय प्राप्ति का सारा साधन मनुष्य की अपनी बाहों में रहता है। फिर भला मैं सांपों के साथ मिल कर मानव-हत्या का भागी बनूं? मनुष्य होकर मैं सर्प नहीं बन सकता। जीवन भर मैं जिस सत्पथ का अनुगामी रहा, भला उसके विरुद्ध मैं कैसे चल सकता हूं। जीवन भर मैं जिस निष्ठा का पालन करता रहा उसके विरुद्ध कैसे चल सकता हूं। यह तो संभव हो सकता है कि तेरे बल पर मैं शीघ्र ही विजय प्राप्त कर लूं किन्तु आने वाली मानवता को मैं क्या मुख दिखलाऊंगा। संसार बार-बार यही कहेगा कि मैंने अपने जीवन भर के पुण्य-कार्यों को तनिक से लोभ के कारण बेकार कर दिया। आने वाली मानवता मुझे यही कहकर धिक्कारेगी कि विजय के क्षणिक लोभ में आकर कर्ण समान पापी ने सर्प की सहायता ले ली।"

रे अश्वसेन ! तेरे .... भर ही तो है ।

शब्दार्थ—वंशज = संतान । प्रतिबल = प्रतिद्वन्द्वी । सनातन = सदा रहने वाला ।

व्याख्या—कर्ण, अश्वसेन के प्रस्ताव को पुनः ठुकराते हुए कहता है कि, "हे अश्वसेन, तेरी बहुत-सी संतान मनुष्यों के बीच छिपी हुई बैठी हैं । ये सांप केवल वन-प्रदेशों तक ही सीमित नहीं हैं अपितु मनुष्यों के रूप में शहरों, गांवों और घरों में भी मिलते हैं । ये मनुष्य रूपी सांप मनुष्यता का मार्ग और अधिक अवरुद्ध कर देते हैं । इनके अपने कोई सिद्धान्त नहीं होते और अपने प्रतिद्वन्द्वी के वध के लिए ये मनुष्य रूपी सांप नीच सांपों की सहायता लेते हैं ।" कर्ण पुनः अश्वसेन से कहता है कि—"मुझे यह आशंका है कि कहीं मेरा उज्ज्वल नाम भी इन मनुष्य रूपी सांपों में न जुड़ जाये । यदि मैंने तुम्हारी सहायता स्वीकार कर ली तो निस्संदेह मुझे अपने उच्चादर्शों की आहुति देनी पड़ेगी । मेरा यह रूप मानव मात्र के लिए एक जघन्य पाप के रूप में याद किया जायेगा । अर्जुन मेरा शत्रु है किन्तु वह मनुष्य है, सर्प नहीं है । मेरा और उसका संघर्ष इसी जीवन का संघर्ष है, सदा-सदा से नहीं चला आ रहा है । ऐसी स्थिति में भला मैं अपना भावी जीवन क्यों खराब करूं ।"

अगला जीवन किस .... व्यग्र, व्याकुल हताश ।

शब्दार्थ—काकोदर = सांप । प्लावन = प्रलयंकारी बाढ़ । व्यग्र = बेचैन ।

व्याख्या—कर्ण अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह कहता है कि वह अपने अगले जीवन के लिए भी चिन्तित है । कर्ण अश्वसेन को कहता है कि—"हे अश्वसेन से अब तुम्हीं बताओ कि मैं तुम्हारी सहायता लेकर अपना आगामी जीवन भी कै । बिगाड़ सकता हूं । सांपों की शरण में जाकर मैं मनुष्य की हत्या क्यों करूं तू इसलिए तू भाग जा । मैं जानता हूं कि तू मनुष्य मात्र का शत्रु है इसलिए ी मेरी मित्रता का अधिकारी नहीं हो सकता । मैं किसी भी स्थिति में और किस भी लक्ष्य की पूर्ति के लिए अपने उज्ज्वल चरित्र पर यह कलंक नहीं लगने दूंगा ।" कर्ण पुनः सांप को विदा करके बड़ी गरज के साथ युद्ध-क्षेत्र में उतर आता है । कर्ण की भीषण हुंकार से विस्तृत आकाश झंकृत हो उठा । कर्ण का उत्साह एक भीषण तूफान से कम नहीं था और वह शत्रुदल को धकेलता चला जा रहा था । कर्ण शत्रुदल को इतने बलपूर्वक धकेल रहा था कि ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रलयंकारी बाढ़ सामने के जल को बहा रही हो । कर्ण के इस भीषण प्रहार के कारण पाण्डवों की सेना में भगदड़ मच गई थी । पाण्डव-सेना जिधर भी जाती थी, अपने पीछे कर्ण को पाती थी अर्थात् कर्ण बराबर पाण्डवों का पीछा कर रहा था । अन्ततः पाण्डवों की समूची सेना पूर्णतः निराश हो गई, युद्ध में विजय की कोई आशा नहीं रह गई । जब भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि समूचा पाण्डव समूह निराश और व्याकुल हो गया है तो वे अर्जुन

के पराजित मनोबल को पुनः जागृत करने में लग गये।

अर्जुन ! देखो किसी ....कुंजर घूम मचाता है।

शब्दार्थ—अशंक = निर्भय। द्विरद = हाथी। कुंजर = हाथी।

व्याख्या—कर्ण के भीषण प्रहारों के कारण पाण्डव-सेना का मनोबल खण्डित हो चुका था। ऐसी कठिन घड़ी में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहने लगे—"हे अर्जुन, देखो वह कर्ण किस तरह पाण्डव-सेना पर टूट रहा है। एकदम निर्भय होकर पाण्डवों को पराजित करता आ रहा है। जिधर देखो उधर उसके ही बाण दिखाई पड़ रहे हैं। इस युद्ध-क्षेत्र में केवल उसकी ही भीषण हुँकार सुनाई पड़ती है। हे अर्जुन, तनिक उसके प्रहारों की विकरालता, पौरुष और वीरता को देखो। उसके प्रहार उसके अपरिमित शौर्य के परिचायक हैं। अर्जुन, देखो यह कर्ण हाथी की तरह इस युद्ध-क्षेत्र में निशंक होकर घूम रहा है। कमल वन में भी हाथी इस तरह तहस-नहस नहीं करता होगा।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण के महान शौर्य एवं पराक्रम का सजीव चित्रण मिलता है।

इस पुरुष-सिंह का...................जग का अधिकारी है।

शब्दार्थ—पुरुष सिंह = पुरुषों में सिंह। अन्तर्नभ = हृदयाकाश। विवस्वान = सूर्य। ज्योतियों के जग = स्वर्गलोक।

व्याख्या—कर्ण के अतुलित पराक्रम का वर्णन करते हुए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि—"इस पुरुष रूपी सिंह के पराक्रम को देखकर मेरी आँखें भी गद्‌गद् हुई जा रही हैं। हे अर्जुन, मैं तो कर्ण के इस अतुलित पराक्रम को देखकर अत्यन्त प्रभावित हो गया हूं और यदि तुम बुरा न मानो तो मैं अपने मन का एक गूढ़ रहस्य भी बतला देना चाहता हूं। मैंने कर्ण की और तेरी वीरता को एक साथ देखा है किन्तु मन ही मन मैं तेरी तुलना में कर्ण को अधिक बड़ा वीर मानता आया हूं। यही नहीं, उसका जो पराक्रम मैंने आज देखा है, वह देखकर तो मैं यही सोचता हूं कि सम्भवतः यहां कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो युद्ध-क्षेत्र में इस अतुलित धनुर्धर को जीत सके।" भगवान् श्रीकृष्ण, अर्जुन को स्थिति से अवगत कराते हुए कह रहे हैं कि "हे अर्जुन, मेरी तो यह धारणा है कि यदि मैंने सुदर्शन चक्र धारण कर लिया और तूने अपना गाण्डीव संभाल लिया, तो भी सम्भवतः कर्ण काबू में नहीं आ सकेगा। इसका यह पराक्रम देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण के पास केवल शारीरिक बल ही नहीं अपितु आध्यात्मिक बल भी है। उसके भीतर का सूर्य ही अपने प्रखर तेजोमय प्रकाश से उसको इतना प्रचण्ड और जाज्वल्यमान बनाये हुए है। निस्सन्देह यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है। यह एक तपस्वी एवं व्रतधारी वीर है अर्थात् इसमें केवल शारीरिक शक्ति ही

नहीं वल्कि आध्यात्मिक बल भी है। यद्यपि यह भी अन्य व्यक्तियों की भांति मिट्टी से ही बना है तो भी यह वस्तुतः स्वर्गलोक का अधिकारी है। एक सामान्य व्यक्ति होते हुए भी वह आध्यात्मिक संसार का व्यक्ति है।"

कर रहा काल-सा.....................भी दिखलाना होगा।

शब्दार्थ—अरिजन = शत्रु। अर्जित = सीखी हुई।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के पराजित मनोबल को पुनः जीवित करते हुए उससे कहते हैं—"यह देखो, विजय का अपराजेय विश्वास लिए हुए कर्ण मृत्यु की तरह विकराल युद्ध कर रहा है। सर्वत्र निर्भय होकर घूम रहा है मानो उसके भीतर का कोई दिव्य प्रकाश, कोई नवचेतना ही उसे एक महान वीर की भांति युद्ध करने की प्रेरणा दे रही हो। जब देखो तो वह किसी शत्रु पर दृष्टि लगाये दीखता है। वह इतना क्रोधान्ध हो गया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वह यह भूल ही गया हो कि उसके शरीर पर भी एक सिर है अर्थात् उसके शौर्य और पराक्रम को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो वह अपने आपको अपराजेय समझ बैठा है। इसलिए हे अर्जुन, तुम अपनी समस्त शक्ति का आह्वान करो और जो विद्याएँ भी तुमने आज तक सीखी हैं, उन सबका ध्यान करो। तुम्हारे भीतर जितना भी तेज हो उसे अपने चरम रूप में जागृत होने दो। अब एक ऐसी घड़ी आ गई है जबकि तुम्हें भी इस युद्ध में कुछ करके दिखलाना है। तुम भी शक्ति परीक्षण के लिए तैयार रहो।"

दिनमणि पश्चिम की...............तिग्म विशिख सन-सन।

शब्दार्थ—दिनमणि = सूर्य। विभोर = डूबा हुआ। निनाद = ध्वनि। दंताबल = हाथी। तिग्म = प्रखर।

व्याख्या—जब यह युद्ध चल रहा था तब इस युद्ध को देखकर सूर्य पश्चिम की ओर चले गये अर्थात् सूर्यास्त का समय हो गया। तभी कर्ण के भीतर एक नई शक्ति का संचार हुआ और वह अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए गरज कर बोला—"ओ प्रलय, सामने प्रकट हो, मैं तुझे फाड़कर अपनी राह बनाऊँगा। यदि मुझे तेरे भीतर जाना है अर्थात् यदि मुझे भी प्रलय की आग में कूदना है तो मैं निस्सन्देह संहार करता हुआ जाऊंगा। जब मुझे अपने प्राणों की ही बलि देनी है तो मैं भी अधिकाधिक संहार मचाऊँगा।" कर्ण के भीतर एक दिव्य शक्ति संचरित हो रही थी। मृत्यु का आह्वान करते हुए कर्ण कहता है कि—"हे मृत्यु, हे काल, ! मुझे क्या धमकाता है ? आ, मैं तुझे ही मुट्ठी में बन्द कर लूं। हे काल, आ तुझे समाप्त करके मैं भी छुट्टी पाऊं और स्वच्छन्द हो जाऊँ।" यहाँ कर्ण को स्पष्टतः अपनी मृत्यु का पूर्वाभास होता दीख रहा है, तभी तो वह अपने आपको जन्म-मृत्यु के इस चक्र से स्वच्छन्द करना चहता है। कर्ण अपने सारथी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—

"हे शल्य, घोड़ों को तेज करो और शीघ्र ही मुझे वहाँ ले चलो जहाँ श्रीकृष्ण-अर्जुन और उनके श्रेष्ठतम वीर विराजमान हों । हे शल्य, अब तुम मुझे वहाँ ले चलो जहाँ शस्त्रों की विकराल ध्वनि सुनाई पड़ रही हो और हाथी चिंघाड़ रहे हों । मुझे वहाँ ले चलो, जहाँ वीर लोग मृत्यु की तरह रण में जूझ रहे हों और हुंकार रहे हों । मैं वहाँ जाने को आतुर हूं जहाँ असंख्य सिर धड़ों से अलग हो रहे हों । अर्थात् जहाँ असंख्य लोग मृत्यु का ग्रास बन रहे हों और सर्वत्र रोना-चीखना सुनाई दे रहा हो । मुझे वहाँ ले चलो जहाँ तलवारों की झनझनाहट हो रही हो और प्रखर तीरों की वर्षा दिखाई पड़ रही हो ।" यहाँ कर्ण वस्तुतः युद्ध में जूझने के लिए अत्यन्त आतुर दिखाई पड़ रहा है ।

संहार देह धर..................................है आज प्राण ।

शब्दार्थ—संहार = मृत्यु । पैंजनी = पायजेब ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में ऐसे स्पष्ट संकेत दीखते हैं कि कर्ण को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया है । वह शल्य से कहता है कि—"मुझे ऐसी जगह ले चल जहाँ स्वयं मृत्यु ही साकार हो गई हो और विनाश एवं संहार का प्रतीक ताण्डव नृत्य कर रही हो और उसके पैरों के आभूषण बज रहे हों, जहाँ बड़े-बड़े पराक्रमी वीरों की गर्जना में ताण्डव का स्वर भी डूब रहा हो ।" कर्ण पुनः शल्य से कहता है कि "मुझे वहां ले चलो जहाँ संहार एवं विनाश के कारण आसमान भी फटा हुआ सा प्रतीत हो रहा हो और योद्धाओं में घमासान युद्ध छिड़ा हुआ हो । हे शल्य, मुझे आज साकार विनाश के बीच बैठकर ही अपने प्राण त्यागने हैं । मैं एक वीर हूँ और इसलिए विनाश के अंक में ही मैं अपने प्राण छोड़ना चाहता हूं ।"

विशेष—स्वयं संहार का 'पैंजनी बजाना, आकाश का फट जाना और महाप्रलय के गर्जन में ताण्डव का स्वर डूबना—ये सब मिलकर प्रलय की विकरालता के परिचायक सत्य हैं ।

समझ में शल्य..............................चक्के को पकड़ कर ।

शब्दार्थ—दीपित = चमकता हुआ । धरित्री = धरती । मेदिनी = धरती । मानवप्रसू = मनुष्यों को जन्म देने वाली ।

व्याख्या—कर्ण के कहने पर उसके सारथी शल्य ने घोड़ों को भगाया और शीघ्र ही उसका रथ भगवान श्रीकृष्ण के रथ के निकट पहुंच गया । वस्तुतः अब कर्ण के जीवन में अगम्य और अज्ञात पथ आ पहुंचा था । तनिक दार्शनिकता का स्पर्श देते हुए कवि कहता है कि जिस मार्ग पर चलना कठिन है—जो अगम है, वही आ पहुंचा है । नियति का क्रम भी एकदम अनोखा है । कवि कहता है कि लगता है कि नियति का आधार न्याय नहीं है । नियति अर्थात् भाग्य मूलतः कुटिल होता है । अपनी इस धारणा की पुष्टि में कवि 'रश्मिरथी'

के नायक कर्ण के प्रोज्ज्वल चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहता है कि —"वह कर्ण जिसका धर्म सदा ही प्रोज्ज्वल रहा अर्थात् जिसने सदैव शुभ धर्म का ही पालन किया और जिसके कर्म सूर्य की भांति उज्ज्वल थे, जिसके जीवन का एकमात्र आधार असीमित दानशीलता थी और जो सारी धरती का शृंगार था वही कर्ण आज नियति के क्रूर थपेड़ों को सहन कर रहा है। आज वही धरती, जो उसे अपना शृंगार मानती रही थी, उसे निगल जाना चाहती है। भला मनुष्यों को जन्म देने वाली इस धरती को क्या कहें, यह तो स्वयं आज कर्ण के प्राणों की प्यासी बनी है। कर्ण का रथ रक्त से सने कीचड़ में फंस गया। रथ का पहिया वहीं जकड़ गया। ऐसा लगा मानो धरती स्वयं कर्ण के जीवन की प्यासी हो गई थी।

लगाया जोर अश्वों·····················कुछ ऐसा धंसा है।

शब्दार्थ—मही = धरती। रथी = कर्ण।

व्याख्या—जब कर्ण का रथ कीचड़ में फंस गया तो उसके सारथी शल्य ने बहुत प्रयत्न किया, घोड़ों को बहुत जोर से दौड़ाया किन्तु धरती ने रथ के पहिए को नहीं छोड़ा। जब वह सारथी एकदम निराश हो गया और रथ का पहिया टस से मस नहीं हुआ तो वह अन्ततः निराश होकर कर्ण से कहने लगा—"हे कर्ण, बड़ी आश्चर्यजनक बात है। किसी दानवी शक्ति का प्रहार लगता है। देखो, थोड़ी-सी कीचड़ है किन्तु हमारा यह रथ और उसका पहिया कुछ ऐसा धंस गया है कि पूरी शक्ति लगाने पर भी रथ का पहिया अपने स्थान से टस से मस नहीं हुआ है।"

निकाले से निकलता·····················उसको बाहुबल से।

शब्दार्थ—भुवन = धरती। विलक्षण = विचित्र। घात = प्रहार।

व्याख्या—जब धरती में धंसे पहिये को नहीं हिलाया जा सका तो शल्य कर्ण से कहने लगा—"हे कर्ण, मैंने तो बहुत जोर लगाया है किन्तु यह रथ अपने स्थान से तनिक भी नहीं हिला है। अब हमारा जोर तनिक भी नहीं चल रहा है। जरा तुम भी प्रयत्न करके देखो।" शल्य की यह बात सुनकर कर्ण मन ही मन हंसा और अपने दुर्भाग्य के सम्बन्ध में यह विचार करने लगा—"सच, इतने बड़े संसार में जो भी विचित्रताएं होती हैं, सब मेरे लिए हैं। भाग्य की क्रूरताएं भी मेरे ही लिए हैं। तभी तो अन्तिम समय में मेरे साथ यह अनहोनी हो रही है।" कर्ण अपने पराजित और निराश मन को प्रबोधित करते हुए कहता है कि—"ठीक है, जब भाग्य ही मेरे विपरीत है और धरती ही मेरी शत्रु बनकर मेरे रथ को निगलना चाहती है तो ऐसी स्थिति में मेरी अपनी शक्ति ही काम आएगी। मेरे अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति इस कठिनाई से त्राण नहीं पा सकता।"

उछल कर कर्ण..नीचे धंसा था।

शब्दार्थ—सलिल आगार=समुद्र।

व्याख्या—जब शल्य ने कर्ण से रथ निकालने का आग्रह किया तो कर्ण उछलकर रथ से नीचे उतरा और रथ के पहिये में भुजा डालकर जोर लगाया। वह जोर लगाकर पहिये को ऊपर उठाने लगा। जब कर्ण ने अत्यधिक जोर लगाया तो सारी धरती हिल उठी, समुद्र डोल गया। कर्ण की भुजा के जोर से सारा संसार डोल गया। फिर भी रथ का वह पहिया अपने स्थान से नहीं हिला बल्कि और अधिक गहरा धँसता गया।

विपद में कर्ण को..........................मगर, बोला अकिंचन।

शब्दार्थ—देखना=आदेश। एषणा=इच्छा। अकिंचन=तुच्छ।

व्याख्या—जब कर्ण रथ पर से नीचे उतरकर जोर लगाने लगा तो स्वभावत: वह निहत्था था। कवि कहता है कि जब भगवान श्रीकृष्ण ने कर्ण को इस प्रकार विपत्ति की स्थिति में घबराया हुआ पाया तो वे अर्जुन को सचेत करते हुए कहने लगे—"हे अर्जुन, अब तुम मौन खड़े हुए क्या देख रहे हो? यही अवसर है, धनुष-बाण तान। फिर यह घड़ी नहीं आएगी। तत्काल धनुष-बाण धारण कर और कर्ण के गले के पार करके शत्रु का संहार कर दे।" अर्जुन ने जब विश्वगुरु भगवान श्रीकृष्ण का वह आदेश सुना और युद्ध-विजय की आतुरता देखी तो वह मन ही मन कुछ सहम उठा। फिर भी अत्यन्त विनम्र भाषा में भगवान श्रीकृष्ण को कहने लगा—"क्या इस प्रकार निहत्थे कर्ण पर प्रहार करना धर्मानुसार होगा?"

नरोचित किन्तु क्या..........................तुझको ही ग्रसेगा।

शब्दार्थ—नरोचित=मनुष्य के लिए उचित। हनन=मारना।

व्याख्या—जब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से निहत्थे कर्ण पर प्रहार करने का आग्रह किया तो अर्जुन विनम्र होकर कहने लगा—"हे भगवन्, क्या इस प्रकार निहत्थे कर्ण पर बाण चलाना मानवोचित कर्म होगा? क्या इससे धर्म के पुनीत सिद्धान्त मलिन नहीं हो जाएंगे अर्थात् क्या ऐसा करना धर्मानुकूल होगा।" अर्जुन के इन शब्दों को सुनकर श्रीकृष्ण मन ही मन हंसे और अर्जुन से कहने लगे—"हे अर्जुन, तू तो यूं ही हठ ठान रहा है। तुझे धर्म के बारे में पूरा ज्ञान नहीं है। जो मैं तुझे कहता हूँ, वही धर्म है, उसीका पालन कर। शत्रु को मारना ही सबसे बड़ा सत्कर्म होता है, इसमें कोई पाप नहीं होता है। यदि तू कर्म को छोड़कर इस प्रकार के वृथा चिन्तन में फँसेगा तो यह याद रख कि तू स्वयं ही मृत्यु का ग्रास बन जायेगा। इसलिए मेरा कहा मान और कर्ण पर इसी घड़ी बाण चला।"

विशेष—इन पदों में भगवान श्रीकृष्ण की भूमिका गीता के कर्मयोग के पक्षधर भगवान श्रीकृष्ण की भूमिका से मिलती-जुलती है। युद्ध में शत्रु का

हनन ही एकमात्र धर्म होता है ।

भला क्यों पार्थ.................................का रण देखते थे ।

शब्दार्थ—कालाहार=मृत्यु का ग्रास । शिष्टि=आदेश । निःसम्बल—असहाय । विरथ=रथविहीन । निर्वाक्=मूक, चुप ।

व्याख्या—जब अर्जुन कर्ण पर बाण चलाने में संकोच अनुभव करने लगा तो भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—"यदि तू कर्म के स्थान पर चिन्तन में लग गया तो तू स्वयं मृत्यु का ग्रास बन जायेगा ।" फिर भला अर्जुन अकारण ही मृत्यु का ग्रास क्यों बनता ? अपने शुभाशुभ कर्मों का दायित्व श्रीकृष्ण पर डालते हुए अर्जुन ने उनके आदेश का पालन करने का निश्चय किया । निःशस्त्र कर्ण पर बाण चलाते हुए अर्जुन का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—अर्जुन विपदाओं में घिरे कर्ण का संहार करने के लिए उस पर बाण चलाने लगा । वह कर्ण के शरीर को बेध देना चाहता था । निहत्थे कर्ण पर बाण चलाने वाले अर्जुन के ऊपर व्यंग्य कसते हुए कवि कहता है कि—वह निहत्थे कर्ण पर अपनी वीरता का प्रदर्शन कर रहा था । एक ओर तो अर्जुन धनुष-बाण के संधान में लगा हुआ था, दूसरी ओर कर्ण एकदम असहाय और निःशस्त्र खड़ा था । सभी लोग चुपचाप खड़े थे और इस अनोखे धर्म-युद्ध को देख रहे थे ।

विशेष—'अनोखे धर्म का रण'—इन शब्दों में कवि ने अर्जुन पर कठोर व्यंग्य किया है ।

नहीं जब पार्थ.................................करूं, प्रहरण संभालूं ।

शब्दार्थ—टुक=तनिक ।

व्याख्या—जब कर्ण ने देखा कि अर्जुन धर्म की चिन्ता किए बिना उस पर बाण चलाने को तैयार है तो उसने अपने भीतर धीरज बांधकर तनिक गम्भीर शब्दों में अर्जुन से कहा—"हे अर्जुन, तनिक तो मानवोचित धर्म से काम करो । आज तो तुम काफी युद्ध कर चुके हो, अब तनिक विश्राम करो । जब तक मैं लड़ने के लिये तैयार होऊँ और रथ के फँसे हुए पहिये को निकालूँ, तब तक तुम विश्राम कर लो । फिर भले ही युद्ध कर लेना । फिर तुम भले ही मेरे प्राण ले लेना ।"

रुको तब तक.................................से सत्कर्म होगा ।

शब्दार्थ—समर्थित=परिपुष्ट । भुवन=धरती ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के माध्यम से एक गम्भीर चिन्तन का परिचय दिया है । जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह होती है कि विजय के लिए मनुष्य सत्पथ से च्युत न हो । कर्ण ने इन पंक्तियों में यही कहा है कि इस संसार की यह क्षणिक विजय वृथा है । कर्ण अर्जुन से प्रार्थना करता है—"जब तक मैं तयार हो सकूं और इस रथ का धंसा हुआ पहिया निकाल सकूं तब तक तुम बाण मत चलाओ । उसके बाद यदि तुम में शक्ति हो तो

भले ही मेरे प्राण ले लेना। मैं तुम से शरण अथवा दया की प्रार्थना नहीं करता, मैं तो केवल 'धर्म-समर्थित' युद्ध के लिए आग्रह करता हूं। मैं रण से नहीं घबराता, किन्तु तुम्हारी तरह धर्म-पथ से नहीं डिग सकता। इसलिए हे अर्जुन, मुझ निहत्थे कर्ण पर बाण चलाकर अपना नाम कलंकित मत करो। एक घड़ी तुम यह भी तो ध्यान करो कि इस संसार में हम जिस विजय के लिए आतुर होते हैं, वह क्षणिक ही तो होती है। हमारी यह शारीरिक विजय क्षणिक होती है और इसकी चमक इसी संसार तक होती है अर्थात् हमारे भावी जीवन-निर्माण में इस विजय का कोई महत्व नहीं होता। इस संसार में प्राप्त हुई विजय इसी संसार में नष्ट हो जाती है और जब ऐसा है तो मनुष्य उसे प्राप्त करने के लिए पतन का मार्ग क्यों अपनाए ? जब यह क्षणिक विजय यहीं रह जाएगी तो मनुष्य को अपने सत्पथ से नहीं डिगना चाहिए। अन्ततः उज्ज्वल धर्म ही हमें शरण देगा और हमारे सत्कर्म ही हमारा अन्तिम आश्रय सिद्ध होंगे। हमारा धर्मानुकूल आचरण और हमारे सत्कर्म यही हमारी सबसे बड़ी उपलब्धियां हैं।"

विशेष—इन पंक्तियों में कर्ण ने धर्म और कर्म के एक दार्शनिक विचारक की-सी भूमिका का निर्वाह किया है। इस प्रकार कवि ने इन पंक्तियों में कर्ण के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक पक्ष का सफल उद्‌घाटन किया है।

उपस्थित देख यों...........................धर्म उस दिन।

शब्दार्थ—न्यायार्थ = न्याय के लिए। प्रलापी = अधिक बोलने वाला।

व्याख्या—जब कर्ण ने अर्जुन के समक्ष धर्म-समर्थित युद्ध का आग्रह किया और स्वयं अर्जुन अपने में ग्लानि का अनुभव करने लगा तो उसने खिन्न होकर श्रीकृष्ण की ओर देखा। कर्ण की न्यायोचित बात को सुनकर वह श्रीकृष्ण की प्रतिक्रिया जानने को आतुर हो उठा। भगवान श्रीकृष्ण के मन पर कर्ण की इन सभी दलीलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि वह क्रोधित होकर कर्ण से कहने लगे, "ओ प्रलापी और धर्म की दुहाई देने वाले कर्ण, आज तू निष्ठा और सत्कर्म का पक्ष ले रहा है। किन्तु जिस दिन छल-कपट से अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का संहार किया गया था उस दिन तेरे धर्म और तेरी निष्ठा को क्या हो गया था ? उस दिन तू क्यों चुप रहा था ?"

हलाहल भीम को.......... ....निष्काम जिस दिन।

शब्दार्थ—हलाहल = विष। सुवामा-जाति = नारी-जाति।

व्याख्या - इन पंक्तियों में भगवान श्रीकृष्ण, कौरव-पुत्रों द्वारा किये गये विभिन्न अन्यायपूर्ण एवं पापकृत्यों की चर्चा करते हुए कर्ण से पुनः कहते हैं कि—"हे कर्ण, जिस दिन भीम को हलाहल पीना पड़ा था उस दिन तुम्हारा यह धर्म कहां गया था ? जब दुर्योधन ने लाक्षागृह में आग लगाकर पाण्डवों को समाप्त करने की योजना बनाई थी तब क्या धर्म की ही रक्षा हुई थी ?

जब भरी सभा में द्रौपदी को खींचकर लाया गया और दुर्योधन की दासी बताया गया तब तुम्हारा धर्म कहां था ? उस दिन तुमने नारी जाति को जो सम्मान दिया था, मेरे विचार से वह केवल सत्कर्म ही था।" यहां श्रीकृष्ण निस्सन्देह व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग कर रहे हैं। वे कहते हैं कि—"जिस दिन पाण्डवों को जुए में हराया गया और उनका समूचा धन-धान्य ले लिया गया तो क्या यह उज्ज्वल धर्म का ही प्रतीक था ?" इन पंक्तियों में कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि युद्ध लड़ने वाले दोनों पक्ष ही एक से दोषी होते हैं। धर्म और शील की दुहाई देने वाले कर्ण का कौरव-पक्ष भी अनेकानेक पापकृत्यों के लिए उत्तरदायी है।

विशेष—इन पंक्तियों में भगवान श्रीकृष्ण ने कौरव-पक्ष द्वारा किये गये विभिन्न अन्यायपूर्ण कृत्यों की चर्चा की है, और यह सिद्ध किया है कि महाभारत के युद्ध का दायित्व केवल पांडवों पर ही नहीं अपितु कौरवों पर भी है।

चले बनवास को………………………क्यों मारते हैं।

शब्दार्थ—शकुनियों = शकुनि और उनके साथी। अघी = पापी।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण पुनः कर्ण को कहते हैं कि—"जब पाण्डवों को बनवास जाना पड़ा क्या वह शकुनि तथा उनके साथियों का पापकर्म नहीं था अर्थात् क्या पाण्डवों को बनवास भेजने में शकुनियों का पूरा हाथ नहीं था ? यही नहीं, जब पाण्डव बनवास की अवधि पूरी करके आए और जब उन्होंने दुर्योधन से साम्राज्य मांगा तो क्या यह उनका पापकृत्य था ? यदि उन्होंने अपना राज्य माँगा तो क्या कोई अन्याय किया था ? अब वे धर्म की रक्षा के लिए क्यों हारते है ? यदि हम शत्रु का संहार कर रहे हैं तो क्या हम पापी हैं ?"

हमीं धर्मार्थ क्या………………………बताने अन्य जन में।

शब्दार्थ—मौन = चुप। दुरित = पाप। किल्विष = पाप। मृषा = वृथा।

व्याख्या—श्रीकृष्ण पुनः कर्ण से कहते हैं कि—"क्या धर्म की रक्षा करने का कार्य केवल पाण्डवों का है ? क्या हमीं मौन होकर तुम्हारे पक्ष के सभी अन्याय सहते रहेंगे ? क्या आप लोग धर्म को तनिक भी बल नहीं देंगे ? क्या ये सब उपदेश हमारे ही लिए हैं ? क्या और लोगों को क्रूरता और छल त्यागने की आवश्यकता नहीं है ? क्या ये सब धर्मोपदेश हमारे ही लिए हैं ? तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे पक्ष अर्थात् कौरव-पक्ष के लोगों ने पाण्डवों को कौन-सी यातनाएं नहीं दीं ? कौरवों ने कौन-से जघन्य कार्य नहीं किये अर्थात् इस युद्ध का दायित्व कौरवों पर भी है, वे इससे मुक्त नहीं कहे जा सकते। तथापि तूने कभी अपने पक्ष के इस अन्याय की भर्त्सना नहीं की। तेरे लिए वह सब धर्म ही था ? तेरी दृष्टि में दुर्योधन के ये सभी कुकृत्य सत्कर्म ही थे। अब जबकि उन सभी कृत्यों का फल सामने आ गया है और सारा संबल अभिशप्त

हो गया है अर्थात् सारे उपचार समाप्त हो गए हैं, तब तू इस रण के मैदान में धर्म को ढूंढ़ने चला है। अब जबकि सब कुछ निपट चुका है तब तू वृथा ही अन्य पक्ष के लोगों में दोष निकालने का यत्न कर रहा है। यह सब तो तुझे पहले सोचना चाहिए था।"

शिथिल कर पार्थ……………………………हैं नहीं क्यों।

शब्दार्थ—किंचित् = तनिक। धर्माधर्म = धर्म-अधर्म। अवसेर = देर। सुशोभन = पावन कृत्य।

व्याख्या—यह सब कहने के पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को प्रबोधन करते हुए उससे कहते हैं कि "हे अर्जुन, तू अपना हृदय तनिक भी शिथिल मत कर। धर्म-अधर्म के चक्कर में पड़कर डरपोक मत बन। अपने हृदय को कड़ा कर और बाण चढ़ाकर इसका अर्थात् कर्ण का संहार कर दे।" श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर कर्ण मन ही मन हंसते हुए श्रीकृष्ण से कहने लगा—"हां केशव, कुछ और भी कृपा दिखलाएं और आप भी अपना सुदर्शन चक्र क्यों नहीं संभालते हैं।"

कहा जो आपने……………………………आपको हम मानते हैं।

शब्दार्थ—अपधर्म = पाप। कुत्सित = पापपूर्ण।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण को उत्तर देते हुए कर्ण कहता है कि—"आपने जो कुछ कहा है, ठीक ही कहा है। तथापि मुझे आज अपनी चिन्ता नहीं है। मुझे एकमात्र चिन्ता यही है कि मैं दुर्योधन को विजय दिलाए बिना ही जा रहा हूं। वस्तुत: यह ऐसी घड़ी नहीं है जबकि यह पूछा जाए कि किसने क्या किया और संसार के धर्म को आश्रम दिया अथवा नहीं। कल तक जहां दुर्योधन खड़ा था, क्या पांडव भी आज वहीं पर नहीं खड़े हैं? जिन पाप-कृत्यों की जिम्मेदारी कल तक दुर्योधन पर थी, क्या पाण्डव भी आज वही कुछ नहीं कर रहे हैं? इस बात में कोई अधिक तर्क नहीं है कि पाप का श्रीगणेश पहले किसने किया। मूल बात तो यह है कि किसने आद्योपान्त धर्मानुसार आचरण किया। यदि यह मान लिया जाए कि दुर्योधन ने ही पहले अन्याय किया था तो पांडवों ने भी कौन-सा पापकृत्य छोड़ दिया, कौन-सा गलत काम नहीं किया। मैं आपको क्या-क्या गिनाऊं, आप तो जगद्गुरु हैं सब कुछ जानते हैं। आपके लिए कोई भी बात नई नहीं है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि यही सिद्ध करना चाहता है कि युद्ध लड़ने वाले दोनों पक्ष ही एक समान अपराधी होते हैं। युद्ध का दायित्व दोनों पर ही होता है। यह बात कोई महत्व नहीं रखती कि पहल किसने की। महत्व इस बात का है कि धर्म की रक्षा किसने की।

शिखंडी को बना……………………………का धर्म [illegible] था।

शब्दार्थ—काल = मृत्यु।

व्याख्या—कर्ण पुनः पांडवों के विभिन्न कुकृत्यों की चर्चा करते हुए भगवान श्रीकृष्ण से कहता है कि—"जब अर्जुन ने शिखंडी को सामने रखकर भीष्म पितामह का संहार करवाया था, क्या वह पाप नहीं था? क्या वह अर्जुन का श्रेष्ठ कर्म ही था? आप यह क्यों नहीं कहते कि वह भी धर्माचरण था। आप कह दीजिए कि अर्जुन ने जो कुछ किया वह ठीक था। बली सात्यिकी की रक्षा करके भूरिश्रवा का संहार करवाने में भी कौन से धर्म की रक्षा की गई थी? क्या पांडवों का यह पतन धर्म की रक्षा के लिए था?"

विशेष—ऐसी कथा आती है कि भीष्म पितामह का यह व्रत था कि वे किसी नपुंसक पर वार नहीं करेंगे। अतः शिखंडी (नपुंसक) को सामने रखा गया और इस प्रकार भीष्म पितामह की मृत्यु हो पाई। सात्यिकी और भूरिश्रवा की कथाएं पीछे बताई जा चुकी हैं।

कथा अभिमन्यु की...**भूल रहा है।**

शब्दार्थ—विरत = अलग करके। चतुर्गण = चौगुना।

व्याख्या—कर्ण पुनः श्रीकृष्ण से कहता है कि—"आपने अभिमन्यु के संहार का दायित्व तो दुर्योधन पर सौंप दिया किन्तु क्या पांडवों के सभी कार्य धर्मानुकूल रहे हैं? क्या महायोद्धा द्रोणाचार्य को छल-कपट से युद्ध से अलग करा देना पांडवों के लिए उचित था? अब तो पाण्डव भी पतन के उस धरातल पर पहुंच गये हैं कि ऐसा लग रहा है मानो उन्होंने अपने बलिदानों का चौगुना मूल्य प्राप्त कर लिया है। अब दोनों पक्षों के पुण्यों की तुलना करना कठिन है। अब कोई-सा भी पक्ष गर्व के साथ यह नहीं कह सकता कि उसका समूचा कृत्य पूर्णतः धर्मानुसार रहा है। ऐसी स्थिति में यह पूछना वृथा है कि दोनों पक्षों में किसका दोष था? किसने पहले युद्ध रूपी विष का भण्डार खोला? हे केशव, अब तो यह स्थिति है कि दोनों ही पक्ष हलाहल के कोष खोल रहे हैं। वस्तुतः आज तो ज़हर को जहर धो रहा है।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मनुष्य पर जब युद्ध की विभीषिका मंडराने लगती है, जब उसकी युद्ध-लिप्सा मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करने लगती है तब कोई भी पक्ष न्यायपूर्ण एवं धर्म-भीरु नहीं रह पाता। मनुष्य की विवेक-शक्ति शून्य हो जाती है और पाप का सामना पाप से किया जाता है।

जहर की कीच...**में जल रहे हैं।**

शब्दार्थ—कलुष = पाप। द्रोहानल = विद्रोह रूपी आग।

व्याख्या—युद्ध सम्बन्धी तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए कर्ण कहता है कि—'हे केशव, अब जबकि हम और पाण्डव दोनों ही युद्ध के विष में नहा रहे हैं, पाप बनकर पापी का सामना कर रहे हैं तो फिर हमारे में दोष निकालने

से क्या लाभ ? ऐसी स्थिति में कौरवों को पूर्णतः दोषी मान लेना और स्वयं को पूर्णतः निर्दोष और धर्मी मान कर गर्व से फूलना स्वय को ही धोखा देने के समान है। यह ठीक है कि दुर्योधन को उसके कुकृत्यों और अन्यायपूर्ण कृत्यों का फल मिलना चाहिए। यह भी ठीक है कि उसकी विद्रोह रूपी आग उसके लिए भयंकर परिणाम लेकर आएगी, किंतु आज ये पाण्डव जिस दिशा में जा रहे हैं, विद्रोह की जिस भीषण आग में जल रहे हैं, क्या वह सब न्याय और धर्मसम्मत है ?"

अभी पातक बहुत.........................यही बस वेदना है।

शब्दार्थ—अन्तर्गगत=हृदय।

व्याख्या– कर्ण पुनः कहता है कि पाण्डव जिस युद्ध-लिप्सा में बहे जा रहे हैं, वह उनसे बड़े-बड़े पाप करवाएगी। पता नहीं, उनकी यह विद्रोह की अग्नि उन्हें कहाँ ले जाएगी। क्या पता कि पाण्डव इस युद्ध-विष से जलेंगे अथवा बर्फ में जाकर गलेंगे। पता नहीं इस सबका अन्त क्या होगा।" कर्ण अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहता है कि—"मेरा मित्र दुर्योधन पुण्यात्मा था अथवा पापी, इस सबसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं तो केवल यही जानता हूं कि वह मेरा एक पराक्रमी मित्र है। मैंने केवल मित्रता का निर्वाह किया है और मैं इसे ही सत्कर्म समझता हूं। तथापि मेरे मन में कोई ग्लानि के भाव नहीं हैं। मुझे किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं है। मेरा हृदय अभी भी स्वर्ग की तरह शुभ्र एवं निर्मल है। मुझे बस एक ही वेदना है, एक ही कष्ट है कि उस दिन जबकि द्रौपदी का चीरहरण किया जा रहा था, उस दिन मैं क्यों मौन रहा।"

विशेष—'कहीं या बर्फ में जाकर गलेंगे' इस पंक्ति का सम्बन्ध पाण्डवों के हिमालय में जाकर मरने की बात से है। कहते हैं कि पाण्डव हिमालय में जाकर मरे थे।

वधूजन को नहीं.........................अब संग हरि का।

शब्दार्थ—वधूजन=नारी जाति। निष्कृति=छुटकारा।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि दिनकर ने कर्ण के चरित्र को ऐतिहासिक चरित्र से किंचित्त ऊंचा उठाकर चित्रित किया है। कवि ने कर्ण के चरित्र को और अधिक उदात्त बना दिया है। कर्ण अपने मन को टटोलते हुए श्रीकृष्ण से कह रहा है कि—"हे केशव, मुझे केवल एक ही वेदना है और वह यह कि जिस दिन भरी सभा में द्रौपदी को निरावरण किया जा रहा था, उस दिन मैंने चुप रहकर उस पाप का समर्थन क्यों किया। आज मैं अपने उस पापकृत्य से किसी भी तरह छुटकारा नहीं पा रहा हूं, मुझे कोई भी ऐसा तर्क नहीं मिल रहा जिससे मैं अपने व्यथित हृदय को शमित कर सकूं। इसी बात की [illegible] लिए जा रहा हूं।" कर्ण पुनः व्यंग्यपूर्ण भाषा में श्रीकृष्ण से कहता है—"हे केशव,

अब आप अपने व्यक्ति अर्थात् अर्जुन को विजय दिलाइए।" अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कर्ण कहता है कि—"सच अर्जुन, अब तू किसी भी प्रकार का संकोच मत कर। निर्भय होकर शत्रु को अर्थात् मुझे वेध दे। अब तुझे क्या चिन्ता है, तेरे साथ तो स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। तेरा कोई क्या बिगाड़ सकता है। निर्भय होकर मेरा संहार कर।"

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने कर्ण के चरित्र को आधुनिक युग के अनुरूप चित्रित किया है। आज के युग में समाज में नारी को पर्याप्त आदर प्राप्त है। सम्भवत: यही तथ्य ध्यान में रखते हुए कवि ने कर्ण के माध्यम से नारी जाति के प्रति ये आदरसूचक भाव अभिव्यक्त किये हैं।

मही ले सौंपता........................पद्म-सा जो फूलता है।

शब्दार्थ—लील ले = निगल ले। काठ = लकड़ी का बना रथ। विभ्राट् = महापराक्रमी। जपयाग = जप-तप। आलोक-स्यन्दन = आलोकमय रथ। राजि = रेखा। वाजि = घोड़े। विभा = प्रकाश। पद्म = कमल।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण को अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो रहा है। वह धरती को सम्बोधित करते हुए कहता है कि—"हे धरा, ले मैं अब अपना रथ तुझे सौंपता हूं। अब मैं अपना मार्ग आकाश में ढूंढ़ लूंगा क्योंकि युद्ध-क्षेत्र में तूने मुझे आगे नहीं बढ़ने दिया। तथापि इतना स्मरण रख कि तू इस लकड़ी के बने रथ को तो निगल सकती है किन्तु किसी पराक्रमी व्यक्ति को नहीं निगल सकती। तुम मेरे इस मिट्टी के बने शरीर को तो निगल सकती हो किन्तु मेरा शौर्य, मेरा सम्पर्क सदैव अपराजेय ही रहेंगे। अब मेरे जीवन का अन्तिम क्षण आ रहा है। मेरा रथ तो पृथ्वी में धंस गया है किन्तु मेरे लिए अब एक नया आलोकमय रथ आ रहा है। इस रथ के यन्त्र तपस्या से तैयार किये गये हैं और जप और योग से इसके कल-पुर्जे कसे हुए हैं। इस रथ में कीर्तियों की शुभ रेखाएं सज रही हैं और किरणों के घोड़े इसे खींच रहे हैं। इस आलोकमय रथ में हमारा पुण्य झूल रहा है जोकि प्रकाश के कमल की तरह विकासमान हो रहा है।"

अहा ! आलोक स्यन्दन आन.....................आ रहा हूं।

शब्दार्थ—विभाओं = किरणों। प्रभामण्डल = सूर्यमण्डल। रोचि = किरण।

व्याख्या – इन पंक्तियों में कर्ण पुन: अपने जीवन के अन्तिम क्षणों का विश्लेषण कर रहा है। वह कहता है कि—"अहा, मेरा वह आलोकमय रथ मुझे लेने आ गया है। अब मेरे पुण्य का समय आ गया है।" कर्ण सूर्य की किरणों का आह्वान करता हुआ कहता है कि—"हे सूर्य-किरणो, मेरी जय-जयकार करो। हे विभाओ, किरणों के तार मिलाओ और जयगान गाओ।"

कर्ण पुनः कहता है कि—"हे सूर्यमण्डल, विजय की झंकार भरकर जयगान गाओ। हे जगत की ज्योतियो, अपना द्वार खोलो, मैं आ रहा हूं। मैं तपस्या से समुज्ज्वल की गई किरणों को लेकर आ रहा हूं और रश्मिरथ पर चढ़कर आ रहा हूं।"

गगन में बद्ध........................पागल हो रहा था।

शब्दार्थ—प्रभा = ज्योति। एकात्म = एकरूप। तपन = तपस्या।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कर्ण की मृत्यु का दुखद किन्तु सजीव वर्णन किया गया है। कर्ण आकाश की ओर दृष्टि किए था और सूर्य की आराधना में लीन था। वह अपनी मृत्यु को अत्यन्त समीप देख रहा था। सूर्य की आराधना में लीन कर्ण के समक्ष मृत्यु अत्यन्त स्पष्ट रूप से प्रकट थी। उसी समय अर्जुन ने एक बाण मारा जो उसकी गर्दन से पार निकल गया। तत्काल एक ज्योति-सी उसके शरीर से निकल गई। उसका तेजमय मस्तक शरीर से अलग होकर धरती पर गिर पड़ा। उसके शरीर से एक दिव्य आलोक निकल गया जोकि ऊपर सूर्य के ताप के साथ एकाकार हो गया। उसी समय युद्ध के क्षेत्र में कर्ण की जय-जयकार गूंज उठी। कौरव-पक्ष में हाहाकार मच गया। दुर्योधन कर्ण की मृत्यु पर पागलों की तरह रो रहा था। दूसरी ओर भीम खुशी से पागल हो रहा था।

फिरे आकाश से........................हरि के पास आये।

शब्दार्थ—सुरयान = देवताओं के यान। नतानन = मुख नीचा किये हुए। आदित्य = सूर्य। निस्तार = मुक्ति।

व्याख्या—कर्ण की मृत्यु अपने समय की अत्यन्त दुखद घटना थी। उसकी मृत्यु की दुखद सूचना पाकर देवता भी दुखी हो गये। जब देवताओं ने देखा कि अब कर्ण जैसा धर्मात्मा, पुण्यात्मा, पराक्रमी वीर इस इहलोक को त्याग चुका है तो वे भी अपना मुख नीचे किये हुए अपने यानों में वापिस लौट गये। अब उनकी रुचि का कुछ भी नहीं रहा था जिसे वे देखते और प्रफुल्लित होते। स्वयं सूर्य भी दुखी होकर बादलों में छिप गए और सर्वत्र उदासी का वातावरण छा गया। दुसरी ओर युधिष्ठिर को अब अपनी विजय बहुत स्पष्ट और निकट दीख रही थी। कर्ण की मृत्यु से उनके मन का भय समाप्त हो गया था और इस प्रकार कठिनाई से प्राप्त हुई विजय पर वह अत्यन्त प्रफुल्लित हो रहे थे। उनकी आंखों में खुशी के मोती छाए हुए थे। वह अत्यन्त व्याकुल स्थिति में भगवान श्रीकृष्ण के पास आए।

कहा केशव बड़ा........................प्राण क्या थे।

शब्दार्थ—त्रास = भय। शिला-निर्मोघ = अभेद्य पत्थर।

व्याख्या—कर्ण की मृत्यु पर युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए और श्रीकृष्ण से कहने लगे—"हे केशव, कर्ण का मुझे बहुत भय था। मुझे कभी भी यह

विश्वास नहीं था कि कर्ण युद्ध में मर सकेगा और अर्जुन इस भारी पराक्रमी वीर को पराजित कर सकेगा। मेरा हृदय इसी भय के कारण त्रस्त हुआ रहता था। यहां तक कि वनवास में भी मुझे कर्ण का भय लगा रहता था। इसी शंका के कारण मैं पूरे तेरह वर्ष चैन की नींद नहीं सो सका था। वस्तुतः वह एक अत्यन्त विकराल योद्धा था। केशव, वह तो भयानक मृत्यु की तरह विकराल था। उसके बाण विष में बुझे हुए लगते थे। उसके प्राण भी अभेद्य पत्थर की तरह वज्रसम थे।"

मिला कैसे समय.........................शील पुनीत में हैं।

शब्दार्थ—निर्भीत=भयरहित।

व्याख्या—युधिष्ठिर पुनः श्रीकृष्ण को सम्बोधित करते हुए कह रहे हैं कि—"अहा, यह शंकारहित, भयरहित समय कितनी कठिनाई से मिल पाया है। हमारी यह जीत हमारे सौभाग्य के कारण ही हुई है। यदि कर्ण आज मृत्यु का ग्रास नहीं होता तो पता नहीं, इस युद्ध के क्या परिणाम होते। पता नहीं, उस स्थिति में युद्ध में कौन जीतता और कौन हारता।" युधिष्ठिर की यह बात सुनकर भगवान तनिक उदास हो गए और युधिष्ठिर से कहने लगे—"हे धर्मराज, इस विजय के मद में आप यह न भूलें कि समूचा पुरुषार्थ केवल विजय में ही नहीं सिमटा हुआ है।"

विजय क्या जानिये.....................उसी को मानता है।

शब्दार्थ—विभा=प्रकाश। अवधानता=मूल्य स्वीकार करना।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को युद्ध की विजय का रहस्य बतलाते हुए कहते हैं कि—"आपको क्या मालूम कि विजय कहाँ बसती है? विजय का प्रकाश कहाँ हंसता है? आपको क्या पता कि विजय जीत की हुंकार में छिपी है अथवा तप और त्याग के प्रतीक लहू की धारा में छिपी है। युधिष्ठिर, आज इस रण में क्या कुछ नहीं हुआ। इस युद्ध में किसको वास्तविक विजय प्राप्त हुई। इस समूचे युद्ध में हमें क्या मिला और हमने क्या दिया। यह सब सौदा क्या है? हमने किसका मूल्य चुकाया है?" श्रीकृष्ण पुनः युधिष्ठिर का प्रबोधन करते हुए कहते हैं कि—"फिर भी शील की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। दुखी मन इस समस्या को नहीं समझ सकता। मनुष्य जब निश्चित रहता है तो वह किसी भी वस्तु की महत्ता स्वीकार नहीं करता। मनुष्य की बड़ी विचित्र स्थिति यह है कि वह जिसे तजता है, जिसका त्याग करता है बाद में उसी को मानता है, उसी की महत्ता स्वीकारता है।"

मगर जो हो.........................नर-कल्याण के हित।

शब्दार्थ—सुवरष्ठि=श्रेष्ठ। धर्मिष्ठ=धर्मपरायण। तारक=उद्धार करने वाला। निःस्व=अकिंचन।

व्याख्या—इन पंक्तियों में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण कर्ण के उदात्त चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—"युद्ध का परिणाम भले ही कुछ भी रहा हो किन्तु इतना निर्विवाद है कि कर्ण एक श्रेष्ठ व्यक्ति था। केवल धनुर्धारी ही नहीं, अपितु धर्म का महान ज्ञाता भी था। कर्ण एक तपस्वी, सत्यवादी, व्रती, ब्रह्मण्य तथा योगी था। उसका हृदय अत्यन्त निष्कपट था। उसके कर्म अत्यन्त पावन, पवित्र थे। वह गरीबों का उद्धारक और नारी जाति का आदर करने वाला था। वह महान दानवीर और दयालु व्यक्ति था। हे युधिष्ठिर, कर्ण का व्यक्तित्व अत्यन्त अद्भुत था। भला उसने किसका कल्याण नहीं किया। उसने तो किसी भी व्यक्ति में कोई भेदभाव नहीं किया और सभी के प्रति दया का समभाव बनाए रखा। उसने छिप-छिप कर बड़े दान दिए। उसने जनकल्याण के लिए अपना सब-कुछ लुटा दिया और अपने अन्तिम समय में वह एक अकिंचन की मृत्यु मरा है। यह कर्ण रूपी ज्योति संसार के कल्याण के लिए जन्मी थी। इस संसार में कर्ण का जन्म जनकल्याण के लिए हुआ था। वह वस्तुतः हारने के लिए नहीं जन्मा था। वह तो सब-कुछ लुटाने के लिए, जनकल्याण के लिए इस संसार में आया था।

दया कर शत्रु .... जेता उठा है।

शब्दार्थ—मनुज-कुल = मानवता। विपक्षी = शत्रु। जेता = पुंज।

व्याख्या—भगवान श्रीकृष्ण कर्ण के उदात्त चरित्र का वर्णन करते हुए पुनः युधिष्ठिर से कह रहे हैं कि—"कर्ण ऐसा महान व्यक्ति था जोकि शत्रु पर भी दया करता था और उसकी रक्षा के लिए स्वयं अपने प्राणों की बलि दे देता था। आज वह कर्ण केवल मित्रता का निर्वाह करने के लिए ही मृत्यु का ग्रास बना है। कर्ण की मृत्यु से यह धरती दीन हो गई है, समूची मानवता निष्प्राण हो गई है। वह मानव-कल्याण का चिर-प्रहरी था। उसकी मृत्यु से संसार का एक जननेता उठ गया है। युधिष्ठिर, यह भूल जाइए की कि वह अत्यन्त विकराल योद्धा था अथवा हमारा शत्रु या मृत्यु की तरह भयंकर पराक्रमी वीर था। मूल बात तो यह है कि शील में वह अत्यन्त विनय एवं विनम्र था। दया और धर्म में उसका अटूट विश्वास था। हे युधिष्ठिर, उसको द्रोणाचार्य की तरह मानिए और भीष्म पितामह की भांति उसका सम्मान करिए। आज वस्तुतः मानवता का एक महान् जेता, ज्योति का एक बिम्ब पुंज इस संसार से उठ गया है।"